कवि सूरदास कृत

नल दमन

प्रधान संपादक

डा० विश्वनाथ प्र[illegible]



संपादक

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

श्री दौलतराम जुयाल

क० मुं० हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ

आगरा विश्वविद्यालय

आगरा

नल दमन

प्रधान संपादक

डा० विश्वनाथ



संपादक

डा० वासुदेव शरण अग्रवाल

श्री दौलतराम जुयाल

क० मुं० हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ

आगरा विश्वविद्यालय

आगरा

प्रकाशक

संचालक,

क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ,

आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।

प्रथम संस्करण, १९६१ ई०

मूल्य ७)

मुद्रक

हरिकृष्ण कपूर

आगरा यूनिवर्सिटी प्रेस,

आगरा।

नलदमन

अनुक्रमणिका पृष्ठ

प्राक्कथन

संस्कृत के नैषध महाकाव्य में कोसलदेश के राजा नल और निषधदेश के राजा की कन्या दमयन्ती की कथा जिस विस्तार और लालित्य के साथ वर्णित है उसका जोड़ नहीं। यों नल-दमयन्ती का आख्यान भारत में अनेक रूपों में इतना अधिक प्रचलित है कि साधारण से साधारण जन भी नल की कथा को कहने-सुनने में रस लेता है।* नैषध की कथा-माधुरी से आकर्षित होकर ही फैजी ने उसका फारसी में अनुवाद किया था। फैजी का नल-दमयन्ती-चरित अपने समय मे बड़े चाव से पढ़ा गुना जाता था। काल-प्रवाह से आज उसकी चर्चा भी नाम शेष रह गई है। फैजी की धारा पर आगे चलकर लखनऊ के सूरदास ने नल-दमन नामक काव्य की रचना पूरबी भाषा† में की।

अपने देश में न जाने कब से यह परिपाटी चली आ रही है कि जहाँ नेत्रो की ज्योति गई कि 'सूरदास' की उपाधि मिली। और फिर जितने भी सूरदास मिलें, यदि उनके नाम से कोई रचना मिलती है तो बिना किसी सोच-विचार के वह तुरंत प्रसिद्ध अष्टछापी सूरदास के साथ जोड़ दी जाती है। यही कारण है कि इस समय सूरसागर के रचयिता भक्त शिरोमणि सूरदास की जीवनी का सही रूप खोज निकालना दुरूह हो गया है।

यही घटना इस ग्रंथ के लेखक सूरदास के साथ भी घटी। इनका ग्रंथ तो लोगों के सामने आया नहीं। ग्रंथ की नाममात्र की चर्चा से लोगो ने यही समझा कि उन्हीं विख्यात सूरदास ने नल-दमन नामक ग्रंथ की रचना की है। इसी आकर्षण के वश गोलोकवासी भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपने कविवचनसुधा नामक पत्र में इस ग्रंथ को खोज निकालनेवाले को एक हजार रुपये का पुरस्कार देने की घोषणा कर दी थी। परन्तु किसी भी प्रकार उस समय इस ग्रंथ का पता नहीं चल सका। किंवदन्ती के आधार पर स्वर्गीय श्री राधाकृष्णदास जी ने अपने सूरदास के जीवनचरित में लिख दिया कि "सूरदास जी ने नल-दमयन्ती नाम का एक काव्य ग्रंथ भी बनाया था, पर वह अप्राप्य है।" यह किंवदन्ती कोरे भ्रम पर ही अवलंबित थी, जो कमी या बेशी अभी तक चला आ रहा है। उदाहरणार्थ द्रष्टव्य है डा० प्रेमनरायण टंडन का शोध-प्रबन्ध 'सूर की भाषा' (हिंदी साहित्य भंडार, गंगाप्रसाद रोड, लखनऊ, सन् १९५७ ई०), पृष्ठ ६१३। इस भ्रम का निराकरण प्रथम-प्रथम तब हुआ जब कि सं० १९७५ की नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ४३, भाग १९ अंक २ मे प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम, बंबई के संग्रहाध्यक्ष डा० मोतीचन्द्र ने सूरदास के नलदमन की नस्तालीक अक्षरो में लिखी प्रति का विवरण प्रकाशित किया।

---

* ब्रज प्रदेश में ढोला नाम से जिस लंबे कथा-गीत का प्रचलन है, उसमें वस्तुतः नल की कथा ही गाई जाती है।

† "तिस कारन यह प्रेम कहानी, पूरब दी भाषा विच आनी।"

इस ग्रंथ की रचना लखनऊ के सूरदास ने सन् १०६८ हि० = १६५७ ई० में की थी। ग्रंथ में उन्होंने अपना और शाहेवख्त का पूरा परिचय दिया है तथा सूफियों की मसनवी पद्धति का पूरा निर्वाह करते हुए इश्क हकीकी का बड़ा बारीकी के साथ कथन किया है। काव्य-सौंदर्य तो जैसे उनकी कलम से चू-चू पड़ता है, जिसकी बानगी रसज्ञ पाठक स्वयं स्थान-स्थान पर पायेंगे। मैं अपनी ओर से उसके आस्वादन में व्यवधान उपस्थित करना उचित नहीं समझता।

ग्रंथ की प्रतियों और काव्यगत विशेषताओं की चर्चा सुविज्ञ सम्पादकों ने अपने कथन मे विशद रूप से किया है। मैं समझता हूँ कि उनकी इस भूमिका से पाठको को रचना का पूरा मर्म समझने मे किंचित् भी कठिनाई नही होगी। उपर्युक्त हस्तलिखित प्रतियों के लिखित रूप को स्पष्ट करने के लिए दोनों प्रतियों के आदि और अन्त के पत्रों के फोटो इसमें प्रकाशित किये जा रहे हैं, जिससे उनका वास्तविक रूप सामने आ सकेगा।

ग्रंथ का परिचय तो सम्पादकों ने दिया ही है। मेरा कर्त्तव्य उन लोगों का साधुवाद करना है, जिन्होंने अपनी बहुमूल्य सामग्री देकर हमें इस ग्रंथ के प्रकाशन का अवसर दिया है। उनमे सर्व-प्रथम हम डा० मोतीचन्द्र के प्रति अपनी ओर से तथा समस्त हिंदी जगत् की ओर से कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं, जिन्होने न सिर्फ अपनी शोधित प्रति और बंबई संग्रहालय की प्रति की प्रतिलिपि प्रदान की है, वरन् मूल के दो पृष्ठों को प्रकाशित करने की अनुमति भी दी है। इसके अतिरिक्त मुनि कान्तिसागर जी ने अपने द्वारा संगृहीत बहुमूल्य हस्तलिखित प्रति को विद्यापीठ को देकर जिस उदारता का परिचय दिया है, उसके लिए हम उनके बहुत ही आभारी हैं। यह अब तक की प्राप्त सूचना के अनुसार नागरी अक्षरों में लिखी हुई एकमात्र प्रति है।

विद्वद्वर डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने इस समस्त सामग्री का उपयोग करके श्री दौलतराम जुयाल के साहाय्य से इस ग्रंथ को सम्पादित किया है, जिससे एक चिरकालिक अभाव की पूर्त्ति हुई है। इसके लिए वे भूरि-भूरि साधुवाद के पात्र हैं।

आगरा मंडल इस समय अष्टछापी सूरदास की जयन्ती का आयोजन कर रहा है। आयोजकों के अनुसार उनका जन्मस्थान यहीं आगरे के आस पास का साही गाँव है। अतएव इस अवसर पर विद्यापीठ इन लखनवी सूरदास की यह रचना प्रकाशित करके उक्त आयोजन में अपना सक्रिय योगदान दे रहा है। इस ग्रंथ के प्रकाशन से सूरदास के नाम पर भटकने वाले शोध-कर्त्ताओं को सही मार्ग-दर्शन होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

क० मुं० हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ,
आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।
अक्षय तृतीया सं० २०१५ वि०

विश्वनाथ प्रसाद
संचालक

कां० प्रति

॥ई०॥स्वस्तिश्रीसर्वज्ञायनमः॥अथनलद
मनसरदासकृतभाषारूपते॥सुमति आदिअ
नादजुकोई॥आदिअंतिपुनिपछैसोई॥१॥
जाहिनवर्णनरूपनरेषा॥अवगतिगति
असेषवङ्कसेषा॥२॥सिथलनचपलवक्र
नछोटा॥तरुणनवृद्धालघानमोटा॥वहु
तनथोडासचानझूटा॥मिलानबिछुरछु
राननदूटा॥४॥ज्योंकुञ्ज्योंकानांवबताय
ऊं॥नांवजुधरैधरैतिहिनाऊं॥५॥नाउभय
तिपिनसरूपगुणहोई॥जोनिर्गुणतिहिनां
उंनकोई॥६॥नाउपदजोकहैसनाउं
॥ईदकहितपररापतनाउं॥७॥वेदजु
रूपवाकोअनकह्यो॥वचननपैलैतहां
पकिरह्यो॥८॥जहांवचनकहिगवनन
होई॥तहांकोणविधवर्णैकोई॥९॥दोह
रा॥आपनबनानबनैबिनाआपनबनांव
नाव॥ज्योंसबनात्योंहीबनाकहितनव
नेवनाव॥१०॥जअपिज्योंत्योंकजनाईपेध
टओघटरह्यासमाई॥जहांनवोहिसोठोर
नकोई॥ठोरठोरमेंपछैसोई॥अपुनछेद

मुनि कान्तिसागर की प्रति का प्रथम पृष्ठ

प्रिंस आफ़वेल्स म्यूजियम बंबई की प्रति का अन्तिम पृष्ठ

ग्रन्थ की प्रतियाँ

प्रस्तुत संपादन ग्रंथ की दो प्रतियों के आधार पर हुआ है। प्रथम प्रति सभा (काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी) की है जिसका संकेत 'स०' है और दूसरी प्रति जयपुर के श्री मुनि कांतिसागर जी की है जिसका संकेत 'कां०' है। 'स०' प्रति बम्बई के प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम की फारसी प्रति की नागरी अक्षरों में की गई नकल है और यह टंकित है। उक्त म्यूजियम के क्यूरेटर डा० श्री मोतीचंदजी ने प्रस्तुत ग्रंथ के विषय में 'कवि सूरदास कृत नलदमन काव्य' शीर्षक से नागरी प्रचारिणी पत्रिका (वर्ष ४३-सं० १९९५, नवीन संस्करण, भाग १९—अंक २) में लेख छपाया। उक्त लेख में फारसी प्रति के संबंध में उन्होंने इस प्रकार लिखा है :—

'इधर जब से मैं बंबई के प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम का क्यूरेटर नियुक्त हुआ, मुझे वहाँ की संगृहीत फारसी पुस्तकों की विस्तृत सूची बनाने का अवसर मिला। इन पुस्तकों में 'नलदमन' नामक एक चित्रित पुस्तक भी थी जिसे पहले की सूची में सूचीकार ने फैजी कृत 'नलदमन' की पदवी दे रखी थी। पहले तो मैंने समझा कि शायद फैजी कृत नलदमयंती-चरित्र का यह फारसी अनुवाद हो, क्योंकि अकबर के दरबारी कवि फैजी का बनाया 'नलदमन' प्रख्यात है। पर म्यूजियम के नलदमन काव्य के एक दो पन्ने उलटते ही मुझे पता लग गया कि यह नलदमन नाम का प्रेमाख्यानक काव्य अवधी में सूरदास नामक कवि का लिखा हुआ है। इस सूरदास का संबंध सूरसागर के रचियता सूरदास से कुछ भी नहीं, जैसा आगे पता लगेगा। जान पड़ता है, सूरदास के नाम-साम्य के कारण नलदमन की रचना सूरसागर के सूरदास के जिम्मे कर दी गई।

'—प्रस्तुत पुस्तक फारसी लिपि में लिखी हुई है। इस पुस्तक में १६३ डबल पृष्ठ हैं। जिन पर चित्र नहीं बने हैं उन पृष्ठों पर १५ सतरें हैं। पूरे पृष्ठ की नाप ९$\frac{1}{2}$" × ५$\frac{3}{8}$" तथा लिखित भाग की नाप ७$\frac{1}{2}$" × ४" है। कातिब ने पृष्ठ-संख्याएँ नहीं दी हैं, बाद में किसी ने पेंसिल से भर दी है। बहुधा चित्र पूरे पेज के नहीं हैं। वे पृष्ठों के बीच में या निचले भाग में, एक दूसरे कागज पर, लिखकर चपका दिए गए हैं।

'—पुस्तक फारसी के सुन्दर नस्तालीक अक्षरों में लिखी हुई है। पृष्ठ के बीचों बीच हाशिया छूटा हुआ है जिसके दोनों ओर पाठ अंकित हैं। पाठ की हद सुन्दर लाल, काले, नीले तथा सुनहरे खतों से बाँध दी गई है। दोहे सुनहरे अक्षरों में, बीच में पड़ी पट्टियों में, लिखे हुए हैं। पुस्तक औरंगाबादी कमखाब की जिल्द में बँधी हुई है।

'पुस्तक के अंत में इस प्रति के लेखक का नाम वाबुल्ला वल्द मुहम्मद जहीव दिया हुआ है। इस प्रति की नकल हिजरी सन् १११० यानी बादशाह औरंगजेब के राज्यकाल के ३३वें वर्ष में समाप्त हुई। यह प्रति मियाँ दिलेर खाँ नामक किसी सरदार के लिए तैयार की गई थी। ये दिलेर खाँ कौन थे, इसका ठीक-ठीक पता नहीं चलता। ये औरंगजेब के प्रसिद्ध सिपहसालार दिलेर खाँ नहीं हो सकते, क्योंकि इनकी मृत्यु सन् १६८२ यानी इस किताब के लिखे जाने के सोलह वर्ष पहले हो चुकी थी। चित्रों की शैली से यह पुस्तक हैदराबाद की लिखी मालूम होती है और शायद मियाँ दिलेर खाँ वहीं के कोई उमरा या रईस रहे होंगे।

'पुस्तक का आरंभिक पृष्ठ सुन्दर उनवान और सोने के गुबारे से अलंकृत है। तीन तरफ हाशियों में बादरूम की बेलें हरे, नीले, लाल तथा गुलाबी रंगों से बनी हैं, ग्रंथारंभ बिसमिल्लाह रहमानुर्रहीम से होता है। बाद में ईश-प्रार्थना शुरू होती है—'।

सभा की टंकित प्रति फुल्स्केप आकार के आधुनिक सफेद कागज पर है। आकार है—१३$\frac{1}{4}$" × ८$\frac{1}{2}$"। ऊपर से इस पर सादी जिल्द बँधी है। इसमें ग्रंथारंभ का अंश 'बिसमिल्लाह रहमानुर्रहीम' है। पुष्पिका टंकित नहीं हुई है। मूल प्रति के अलंकृत होने की सूचना अवश्य दी गई है। इसमें समस्त १६१ पत्रे हैं। प्रथम पत्र में २३ पंक्तियाँ हैं और अंत के पत्रे में ४ पंक्तियाँ। शेष पत्रों में किसी में २७ पंक्तियाँ हैं और किसी में २६। इसमें दोहे की संख्या ३८३ है तथा प्रत्येक दोहे के साथ चौपाइयों की ६ अर्द्धालियाँ हैं। प्रति कब टंकित हुई, इसका उल्लेख नहीं किया गया है, पर 'अठारहवें खोज विवरण' (का० ना० प्र० स०) के आधार पर यह सन् १६४१ के लगभग टंकित हुई जान पड़ती है। उक्त खोज विवरण (पृष्ठ २) में इसका उल्लेख है।

'का०' प्रति नागरी अक्षरों में है और वह पुराने देसी कागज पर लिखी हुई है। इसमें समस्त १२४ पत्रे अंकित हैं; परन्तु गिनने पर १२३ निकलते हैं। यह सजिल्द है जिस पर लाल कपड़ा लगा है। जिल्द अब अलग हो गई है। ऐसा विदित होता है कि इसकी दो बार जिल्दबंदी हुई। दूसरी बार जिल्द से अलग हुए पत्रों को ठीक किया गया। पत्रों का आकार ८$\frac{5}{8}$" × ६$\frac{1}{4}$" है। लिखित अंश का आकार ६$\frac{5}{8}$" × ४$\frac{15}{16}$" है। लिखित अंश उसके दोनों ओर (दाहिने और बाएँ) हाशिया छोड़ कर खींची गई लालस्याही की दो-दो रेखाओं से मर्य्यादित है। प्रत्येक पत्र के पृष्ठ के नीचे दाहिनी ओर हाशिए पर पत्र संख्याएँ अंकित हैं। प्रति पृष्ठ में २१ पंक्तियाँ हैं। इसमें समस्त ३६७ दोहे हैं और 'स०' प्रति की भाँति प्रत्येक दोहे के साथ चौपाइयों की ६ अर्द्धालियाँ हैं। दोहे और चौपाइयों को संख्यांकित करने का श्रम हो रहा था, पर वह प्रथम दोहे तक ही सीमित रहा। आगे उसका निर्वाह न हो सका। प्रति संवत १८१५ की लिखी हुई है। ग्रंथारंभ का अंश इस प्रकार है:—

> ।।६०।। स्वस्ति श्री सर्वज्ञाय नमः।। अथ नल दमन सूरदास कृत मारभ्यते।।
> सुमरूं आदि अनाद जु कोई। आदि अंति पुनि एकै सोई।।१।।
> जाहि न वर्ण न रूप न रेखा। अवगति गति अभेष वहु भेषा।।२।।

पुष्पिका निम्नलिखित रूप में है:—

'संवत् १८१५ तत्र वर्षे माहा माँगल्य मासे। चैत्र मासे शुक्ल पक्षे तिथौ १२ गुरु दिन लि० मिश्र चेतरामः लिपाय त्यों पूज्यः आत्मा ऋषि जी शुभ मस्तुः मंगलं ददातूः पुःस्तक लिपि विद्यानां जोग पसेते ॥'

यह प्रति भी किसी फारसी प्रति की नकल है अथवा उसकी नकलों की परंपरा में है। अनेक शब्द फारसी लिपि के कारण शुद्ध रूप में नहीं हैं। कहीं कहीं तो कुछ के कुछ हो गए हैं जिनके शुद्ध रूप का पता लगाना ही कठिन हो जाता है। कुछ उदाहरण दिए जाते हैं:—

१—सिथिल न चपल बड़ा न छोटा। तरुण न बूढ़ा लघा न मोटा ॥
—दोहा ॥१॥

इसमें 'चपल' को 'चंचल' होना चाहिए। इससे चौपाई की मात्राएँ पूरी १६ हो जाती हैं। कहना नहीं होगा कि फारसी प्रति में 'चंचल' के 'नून' अक्षर को ठीक ठीक पढ़ने में श्रम न हो सका और आगे 'चे' अक्षर को 'पे' पढ़ लिया गया। इससे अर्थ तो ठीक बैठा, पर मात्राएँ गड़बड़ हो गईं।

२—बहुत न थोड़ा सचा न फूटा। मिला न बिछरा जुरा न टूटा ॥४॥
—वही

इसमें 'सचा' शब्द कोई अर्थ नहीं रखता। होना चाहिए, 'सजा' लिखने वाले ने 'जीम' को 'चे' पढ़ लिया और लिख दिया 'सचा'। इसी प्रकार 'बिछुरा' को 'बिछरा' कर दिया; क्योंकि 'पेश' चिह्न का पता न लगा।

३—राता बिरछ करै बिन पाता। टुंटनि पात करै बहु राता ॥
—दोहा ॥६॥

यहाँ उत्तर पद होना चाहिए—ठूँठ निपात करै बहु राता ॥

४—जो रसना तत होतिहि कथा। जिहि तो गुए मत होतिहि लखा ॥
भुम्म अकास कागर सम होई। सरवर औ मिस सागर सोई ॥
लेपन शत तरवर तिन डारा। तौ सु लिपिन जाइ बिस्तारा ॥
—दोहा ॥११॥

रेखांकित पद फारसी लिपि के कारण अशुद्ध पढ़ लिए गए। ये चौपाइयाँ शुद्ध रूप में इस प्रकार हैं:—

जो रसना सब होंहि कथैया। जहं लौं कर सब होंहि लिखैया ॥
भुइं अकास कागर सब होई। सरवर औ सागर मसि सोई ॥
लेखनि सब तरुवर तिन डारा। तऊ सो लिखि न जाइ बिस्तारा ॥

विषय स्पष्ट करने के लिये इतने ही उदाहरण बहुत हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रति इस प्रकार की अशुद्धियों से भरी पड़ी है जिससे उसके फारसी प्रति की नकल होने का पूरा प्रमाण मिलता है।

प्रतियों में भेद

प्रस्तुत प्रतियों में भेद है। 'कां०' प्रति उस प्रति की परंपरा में है जिसका प्रचार रचयिता द्वारा रचना समाप्त होते ही हो गया। 'स०' प्रति उस प्रति की परंपरा में है जिसमें रचयिता अपने जीवनपर्यन्त संशोधन परिवर्द्धन करता रहा। इसलिये यह संशोधित-परिवर्द्धित रूप में है यद्यपि फारसी प्रति की नकल होने के कारण इसके पाठों की भी वही दशा है जो 'कां०' प्रति के पाठों की है। प्रस्तुत संपादन में इसके परिवर्द्धित अंश यथास्थान पाद टिप्पणियों में दे दिए गए हैं। वे प्रक्षिप्त नहीं हैं।

प्रतियाँ एक दूसरी की पूरक

दोनों प्रतियाँ एक दूसरी की बहुत कुछ पूरक के रूप में हैं। यदि इनमें से एक ही प्रति के आधार पर संपादन किया जाता तो वह निश्चित रूप से असफल सिद्ध होता। इसका यह तात्पर्य नहीं कि प्रस्तुत संपादन सब तरह से शुद्ध है और उसमें भूलें नहीं हैं। अभिप्राय यह है कि एक प्रति में जो पाठ अशुद्ध निकला वह साधारणतया दूसरी प्रति में या तो शुद्ध पाठ के रूप में प्राप्त हुआ अथवा उसका पाठ मूल के अधिक निकट पाया गया जिससे सुसंगत पाठ निश्चित करने में सहायता मिली। यहाँ थोड़े से उदाहरण 'कां०' 'स०' और 'सं०' (प्रस्तुत संपादन) के क्रम से दिए जाते हैं जो दोहों के अनुसार हैं:—

दो० ॥२॥

ओ पुन छेद भेद कछु नाहीं। सिमट समाय रह्या सब मांहीं॥ (कां०)
ऊ विन छंद हंद कछु नाहीं। समल समाय रहा सब मांहीं॥ (स०)
औ पुनि छेद भेद कछु नाहीं। सिमिट समाइ रहा सब मांहीं॥ (सं०)

दोहा ॥३॥

तिहि चेतन विन कछू न होई। पै करतूत न लागै कोई॥ (कां०)
तिन्ह चिन्तै विन कुछौ न होई। पै करतूत न लागै कोई॥ (स०)
तिहि चेतन बिन कछू न होई। पै करतूत न लागै कोई॥ (सं०)

दो० ॥८॥

कनक अंग हुइ रह्या अनेका। कारण टूट एक को एका॥ (कां०)
एक कनक होइ रहा अनेका। कारै टूट एक को एका॥ (स०)
एक कनक होइ रहा अनेका। कारण टूट एक को एका॥ (सं०)

दो०॥१७ (स०)॥ १६ (कां०)

जे मंगत लोकन कै मांगा । तिन्ह धन फिर आतिनि लगि मांगा ॥ (कां०)
ज मंगत टूकन कै मांगा । तिन्ह धन फिरहिं रतनग मांगा ॥ (स०)
जे मंगत लोकन कै मांगा । तिन्ह धन भरहिं रतन नग मांगा ॥ (सं०)

दो० ॥वही॥

जे मंगत धन दर दर डोलैं । सो दर पग हरे विन डोलैं ॥ (कां०)
जा मंगत धन घर घर टोलैं । सो दर पग न धरैं विन टोलैं ॥ (सं०)
जा मंगत धन दर दर डोलैं । सो दर पग न धरैं विन टोलैं ॥ (सं०)

दो० ॥२१ (स०)॥ २० (कां०)

क घीव महेव गांठ सो छूटी । जड़ चेतन हुते जेवर टूटी ॥ (कां०)
कहा और मोह गांठ सो छूटी । जड़ चेतन हित जेवर टूटी ॥ (स०)
कै घीव महेव गांठ सो छूटी । जड़ चेतन हुत जेवरि टूटी ॥ (सं०)

उक्त दोहा इस प्रकार है

माया मोहि मिलाप सों, घीव भयो दधि जीव ।
सति गुरु फेरि मथान मन, काढि दिपायो घीव ॥२०॥ (कां)
माया मही मिलाप स्यों, घिव जो भयो दधि जीव ।
संकर फेरि मथान मन, काढ़ देखा यह घीव ॥ (स०)
माया मही मिलाप स्यों, घिउ जु भयेउ दधि जीव ।
सतगुरु फेरि मथानि मन, काढ़ि दिखायो घीव ॥ (सं०)

ग्रंथ की ज्ञात प्रतियाँ

संप्रति ग्रंथ की चार प्रतियाँ ज्ञात हैं । इनमें से एक तो बंबई प्रिंस-आफ-वेल्स म्यूजियम की फारसी प्रति है और दो (दूसरी-तीसरी) उसी की नागरी अक्षरों में की गई प्रतियाँ हैं जिनमें से एक काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित 'स०' प्रति (टंकित) है तथा दूसरी उक्त म्यूजियम के क्यूरेटर डा० श्री मोतीचंद जी की प्रति है । चौथी 'कां०' प्रति श्री मुनि कांतिसागर जी की प्राचीन हस्तलिखित देवनागरी प्रति है । डा० श्री मोतीचंद जी की प्रति का भी थोड़ा बहुत उपयोग किया गया है ।

आभार प्रदर्शन

जैसा कि आरंभ में लिखा जा चुका है, नलदमन के संबंध में सर्व प्रथम विश्वसनीय सूचना देने का श्रेय श्री० डा० मोतीचंद जी को है । उन्होंने ग्रंथ के विषय में एक लेख भी नागरी प्रचारिणी पत्रिका में छपाया । उस लेख से प्रस्तुत संपादन में सहायता न लेना

अस्वाभाविक बात होती। अतएव उस के कुछ अंश का इस स्तंभ में उद्धरण सहित उपयोग किया गया है। उनकी निजी नकल की हुई प्रति से भी थोड़ी बहुत सहायता ली गई है। इसके लिये हम उनके विशेष अनुगृहीत हैं। श्रीमुनि कांतिसागर जी की तो महती कृपा हुई कि उन्होंने नलदमन की अपनी प्रति अपेक्षित समय तक के लिये प्रदान कर दी। वास्तव में इस प्रति के मिल जाने से ही प्रस्तुत संपादन संभव हुआ है। इसके लिये हम उनके अत्यंत कृतज्ञ है। इस प्रति को सर्वप्रथम श्री वासुदेव शरण जी ने जयपुर में श्री मुनि कान्ति सागर जी के पास देखा था और तभी यह इच्छा प्रकट की थी कि इसके आधार पर 'नलदमन' का सम्पादन हो जाना चाहिए। श्री मुनिजी ने उदारतावश इस प्रस्ताव को स्वीकार किया और अपनी प्रति न केवल सम्पादन कार्य के लिये ही सुलभ कर दी, बल्कि अग्रवाल जी के अनुरोध को स्वीकार करते हुए उस प्रति को आगरा हिन्दी विद्यापीठ के संग्रहालय के लिये प्रदान कर दिया। अब सम्पादन कार्य के समाप्त हो जाने पर यह प्रति हिन्दी विद्यापीठ आगरा मे श्री मुनि कान्ति सागर जी की ओर से धन्यवाद पूर्वक सुरक्षित कर दी जाएगी। काशी नागरी प्रचारिणी सभा का ससम्मान उल्लेख करते हुए उसके प्रधान मंत्री डा० श्री राजबली जी पांडेय और पुस्तकाध्यक्ष श्री विजयेंद्र जी शास्त्री के प्रति आभारी हैं जिन्होंने सभा में सुरक्षित ग्रंथ की प्रति देकर इस कार्य में हमारी बड़ी सहायता की।

कवि परिचय

पहले यह जन-श्रुति थी कि महाकवि सूरदास (सूर सागर के रचयिता) ने 'नल दमयंती' नाम से भी काव्य रचना की। श्री राधाकृष्णदास ने उक्त जनश्रुति का उल्लेख महाकवि सूरदास की जीवनी में किया और भारतेंदु बाबू श्री हरिश्चंद्र ने 'कवि वचन सुधा' में काव्य को खोज निकालने के निमित्त एक हजार रुपए पारितोषिक की घोषणा की। परन्तु काव्य का पता न चला। जन श्रुति का कुछ न कुछ आधार होता अवश्य है; इस बात को ध्यान में रखते हुए अब यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत 'नलदमन' काव्य ने ही उक्त जनश्रुति को जन्म दिया। इसके रचयिता सूरदास को भ्रम से महाकवि सूरदास समझ लिया गया। वास्तव में ये सूरदास महाकवि सूरदास से नितांत भिन्न सूफी विचारधारा से प्रभावित कवि हैं। अब तक केवल दो हिन्दू कवि ऐसे विदित हुए हैं, जिन्होंने सूफी विचारों से प्रभावित होकर प्रेमाख्यानक काव्य रचे। इनमें से एक हैं, दुखहरन जिन्होंने सं० १७२६ में 'पुहुपावति'[1] की रचना की और दूसरे हैं प्रस्तुत कवि सूरदास। प्रस्तुत कवि सूरदास ने अपना जो वृत्त दिया है उसके अनुसार इनके पिता का नाम गोवर्द्धनदास (गोरधनदास) था। ये कंबो गोत्रीय और माछिल (मूछल?) जाति के थे। इनके पुरखे कलानौर (गुरुदासपुर, पंजाब) में रहते थे, जहाँ से इनके पिता पूरब की ओर चले गए और बहुत समय तक उधर ही रहे। इनका जन्म लखनऊ में हुआ जिसको इन्होंने वैकुंठ के समान सुंदर बताया है। कलानौर ये कभी नहीं गए। यद्यपि ये परदेश मे ही रहते थे तो भी कलानौर का नित्य प्रति स्मरण करते थे। संभवतः स्मरण माहात्म्य के अनुसार इन्हें विश्वास था कि भगवान् कभी न कभी इनकी कलानौर

१—देखिए काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा संपादित खोज विवरण (सन् १९४१-४३ में संख्या, १०५)। पुस्तक की एक जीर्ण प्रति सभा में है।

देखने की अभिलाषा पूरी करेंगे। यह आशा इनकी आगे पूरी हुई कि नहीं, यह जानने का कोई सूत्र इस समय उपलब्ध नहीं :—

सूरदास निज नाऊँ बताऊँ। गोरधनदास पिताकर नाऊँ ।।
कंबू गोत माछिले तासू। कलानूर पुरखन कर बासू ।।
तात हमार तहाँ सों आवा। पूरब दिसा कोऊ दिन छावा ।।
नगर लखनऊ बड़ा सो थानू। रुचिर ठौर बैकुंठ समानू ।।
मेरो जनम यही ठां भयऊ। कलानूर कबहूँ नहिं गयऊ ।।१।।
जद्यपि हौं अबहूँ परदेसा। पै नित प्रति सुमिरौं सो देसा ।।
जैसे पंथी बसे सराई। महुं विदेस रहौं तिन्ह नाईं ।।
आदि ठौर बिसरा मै नाहीं। सोई सदा रहै मन माहीं ।।
सुमिरन करौं नाम हर स्वासा। मकु जो विधि पुरवै सो आसा ।।

दो०

बिन निज दया दयाल के, देस न पहुँचा जाय।
जब लग सोई बाँह गहि, लेइ न देइ पहुँचाय ।।२४।।

पंथ और गुरु परंपरा

इन्होंने अंचित पंथ का उल्लेख किया है, जिसके ये अनुयायी थे :—

गुरु अंचित को पंथ जग, बहु जल तरनी नाव ।।
पहुँचन हार जो पारको, सो राखे तहँ पाँव ।।

गुरु परंपरा इस प्रकार है :—

अंचित प्रभु > रंगविहारी > स्यामदयाल > सूरदास

रंगविहारी का बड़ा ही विलक्षण विवरण दिया है। उन्हें अंचित प्रभु सिद्ध पुरुष के रूप में मिले थे। अतएव पंथ के वास्तविक प्रवर्तक वही (रंगविहारी) थे। वे लाहौर के रहने वाले थे। जाति के कक्कड़ थे। वे चार भाई थे जिनमें वही सबसे बड़े थे। शिशुपन से ही वे मेधावान पुरुष थ और साधु सिद्धों की सेवा में अधिक मन लगाते थे। परदुःख दुःखी और बड़े दयावंत थे। प्रति दिन सूर्योदय होते ही नदी में स्नान करते और कुछ समय तक अखाड़े में बालकों की कुश्ती (सरों) देखकर मन बहलाते थे। नित्य प्रति बालकों को दिउल* खाने को देते थे। बालक दिउल पाकर बहुत प्रसन्न रहते और अधिकाधिक कौतुक दिखाकर उन्हें भी सदा प्रसन्न रखते। एक दिन जब

*यह देवल शब्द मूलतः 'घूल' है। अवधी में जिसका अर्थ होता है चने की भिगोई हुई दाल। शब्दसागर में 'दिउली' का अर्थ दाल दिया गया है।

वे बालकों का खेल देख रहे थे तो उन्हें एक सिद्ध पुरुष आते दिखाई दिए। सिद्ध पुरुष का अद्भुत भेष था। न सूफी ही थे और न सेवड़ा ही। सन्यासी भी नहीं कहे जा सकते थे। ब्रह्मचारियों की जैसी गति भी नहीं पाई जाती थी। जंगम और जोगियों में से भी वे कोई नहीं थे। षड् दर्शनी अथवा वियोगी जैसों का भेष भी नही था। माथे पर तिलक और हाथ में जपमाला थी तथा गले में सींगी एवं कांधे पर मृगछाला पड़ी थी। पलकें नहीं लगती थीं, शरीर पर मक्खियाँ नहीं बैठती थीं, अंग की परिछाँई भी नहीं पड़ती थी और धरती से ऊपर (अधर में) ही पाँव रहते थे। उन्होंने देखते ही सिद्ध पुरुष को जान लिया। सिद्ध पुरुष के प्रति उनके हृदय में प्रीति उत्पन्न हुई और गोद से दिउल (भीगे हुए चने) निकाल कर सिद्ध पुरुष को दिए। सिद्ध पुरुष ने हँसकर दिउल ले लिए कुछ अपने मुंह में रखे और जो बचे उन्हें उनके मुंह में डाल दिया। सिद्ध पुरुष का हाथ उनके मुंह में पड़ते ही उनकी बुद्धि के कपाट खुल गए। जैसे ही सिद्ध पुरुष आगे बढ़े वैसे ही वे भी पीछे-पीछे चल दिए। नाम पूछने पर सिद्ध पुरुष ने अपना नाम अचित बताया और उनका नाम 'वहोरा' (घरेलू नाम) के बजाय रंगविहारी रखा। तत्पश्चात् सिद्ध पुरुष जहाँ के तहाँ लुप्त हो गए। अस्तु, रंगविहारी को सिद्ध पुरुष का गुरु के रूप में इतना ही साक्षात्कार प्राप्त हुआ। परन्तु आत्मज्ञान की उन्हें उसी समय उपलब्धि होगई और पीछे सिद्ध महात्मा के रूप में भी प्रसिद्ध हुए:—

अब गुरुदेव केर गुन गाऊँ। रंगविहारी जिनकर नाऊँ।

× × × ×

आदि नगर लहोर जिहिं नाऊँ। जनम भूमि उन्ह कै तिहिं ठाऊँ॥
छत्री कक्कर जात कहाए। भैय्या चारहिं भले दिखाए॥
पहलै कहियत नाँव वहोरा। कसन वहोरैं नाँव वहोरा॥
थोरी वैस बहुत मति धरै। सिद्ध साधु कै सेवा करै॥
दयावंत दुखी पर दुखी। देख न सकै आत्मा भूखी॥
धरमी धरम पंथ पग धारै। कथा वारता सुनै विचारैं॥
रहै पवित्र भजन सों कामू। सुमिरन करै सदा हरि नामू॥

साध सिद्ध संगत करै, साधुन सों व्योहार।
सुन न सकहिं समुझा चहै, आतम रूप विचार॥

नित प्रति प्रात उठै जस भानू। जाइ सलित जल कर असनानू॥
बालक तहाँ सरौ पुनि खेलैं। लिपटहिं भिरहिं दंड मिलि पेलैं॥
तिन्ह कौतुक छिन मन विहरावहिं। नित प्रति तिन्ह देवल जिवाँवहिं॥
देवल पाइ बालक सुख पावैं। अधिकौ कौतुक करि दिखरावैं॥
इक दिन देखत हुते तमासा। सिद्ध एक आवा उन पासा॥
अद्भुत भेष धरै अवगती। सूफी औ न सेवड़ा जती॥
सन्यासी पुनि कहा न जाई। ब्रह्मचरज गति जाइ न पाई॥
जंगम कहा न जाइ न जोगी। खट दरसन सों भेख वियोगी॥

माथें तिलक हाथ जपमाला । सींगी गरें कांध मृगछाला ॥
मन कै सूरति पिउ सों लागी । भ्रम मिटि गा संका सब भागी ॥

पलक न लागें आँखिन, माखें निकट न जाइ ।
औ न अंग परिछाँहिऊँ, अधर भुईं सों पाउ ॥

इन वह पुरख दिस्टि महँ आना । देखत सिद्ध पुरुख पहिचाना ॥
सिद्ध पुरुख इन्ह तन पुनि पेखा । भई परस्पर देखी देखा ॥
तब इन दिउल गोद सों काढ़े । लै ताके सनमुख भए ठाढ़े ॥
हँस कै पुरुख हाथ गह लीन्हे । लै रंचक अपने मुख दीन्हे ॥
कर जो रहे इनके मुख डारे । उारत बुद्धि किवार उघारे ॥
कै चेला चल भय गुरु आगे । ये गुरु के पीछे उठि लागे ॥
बूझौ वचन जो अज्ञा पाऊं । कहौ कहौ तुम आपन नाऊं ॥
कहा अचित नाम सुन मोरा । रंग विहारी राखौं तोरा ॥
कह सो वचन पुनि दिस्टि न आवा । पुरुख जहाँ कर तहाँ समावा ॥

उनहीं घरी कृपा भई, दया करी गुरु देव ।
आतम रूप लखा प्रगट, रहा न अंतर भेव ॥

× × ×

जागति कला भई जगजानी । रंगविहारी सिद्ध वखानी ॥
सिद्ध वचन जो कहे सो होई । अविचल वचन न विचलै कोई ॥

× × ×

अब जद्यपि ते आप समाने । सिमट जोति मिलि प्रगटि हिराने ॥
पै गुरु जप तिन्ह कौ जो वानी । बीज मंत्र ठहराइ वखानी ॥
सो सुन संत पंथ में आवै । जो आवैं सो अमर पद पावैं ॥
पंथ प्रतापवंत उजियारा । जिन्हनें गहा सो रहा न वारा ॥

गुरु अचित को पंथ जग, वहु जल तरनी नाव ।
पहुँचनहार जो पार को, सो राखै तहँ पाँव ॥

स्यामदयाल जाति के भटनागर कायस्थ थे । उन्हें शैशवावस्था में ही, जब वे गोद में थे, रंगविहारी का गुरु मंत्र प्राप्त हुआ । साथ ही साथ उन्हें भक्त होने का आशीर्वाद भी मिला—

तिन्ह के सिख कायथ भटनागर । स्यामदयाल ग्यान गुन सागर ॥
गोद हते जब बाल अयाने । तबही सों दिच्छा महं आने ॥
माथे हाथ धरा गुरु देवा । कै अति कृपा लगाई सेवा ॥
आयसु भा एहि सिक्ख हमारा । होइ है भगत जगत उजियारा ॥
ते अब महापुरुख विग्यानी । मुख ऊचरैं ग्यान निधि बानी ॥
जिन्ह को नाम लिएँ दुख जाहीं । दरसन किएँ तजि पाप पराहीं ॥
पाप नसैं संदेह न कोई । निस्चै ग्यान परापत होई ॥

जो काहू कर सबद सुनावैं । ताहि तेहि छिन अलख लखावैं ।।
मोहि तिन्है यह पंथ लगावा । कृपा कीन्ह गुरू जाप सिखावा ।।
भूलैं भटकें बाँह गहि, मारग दियो लगाइ ।।
लोहा कंचन कै लियो, पारस पग परसाइ ।।

यह निश्चित पता नहीं चलता कि स्यामदयाल कहाँ के रहने वाले थे । फिर भी अनुमान से जान पड़ता है कि वे पूरब के ही—लखनऊ या उसके आस पास कहीं के निवासी थे । सूरदास लखनऊ में ही रहते थे, पंजाब की ओर जाने का उन्होंने कोई उल्लेख नहीं किया, इसलिये बहुत कुछ संभावना इसी बात की है कि उन्हें लखनऊ में ही स्यामदयाल से गुरु मंत्र प्राप्त हुआ ।

सूरदास ने 'नलदमन' की रचना शाहजहाँ बादशाह के राज्यकाल (सं० १६८५-१७१५ वि) की समाप्ति के एक वर्ष पूर्व संवत् १७१४ वि० (सन् १०६७ हिजरी) में आरंभ की—

एक सहस सतसठ सन अहा । संवत सतरह सै चौदहा ।।
कै अरंभ तब कथा बखानी । कीन्हीं प्रगट प्रेम निधि बानी ।।

बादशाह की प्रशंसा

शाहजहाँ की इन्होंने बड़ी प्रशंसा की है । उसके तेज, यश, बल-विक्रम, वैभव, प्रभाव, दानशीलता, करुणा, दया, न्याय प्रियता, राजनीति और युद्ध संचालन आदि का ओजपूर्ण भाषा में बड़ा ही भव्य वर्णन है । कुछ अंश उद्धृत किया जाता है—

साह जहाँ सुलतान चकत्ता । भानु समान राज इक छत्ता ।।
दिल्ली उवा सुरज उजियारा । चहों ओर जल किरन पसारा ।।
राजन के मुख रहा न पानी । मनो बेलि रबि तेज झुरानी ।।
हुते जो गढ़ मेरू ज्यों बाढ़े । कार नवाइ नीर कै काढ़े ।।
किये अमान सबै अभिमानी । मान छोड़ अब करहिं किसानी ।।
सीस नवाइ रहा सो बाँचा । जो उकसा सो काल मुख खाँचा ।।
रहा न कतहुँ जुद्ध कर मानू । अस दिढ़ होइ बैठा सुलतानू ।।
छत्री छत्रधार जो कहाए । ते जुहार कों बार न पाए ।।
खंड खंड कै राजा राऊ । ठाढ़े रहत जोर कर पाऊ ।।

जे राजा तरवार बर, कटक देत है तार ।
तोर तोर तरवार तिन्ह, फार गढ़ाए कार ।

साज काज जब करै चढ़ाई । महि मंडल हय मय होइ जाई ।।
चलहिं गयंद ठाठ चहुँ ओरा । मेघन अनी कीन्ह मनु जोरा ।।
अन गिन सैन न बार न पारू । महि पहं सहि न जाइ सो भारू ।।
काँपै धरनि मेरु धस जाई । कमठहि आनि बनी कठिनाई ।।
बासुकि डुलै होई कलमली । परै पताल लोक खलबली ।।

परवत चूर चूर होइ जाहीं । असल मसल होइ धूर उड़ाहीं ॥
इंद्र लोक पहुँचें सो धूरी । अंधकार उपजैं तिहि पूरी ॥
सुरज प्रकास न देइ दिखाई । बासर अछत रैन होइ जाई ॥
बन खंड टूट खेह मिल जाहीं । सरवर सागर सलित सुखाहीं ॥

अगले उज्जल जल पिवैं, पिछले खदर छानि ।
ता पिछले कूआ खनैं, तब पावैं ते पानि ॥

न्याव नीत जो पुरानन गाई । सो पृथमीपति कै दिखराई ॥
गऊ सिंघ एक घाट पियाए । राव रंक सर कै दिखराए ॥

× × × × ×

दाता कहियत एकै सोई । ता सरवर कहुँ और न कोई ॥
एक बार तिहि सों जिन माँगा । पुनि भर जनम न काहू खांगा ॥
जे मंगत टूकन कै माँगा । तिन्ह धन-फिरैं रतन नग माँगा ॥
जा मंगत धन दर दर डोलैं । सो दर पग न धरैं बिन डोलैं ।

× × / / ×

साहजहाँ दातार डर, धरैं पतार दुराइ ।
दधि मुकता तौ ना बचैं, देइ कढ़ाइ लुटाइ ॥

भाषा विवाद

'सं०' प्रति (का० ना० प्रा० स० में सुरक्षित) से विदित होता है कि 'नलदमन' की भाषा के संबंध में कुछ विवाद चल पड़ा था। यह विवाद पंजाबी और अवधी को लेकर उठा था। सूरदास पंजाबी थे, अतः प्रांतवासियों का उनके प्रति विशेष रोष रहा होगा। हो सकता है, यह भाषा विवाद गंभीर रूप में प्रांतीयता को लेकर न रहा हो, परंतु इसमें तीव्रता थी, अवश्य। इसलिये सूरदास को कहना पड़ा—

'इश्क फिराक' (प्रेम विरह) के कारण पूरबी भाषा (भखिया) में मेरी आँख कुछ रो पड़ी है। परंतु इसे पूरबी बतकहा (बतहा) मात्र न जानों। भले ही इसका देश पूरब है, पर इसमें व्यक्त किया गया मत (मतहा) पंजाबी ही है। मुझे अपनी भाषा का भय अवश्य है और मैं उसे नुकता-नुकता करके पहचानता हूँ। भाषा के बीच-बीच में घने शेर आ सकते हैं, पर मेरी आँखें 'इश्क हकीकी' में रंगी हुई हैं (इसलिये दूसरी भाषा के शेर रखने की ओर मेरी प्रवृत्ति नहीं हुई)। इस प्रकार अपनी भाषा और जबान में (यह कृति) बनी तो भली है, पर उसे स्वीकार करने में दिशा संकेत (पूरब की भाषा में है) किया जाता है। जब उसमें निहित अव्यक्त ध्वनि को पूछते हैं तो उसका मर्म (मरहम) ही खो देते हैं। इस प्रकार जैसे तैसे उससे भी नहीं बचा जाता। (वे) पंजाबी छोड़कर और भाषा नहीं जानते। रत्नों का पारखी ही रत्नों को जान सकता है। उधर सब कोई भाषा (पूरबी भाषा, अवधी) के मर्मज्ञ (महरम) हैं। (उनमें से) जो कोई पढ़ेगा। वही मतलब समझेगा। इसलिये यह प्रेम कहानी पूरब की भाषा में लिखी गई है।

वाग वगीचा वही अच्छा होता है जिसमें सबका साझा हो। इसी तरह वाणी भी वही वोलनी अच्छी है जिसे सब कोई समझ सके—

या रोवा यह कछु मैं अंखिया। अश्क फिराक पूरबी भखिया।।
मत जानहुं यह पूरब बतहा। पूरब देस पंजाबी मतहा।।
हौं अपने भाषा भय जानो। नुकता नुकता सब पहिचानो।।
आवसि भाषा वच शर घनेरी। अश्क हकीकत आँखें मेरी।।
अस अपनी भाखा व जवानी। वनी भली पै कोव सकुरानी।।
खोवे मरमह कल जो पूछै। जस कस तासों जाय न बचै।।
बज पंजाबी होर न जानी। रतन पारखी रतन सजानी।।
उत भाषा महरम सब कोई। पढ़ैं जो मतलव समझै सोई।।
तिस कारन यह प्रेम कहानी। पूरब दी भाखा विच आनी।।

वाग बगीचा सो भला, जो सवही सांझा होइ।
बानी तस भाखे भली, जिन्ह समझैं सब कोई।।

सूरदास को संभवत: स्वप्न मे भी इसका भान नहीं था कि उनकी कृति को लेकर भाषा विवाद भी उठेगा। उनकी आँखें तो 'इश्क हकीकी' में रंगी थीं। समदर्शी पुरुष थे। उन्हें अपना 'इश्क हकीकी' व्यक्त करना था जिसके लिये किसी उपयुक्त भाषा चुनने का उनके सामने कोई प्रश्न नहीं था। जन्म से ही अवधी प्रांत में रहने के कारण अवधी उनकी अपनी भाषा थी। इसलिये अवधी में रचना करना उनके लिये स्वाभाविक था। इसके अतिरिक्त अवधी के सब मर्मज्ञ थे। 'उत भाषा महरम सब कोई' से यह स्पष्ट होता है। इस दृष्टि से उनका दृष्टिकोण पक्षपात रहित और संतोचित था। फिर भी, अवधी में लिखने के लिये उनकी सूफी विचारधारा ने भी उन्हें प्रेरित किया, ऐसा माना जा सकता है। उनके समय तक रचे गए सभी सूफी काव्य अवधी में थे। अवधी में सूफी काव्य रचनाओं की विशिष्ट परंपरा ही चल निकली थी। अतएव सूरदास उन परंपरा से विछिन्न नहीं हो सकते थे। फलत उन्होंने अपना प्रेमाख्यानक काव्य अवधी में रचा।

जैसा पूर्व में कहा जा चुका है, भाषा संबंधी इस विवाद का उल्लेख केवल 'स०' प्रति मे है। वह भी उसके अंत में। यह प्रति प्रस्तुत संपादन मे संशोधित परिवर्द्धित रूप में मानी गई है। इससे विदित होता है कि भाषा विवाद का सामना सूरदास को पीछे करना पड़ा, जब उनकी इस कृति का प्रचार हो गया। उन्हें संशोधन परिवर्द्धन करते समय इस विवाद के निराकरण करने की सूझी। अतएव उपर्युक्त वक्तव्य दिया और साथ ही साथ यह दिखाने के लिये कि उनके हृदय में पंजाबी के प्रति पूर्ण सम्मान है, उक्त वक्तव्य में पंजाबी की पुट भी देदी—

तिस कारन यह प्रेम कहानी। पूरब दी भाखा विच आनी।

काव्य-कथा

जैसा पीछे लिखा जा चुका है 'नलदमन' सूफी प्रेमाख्यानक काव्य है। इसकी रचना अवधी भाषा में अन्य सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों के अनुकरण पर हुई है। इसमें भी, बिना सर्गों या अध्यायों के उपयोग किए, कथा का वर्णन है। ग्रंथारंभ में परमात्मा की स्तुति की गई है, फिर समसामयिक शासक, शाहजहाँ बादशाह की प्रशंसा है और तत्पश्चात् गुरु और कवि परिचय वर्णित है। शासक और गुरु का सविस्तर उल्लेख 'कवि परिचय' स्तंभ में हो चुका है। कथा का आधार महाभारत बताते हुए काव्य रचने का कारण इस प्रकार प्रकट किया है :—

एक दिवस मोरे मन आई। भारत पढ़ै लाग चित लाई ॥
तेहि के परव पढ़त जब आवा। नल की कथा खेंच हिय लावा ॥
सुना जो नर नारी कर पेमूं। बिसरा देह गेह कुत नेमूं ॥
सुनि मन डार पात फल आवा। बिरह वृक्ष इन्हन जनु लावा ॥
बिकल भयौं तन छूट कचाई। बिखधर डसै लहर जनु आई ॥
मन मोरै तन कै सुध खोई। नींद जाइ अन्तैं पर सोई ॥
तृखा सिरान न माँगै नीरा। भूख अघाइ बैठ होइ तीरा ॥
पावक पुंज भयौ तन मोरा। पेम पौन बर घर झकझोरा ॥
जिन्ह कै पेम कथा मैं जारा। धन ते जिन्ह झेला सो झारा ॥

कथा अगिनि होइ हिय परी, बरै लई ज्यों देह।
जो जल नैन न डारते, भई हुती जरि खेह ॥२५॥

रचना का कारण :—

प्रेम बैन मन मैं पुनि आई। दबी अगिनि यह ख्रौंहुँ जगाई ॥
पेम उसास पौन सो बारूँ। बार बिरह बाती घृत डारूँ ॥
प्रगट करूँ ज्वाला जग जानै। जो प्रेमी सुनि कै दुख मानै ॥
पेम बीज लै पौध लगाऊँ। रकत सींचि फुलवारि बनाऊँ ॥
अनबन बरन पुहुप उपजाऊँ। अलि पेमी जन तिन्हहि रिझाऊँ ॥
एहि बिधि पेम खान हिय खोलूँ। अविध अमोल बोल नग तोलूँ ॥
बिरह बेद बानी मुख आनूँ। जानि प्रेम सौं पेम बखानूँ ॥
औ उर भाठी मद पेम चुग्राऊँ। नल कै कथा सुनत कै लाऊँ ॥
ऐसो पेम मयी मधु ढारौं। जासौं दिया पेम मग बारौं ॥

जा तन लागि जान परि सोई । अन जानत कौ दुख न होई ।।
जिन्ह कै बात चाव उपजावै । जो सन कहै सो उन कहि होई जावै ।।

पेम पीउनहार जे, चाखत खिन छकि जांहि ।
एक पियाला फिरि पिवै, दूभर देहि उंघांहि ।।२६।।

बीज रूप में कथा का वर्णन यों है :—

नल दामन का पेम बखाना । भया मिलाप सोयंबर ठाना ।।
कलजुग नल सों जुवा खेलावा । धन हराइ बनवास देवावा ।।
औ बन मैं बिछुरे नर नारी । पुनि मिलाप ह्वै भए एक ठारी ।।
जुवा खेल जीता पुनि राजू । आइ जुरा सब वहै समाजू ।।
भारथ मैं जो कथा बखानी । आदि अंत बानी महं आनी ।।
बात बात मैं जुगति बनाई । कथा पुरान मथ कै दिखराई ।।

सूफी मर्म (प्रकटार्थ के साथ-साथ गुप्तार्थ) के प्रति भी संकेत किया है :—

बहुत ठौर निज अरथ दुरावा । सब काहू पै जाइ न पावा ।।

बहुत लोग बोहित चढ़े, दधि पर आवैं जांहि ।
मुकता पावैं मरजिया, धसि खोजैं ता माहि ।।२७।।

कथा इस प्रकार है :—

राजा नल उज्जैन में राज्य करता था । वह छत्रपति राजा था । अनेक राने राव सिर नवाकर उसकी आज्ञा का पालन करते थे । उसका तेज सूर्य के समान था । सत्य और शांति उसमें विराजमान रहती थी । राजकाज करते समय सत्य और धर्म का पूरा विचार रखता था । धर्म की रक्षा तो प्राणपण से करता था । वह बड़ा बुद्धिमान, पंडित, धर्मात्मा, सर्वगुण संपन्न, खड्गशूर और तेज एवं दया का सरोवर था । वह रूप में भी अप्रतिम था । संसार मे कोई उसके रूप की होड़ करने वाला नहीं था । उसके स्वभाव और वाणी से प्रेम छलकता था । सदैव प्रेम मार्ग का अनुसरण करता था । किसी को प्रेम में दुखी देख स्वयं भी बड़ा दुखी होता था । लोग उसके प्रेमपूर्ण मधुर व्यवहार से मुग्ध हो जाते थे । राग रंग की ओर वह अधिक रुचि रखता था । रात दिन गुणियों की चरचा करता था । एक गुणी जाता तो दूसरा आता था । उसकी सभा विद्वानों, कवियों, संगीतज्ञों, वाग्मियों और अन्य अनेक गुणियों से भरी रहती थी । उससे सदा अक्षर और अर्थ पर विचार विमर्श चला करता था । एक दिन राजा जब सभा में बैठा हुआ था और गुणी लोग अपने-अपने गुणों का प्रदर्शन कर रहे थे तो अकस्मात् प्रेम की चर्चा चल निकली जिसके फलस्वरूप रूप पर विवाद छिड़ पड़ा । प्रश्न हुआ, 'सोलह कला पूर्ण उज्ज्वल रूप किस स्त्री में होता है और वह कहाँ पाई जाती है ?' सबने एक स्वर से उत्तर दिया कि ऐसा रूप पद्मिनी स्त्रियों में ही संभव है और पद्मिनी स्त्रियाँ सिंघल द्वीप में होती हैं । वैसे राजा और रंक में कोई भेद नहीं इसलिये घर-घर की स्त्रियों को भी पद्मिनी सदृश ही समझना

चाहिए; उनका रूप भी अनुपम है। सभा में एक भाटिन भी कहीं से आकर बैठी थी। वह गायन में निपुण (चतुर) और अपूर्व थी। वह भी उठकर विनयपूर्वक बोली, "महाराज! यह सत्य है कि सिंघल द्वीप में ही पद्मिनी स्त्रियाँ होती हैं। परंतु भगवान् की लीला अपरंपार है; वह चाहे तो ताल तलैया में भी मोती उत्पन्न कर सकता है। जंबूद्वीप में भी पद्मिनी स्त्री विद्यमान है। यह बात मैं सुनी हुई नहीं, देखी हुई कहती हूँ। पहले मैंने भी सुना ही था और उस पर विश्वास नहीं किया था। परंतु जब आँखों से देखा तब विश्वास हुआ। दक्षिण दिशा में वह कन्या के रूप में है। संयोग से उसके योग्य अभीतक कोई वर नहीं मिला। वहाँ कुंडनपुर नाम का अनुपम नगर है। मैं समस्त जंबूद्वीप में फिर चुकी हूँ और उसके देश देश और नगर नगर से अच्छी तरह परिचित हूँ; परन्तु उस जैसा नगर मैंने कहीं नहीं पाया। वैकुंठ के विषय में जैसा सुना जाता है, वह नगर सचमुच वैसा ही रमणीक है। वहाँ के राजा का नाम भीमसेन है। वह छत्रपति राजा है और उसके समान उस मंडल में और कोई राजा नहीं। उसी राजा की पुत्री पद्मिनी है। एक सिद्ध पुरुष के वरदान से उसका जन्म हुआ। उसमें एक विशेष बात यह है कि पद्मिनी से वह एक कला बढ़कर है। उसकी हाथ की उंगलियों में अमृत है। उन्हें धोकर मृतक के मुख में देने से वह तत्काल जी उठता है। विधाता ने मानो उसे ही अमृत में सान कर बनाया हो और फिर उसके समान दूसरी स्त्री न बना सका हो। उसकी मुख की ज्योति के विषय में तो कुछ कहते ही नहीं बनता। शरद पूर्णिमा की चंद्रकांति से भी कहीं उच्च ज्योतिपुंज के समान वह ज्योति है। महाराज सचमुच वह पद्मिनी आश्चर्यजनक है; वैसी अभी कहीं मेरे सुनने में नहीं आई है। उसकी सुवास तीनों लोकों में भर गई है और सारा संसार भौंरा बनकर उसकी आशा से मंडरा रहा है। उसकी शोभा ने सबको लुभा लिया है। न जाने, वह किस भाग्यशाली के हाथ लगती है।" यह सुनते ही राजा की उत्कंठा बढ़ी और उसने भाटिन से कुंडनपुर नगर, भीमसेन राजा और राजपुत्री के जन्म आदि का विस्तार पूर्वक वर्णन करने के लिये कहा। भाटिन ने तदनुसार पहले नगर के वृक्ष, फुलवारी, पक्षी, ताल, सरोवर, कुआ, बावड़ी, मन्दिर, भवन, अट्टालिका, स्त्री, पुरुष, नगर से दूर वेश्या, हाट, बाजार, चौक, व्यापार, व्यवसाय, ठग, पाखंडी, वेदपाठी ब्राह्मण, ज्योतिषी, स्वाँग-नृत्य, नाद, वैद्य, जड़ी-बूटी, साँप, सपेरा, चित्रकार, जन्त्र-मन्त्र, चेटक और विविध जातियों का विस्तृत वर्णन किया। तत्पश्चात् राज दुर्ग, हाथी, घोड़े, राजद्वार, राजसभा और राजा भीमसेन तथा उनकी पटरानी राजमती का उल्लेख करते हुए अन्त में राजपुत्री का सविस्तर मनोमुग्धकारी वर्णन कर राजा को सुनाया। राजपुत्री के जन्म के विषय में बताया कि '—राजा भीमसेन के कोई संतान नहीं थी जिसके लिये वे सदैव चिंतित रहते थे। एक दिन दमन ऋषि उनके राज्य में आकर तपस्या करने लगे। राजा ने सुना तो उनके दर्शन के निमित्त गए। ऋषि ने प्रसन्न होकर रानी को खिलाने के लिये राजा को चार पके फल दिए और कहा कि उनके प्रभाव से उनकी इच्छा की पूर्ति होगी। निदान समय आने पर उनकी रानी, राजमती के गर्भ से चार संतानें—क्रमशः तीन पुत्र और एक पुत्री—उत्पन्न हुए। वे सब बड़े भाग्यशाली, बुद्धिमान, साधु, सुशील और धर्मज्ञ हैं। पुत्री स्त्रियों में श्रेष्ठ पद्मिनी के समान है और उसका नाम दमंती (दमयन्ती) है। राजा यह सुनते ही प्रेम के वश में होगया। वह उदास

रहने लगा। न दिन को राजकाज में मन लगता और न रात को नींद आती। रागरंग से भी चित्त उजड़ गया। उसे कहीं भी कल नहीं पड़ने लगी, हर समय व्याकुल रहने लगा। अपने मन का भेद भी किसी को नहीं बताता। उसकी भूख प्यास दोनों जाती रही। वह प्रेम विरह में घुलने लगा। देह दिन प्रतिदिन दुर्बल होने लगी जिससे वह पीला पड़ गया। भाई-बन्धु उसकी यह दशा देख बहुत दुखी हुए। वे उससे रोग पूछने लगे; परन्तु वह कुछ नहीं बताता। इससे सब चिंतित हुए। फिर भी उपचार प्रारम्भ हुआ और पाप शांति के निमित्त पुराण पढ़े जाने लगे। वैद्य और ओझा भी बुलाए गए। उनसे अपनी-अपनी समझ के अनुसार रोग पहचानते हुए राजा की व्याकुलता शांत करने के निमित्त उपचार करने के लिये कहा गया। पहले वैद्य ही रोग परीक्षा के लिये गया। उसने राजा की नाड़ी देखी तो उससे रोग का निदान कुछ न हो सका। दूसरी बार नाड़ी पकड़ने बढ़ा तो राजा रुष्ट हो गया। उसने वैद्य से स्पष्ट कह दिया कि वह प्रेम का रोगी है, अन्य रोग उसे कुछ नहीं। वैद्य लौट गया और उसने सबको राजा का यथार्थ रोग बता दिया तथा उस सम्बन्ध में शीघ्र से शीघ्र उपाय करने के लिए कहा। यह जानकर राज्य प्रधान, अहतसेन तुरन्त राजा के पास आया और राजा को धैर्य बँधाते हुए उनके प्रेम के विषय में पूछा। राजा ने भी अपने प्रेम का मर्म भेद खोल दिया और कहा कि यदि शीघ्र ही प्रिय मिलन न हुआ तो उसका जीवित रहना अत्यन्त कठिन हो जाएगा। मंत्री ने विनय की, 'महाराज! वियोग दुःख में धैर्य धारण करना प्रथम कर्त्तव्य है। प्रेम में स्वयं भगवान् सहायक होते हैं। सच्चा प्रेम एक ही ओर नहीं रहता वरन् वहाँ भी पहुँचता है, जिससे प्रेम होता है। जब प्रेम अन्तिम अवस्था तक पहुँच जाता है तो इसमें सन्देह नहीं कि वह परीक्षा की घड़ी होती है। ऐसा कौन है, जो प्रेमी को दुःख में देख उसकी सुधि न ले।' इस प्रकार मन्त्री ने राजा को धैर्य बँधाने का प्रयत्न किया; परन्तु राजा को शांति नहीं हुई। उसे वियोग दुगुने वेग से सताने लगा। धैर्य की बातें उसे पीड़ा देने लगीं। अन्त में उसका प्रेम प्रलाप और उन्माद की अवस्था तक पहुँच गया। कुटुम्बीजन, इष्ट मित्र और सगे सम्बन्धी सब आए और समझाने लगे। उन्होंने उसके प्रिय की इच्छा जानने के विषय में प्रयत्न करने का भी वचन दिया, पर राजा पर उनके समझाने का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। सब हार मान कर चुप हो गए। उलटे ही राजा प्रलाप की दशा में उन्हें समझाने लगा।

इधर राजा नल की यह दशा हुई और उधर उसकी वियोगाग्नि की लपट दमयंती तक जा पहुँची। वह भी रात्रि को तड़फ तड़फ उठने लगी। उसके हृदय को नल दुःख देने लगा जिससे उसकी निद्रा जाती रही और उसे चिंता ने आ घेरा। रातें उससे काटे न कटतीं। तारे गिनते गिनते प्रातः होने लगा। एक रात उसने नल का चित्र बना डाला, जिसे सखियों के सो जाने पर एक टक देखती और प्रेमाश्रु बहाती। रात दिन प्रिय के ध्यान में मग्न रहती। उसकी भूख प्यास जाती रही। रक्त कमल जैसा उसका मुख पीला पड़ गया। वह अत्यंत दुर्बल हो गई और उठने बैठने में ही उसे पसीना छूटने लगा। सखियों को अभी तक उसका यह भेद विदित नहीं हुआ। वह प्रकट में उनसे हँसने खेलने की बातें करती, परन्तु मन ही मन रोती रहती। अंत

में एक दिन दमयंती की धाय उसके पास आई और उसने उसको अश्रुपात करते देख लिया। वह बहुत चकित हुई। उसने एकांत में दमयंती से दुर्बल होने और रोने का कारण पूछा; परंतु दमयंती ने इधर उधर की बातें मिलाकर धाय को विदा किया। धाय चतुर और अनुभवी थी। उसने दमयंती की दशा का वर्णन रानी से जाकर कर दिया। रानी यह सुनकर बहुत उद्विग्न हुई। वह तुरंत दमयंती के पास आई और उससे दुर्बल होने का कारण पूछा। साथ ही साथ यह भी पूछा कि कहीं वह स्वप्न से डरी तो नहीं। दमयंती ने माता को उत्तर दिया कि उसे न तो कोई कष्ट ही हुआ और न उसे किसी रोग का ही पता चलता है। स्वप्न में डरने की भी कोई बात नहीं, क्योंकि वह आत्मा पर विश्वास करती है और हर समय आत्माराम में लीन रहती है। फिर भी, संदेह निवारणार्थ उपचार किया जा सकता है। रानी ने तत्काल वैद्य, ओझा और तंत्र मंत्र के जानकार बुलाए। सबने अपना अपना उपचार किया, पर कोई लाभ नहीं हुआ। दमयंती दिन प्रति दिन वियोग में घुलने लगी। परंतु उसकी सखियाँ अब सावधानी से उसकी देख रेख करने लगीं और फलस्वरूप एक रात उनमें से एक ने उसे नल का चित्र लिये रोती देख लिया। बात उघड़ गई। दमयंती ने भी उससे अपना गुप्त भेद प्रकट कर दिया। उस सखी ने दमयंती की दयनीय दशा देख रानी को सूचित किया। रानी पहले तो अत्यंत लज्जित और क्षुब्ध हुई; परंतु फिर धैर्य धारण कर दमयंती के पास गई। उसने दमयंती को बड़े प्रेम से समझाते हुए कहा, 'पुत्री! तुम्हारे पिता छत्र-पति राजा हैं। चारों ओर उनका नाम है। यदि तुम्हारे प्रेम की बात कहीं बाहर फैल गई तो वह अपयश का कारण होगा। उससे अपनी प्रतिष्ठा घटेगी और जग व्यवहार बिगड़ेगा। भले ही तुम्हारा प्रेम राजा नल से हो गया है, फिर भी तुम्हें धैर्य धारण करना चाहिए। समय आने पर सब ठीक हो जाएगा। मैं राजा से कहकर तुम्हारा स्वयंवर रचाऊँगी। उसमें राजा नल भी आएँगे जिसे तुम इच्छानुसार पति के रूप में वरण कर सकोगी। इस प्रकार तुम्हें मनोनुकूल पति मिल जाएगा और कोई बुरा भी न मानेगा,। परंतु दमयंती को धैर्य नहीं बँधा। उसने माता से अपनी अशांत स्थिति का पूरा वर्णन कर दिया। दमयंती का उत्तर पाकर रानी बहुत चिंतित हुई। वह सीधे राजा के पास गई और उन्हें दमयंती का सारा समाचार सुनाया तथा शीघ्र से शीघ्र उसका स्वयंवर करने का परामर्श दिया। राजा ने स्वजन, इष्ट मित्र, सगे संबंधी और मंत्रियों की संमति लेकर दमयंती के स्वयंवर की तैयारी करने की आज्ञा दे दी। देश देश के राजाओं के पास स्वयंवर में आने का निमंत्रण भेजा गया। राजा नल को जब निमंत्रण मिला तो वे प्रसन्न चित्त हो बड़े सजधज के साथ कुंडनपुर की ओर चले। परंतु आधे मार्ग से ही उनके मन में नये तर्क वितर्क उठने लगे। उन्हें अब इस आशंका ने घेरा कि वास्तव में दमयंती उन्हें पति के रूप में वरण करेगी या नहीं। इससे उनका चित्त फिर अशांत होने लगा और वे इसी अशांत स्थिति में कुंडनपुर पहुँचे। कुंडनपुर की शोभा देखकर उन्हें भाटिन का कथन सत्य प्रतीत हुआ। उन्होंने स्वच्छ और अगाध जलपूर्ण सरोवर किनारे डेरा डाला। दमयंती ने जब नल के आगमन का समाचार सुना तो बहुत सन्न हुई। उसका मुरझाया हुआ मुख कमल के समान खिल उठा और वह राजमहल छत पर चढ़कर नल के डेरे की ओर देखने लगी। दूर से नल को देखकर अपने मन

में 'वह मेरा प्रियतम है' ऐसा कहने लगी। उसके हृदय में नल के पास उड़कर जाने की प्रबल इच्छा हुई। वह चकरी की तरह फिरने लगी और बिजली के समान तड़फकर गिरने की अभिलाषा करने लगी।

इसी समय देवर्षि नारद पृथ्वी के कौतुकों को देखते हुए कैलास की ओर जा रहे थे। मार्ग में इंद्र मिल गए। इंद्र के पूछने पर नारद ने भूमंडल का समाचार कह सुनाया और दमयंती के रूप सौंदर्य और उसके स्वयंवर का भी वर्णन किया। उन्होंने इंद्र को बताया कि स्वर्ग के समस्त देवता स्वयंवर देखने के लिये कुंडनपुर गए हुए हैं। इंद्र ने देखा कि सचमुच स्वर्ग में एक भी देवता नहीं दिखाई देता तो यम, कुबेर और वरुण को लेकर वे भी कुंडनपुर के लिये चल पड़े। संध्या समय चारों देवता राजा नल के डेरे की ओर निकले। राजा नल ने अभिवादन कर उनका सत्कार किया। देवता वहाँ बैठकर सुसताने लगे। थोड़ी देर पश्चात् इंद्र ने राजा नल से दमयंती के पास जाकर उसे संदेसा देने के लिये कहा कि "वह देवताओं में से किसी को अपना पति चुने"। राजा नल ने संदेसा सुना तो भौचक्क रह गए। उनकी इच्छाओं पर मानों तुषार पात हुआ। उन्होंने हाथ जोड़-कर विनय की कि "वह भी मन में दमयंती की मिलन-आशा धरे हुए है और यदि वह संदेसा लेकर जाएगा तो उसे पहले ही निराश होना पड़ेगा"। फिर दमयंती के दर्शन की अपनी अभिलाषा पूरी होते जान वे संदेसा लेजाने के लिये तैयार हुए केवल मार्ग की कठिनाई बाधक बताई। इंद्र ने उन्हें एक मंत्र देकर कहा, "यदि तुम चाहो तो अब इस मंत्र की सहायता से दमयंती के पास निर्विघ्नता पूर्वक जा सकते हो"। राजा नल संदेसा लेकर चल पड़े और मंत्र की सहायता से राजप्रासाद में प्रवेशकर दमयंती के पास जा पहुँचे। उन्हें देखते ही दमयंती और उसकी सखियाँ बहुत लज्जित हुईं। परंतु दमयंती ने शीघ्र ही अपने को संभाला। वह अपरिचित पुरुष को देखकर विचारने लगी कि यह कौन है और कठिन पहरे के रहते यहाँ क्यों और कैसे चला आया। क्या यह मनुष्य है या सूर्य तेज वाला कोई देवता। उसने फिर राजा नल की ओर एकटक होकर देखा तो उन्हें पहचान लिया। वह दौड़ पड़ी और बेसुध होकर उनके पैरों पर गिर पड़ी। राजा नल ने सिर पकड़कर दमयंती को उठाया। इस प्रथम मिलन में दोनों को अपार आनंद हुआ। हर्ष के आँसू निकल पड़े और उनका वियोग-दुःख जाता रहा। पश्चात् राजा नल ने दमयंती को इंद्र का संदेसा सुनाया। दमयंती संदेसा सुनकर आगबबूला हो गई। उसने इंद्र की बड़ी भर्त्सना की। साथ ही साथ राजा नल पर बिगड़कर बोली, 'हे प्राणनाथ! मैं तुम्हारे प्रेम के लिये सारे संसार से उदासीन बनी हूँ। तुम्हें तन, मन, धन अर्पण कर चुकी हूँ। परंतु तुम लोगों का संदेसा लेकर मेरे पास आए हो। मैं केवल तुमको छोड़ अन्य किसी को पति नहीं बना सकती। यदि तुम्हें इंद्र का संकोच हो तो मैं कल स्वयंवर में तुम्हें स्वय ढूंढ लूंगी। उस अवसर पर इंद्र और अन्य राजाओं के सामने तुम्हें वरमाला पहना-ऊँगी। इससे तुम्हें कोई दोषी नहीं कहेगा और अबला होने के कारण इंद्र मुझे भी शाप नहीं देगा।" नल को इससे बड़ी प्रसन्नता हुई और उसका रहा सहा संदेह जाता रहा। वह डेरे पर आया और इद्र से दमयंती का सब समाचार ज्यों का त्यों वर्णन कर दिया। इंद्र ने कुछ नहीं कहा और वह चुपचाप वहाँ से चल दिया। दूसरे दिन स्वयंवर जुड़ा।

इंद्र वरुण आदि चारों देवताओं ने, यह जानकर कि दमयंती नल पर आसक्त है और उसी को जयमाला पहनाएगी तो सभा में नल के पास उसी का रूप धारण कर बैठ गए। दमयंती जब नल को वरमाला पहनाने गई तो उसे कई नल बैठे दिखाई दिए। वह बड़ी द्विविधा में पड़ी और सोचने लगी कि किस प्रकार राजा नल की पहचान करे। उसे यह भी चिंता हुई कि यदि सभा को उसकी द्विविधा का पता चल गया तो वह उठ जाएगी और उसको नल का मिलना फिर दुर्लभ हो जाएगा। वह बहुत व्याकुल हुई। जब कोई उपाय नहीं सूझा तो भगवान् के शरण में गई। उसने तन्मय होकर भगवान् की स्तुति की जिसके फल स्वरूप आकाश वाणी हुई कि 'धैर्य पूर्वक तीन तरह से परीक्षा लेने पर नल की पहचान होजाएगी। जो नल का रूप धरे हुए हैं, उनके एक तो परछाईं नहीं पड़ती, दूसरे आँखों की पलकें नहीं लगतीं और तीसरे उनके पाँव धरती से ऊपर अधर में रहते हैं।' दमयंती ने देखा कि केवल एक पुरुष ऐसा है जिसमें आकाशवाणी के अनुसार लक्षण नहीं घटते। उसने नल को पहचान लिया और उसे वरमाला पहना दी। इस प्रकार दोनों की मनोकामनाएँ पूर्ण हुईं और उनके आनंद का ठिकाना न रहा। इंद्रादिक चारों देवताओं को पहले तो बड़ा आश्चर्य हुआ कि दमयंती ने नल को कैसे पहचाना, पर फिर नल दमयंती के मिलन हो जाने से बड़े प्रसन्न हुए। वे राजा नल के पास गए और मधुर वचनों से उन्हें संतुष्ट किया तथा वरदान दिया। इंद्र ने शालिहोत्र विद्या प्रदान की, यम ने सौ वर्ष की आयु दी और कहा कि अग्नि सदा आज्ञाकारी बनकर रहेगी। वरुण ने इच्छा करते ही जल प्रस्तुत हो जाने का वर दिया। इस प्रकार वरदान देकर देवता विदा हुए। तत्पश्चात् नल दमयंती का विवाह हुआ। राजा नल कुछ दिन कुंडनपुर में रह फिर दमयंती को लेकर उज्जैन चले आए और उसके साथ सुख पूर्वक रहने लगे।

इंद्रादि देवता जब अपने-अपने स्थानों को जा रहे थे तो उन्हें मार्ग में द्वापर के साथ कलियुग मिला। बातचीत होने पर कलियुग को पता चला कि दमयंती ने नल को जयमाला देकर अपना पति चुन लिया। वह भी उसे पाने की इच्छा से स्वयंवर में जा रहा था इसलिये उसे बड़ा क्रोध आया और तत्काल नल को शाप देना चाहा। इंद्र ने कलियुग को फटकारा और चेतावनी दी कि वैसा करने से उसे महापाप लगेगा जिसके फलस्वरूप उसे नरक भोगना पड़ेगा। यह कह वे देवताओं सहित चले गए। कलियुग ने नल को शाप तो नहीं दिया, पर द्वापर के सामने प्रतिज्ञा की कि वह नल से बैर ठानेगा और उसे घोर कष्ट देगा। उसे वह धन, धर्म, धाम और राजपाट से रहित करेगा तथा वन वन घुमा अंत में दमयंती से उसको अलग कर देगा। वह तीर की तरह नल के पास गया और उसे धर्म भ्रष्ट करने की घात में रहने लगा। बारह वर्ष बाद उसे नल को धर्म भ्रष्ट करने का अवसर मिला। एक दिन संध्या काल में संध्या कर्म से निवृत्त होते ही नल को नींद आगई और वह बिना पाँव धोए सो गया। कलियुग ने इतने में ही उसके शरीर में प्रवेश कर उसकी मति को फेर दिया। पश्चात् वह नल के भाई पुष्कर के पास गया और उसे नल के साथ जुवा खेलने के लिये उकसाया। उसने पुष्कर को अपनी सहायता का वचन दिया। फलतः नल और पुष्कर का जुवा हुआ। नल दाँव पर दाँव हारने लगा। दमयंती ने नल को जुआ खेलने

के लिये बहुत वर्जित किया, पर वह नहीं माना। उनके दो बालक (पुत्र और पुत्री) थे। दमयंती ने जुए का रंग देख उन बालकों को नैहर भेज दिया। अंत में जुवा समाप्त हुआ और नल धन-संपत्ति सहित राजपाट हार गया। पुष्कर ने राज पाजाने पर नल दमयंती को राज्य से बाहर कर दिया और उन्हें आश्रय न देने के लिये राज्य भर में घोषणा कर दी। नल दमयंती वन वन घूमने लगे। पुष्कर के डर से किसी ने भी उन्हें आश्रय नहीं दिया। उन्हें भूख प्यास सताने लगी। वन में दावाग्नि लगी रहने के कारण खाद्य कण भी दुष्प्राप्य था। तीन दिन पश्चात् एक स्थान पर सोने का पक्षी दिखाई दिया जिसे पकड़ने के लिये नल ने धोती फेंकी। परंतु वह पक्षी कलियुग था, धोती लेकर उड़ गया। आकाश से उसने अपनी करतूत का वर्णन किया। नल धोती के चले जाने से बहुत दुखी हुआ। उसे नई आपदा ने घेरा। दमयंती के कष्ट ने तो उसे बहुत विचलित किया। उसने दमयंती को नैहर जाने के लिये समझाया; परंतु दमयंती ने उसे विपत्ति में छोड़कर जाना स्वीकार नहीं किया। फलतः दोनों भूख प्यास सहते हुए फिरने लगे। मार्ग में कहीं फल फूल और सागपात मिल जाने पर थोड़ी बहुत क्षुधा शांत कर लेते। इस प्रकार घूमते फिरते एक नदी के तट पहुँचे। वहाँ भरपेट पानी पीकर प्यास शांत की और थोड़ी देर विश्राम किया। जब उठे तो भोजन के रूप में अनायास दो मछलियाँ पड़ी मिल गईं। नल ने उन मछलियों को उठा लिया और उन्हें दमयंती को देकर स्वयं नहाने चला गया। दमयंती ने मछलियों को छीलना आरंभ किया तो उसकी उँगलियों के अमृत से मछलियाँ जीवित हो गईं और हाथ से फिसल कर नदी में चली गईं। दमयंती ठगी सी रह गई। नहाकर वापस आने पर मछलियों को न देख नल ने समझा कि शायद क्षुधा से पीड़ित होकर दमयंती ने उन्हें खा लिया। अतः उसे संतोष हुआ और उसकी भूख भी जाती रही। परंतु जब वास्तविक बात विदित हुई तो भाग्य को कोसने लगा। वे फिर भूखे पेट आगे बढ़े। रात्रि को एक गाँव में जाकर टिके। दमयंती के सो जाने पर नल जागता रहा। उसे महान् चिंता सताने लगी। दमयंती के कष्टों ने उसे बहुत विकल किया। विपत्तियों से शीघ्र छुटकारा पाने की भी कोई आशा नहीं दिखाई दी। उसके सामने दमयंती का कष्ट विकट समस्या के रूप में उपस्थित हुआ। वह चाहता था कि दमयंती कुछ दिन नैहर जाकर रहे, पर बहुत समझाने बुझाने पर भी दमयंती ने जाना अस्वीकार किया। उसे यह भी आशा नहीं रही कि साथ रहते दमयंती कभी उसे छोड़ेगी। अतएव बहुत सोचने विचारने के पश्चात् उसने दमयंती को वहीं सोती छोड़कर चले जाने का निश्चय किया जिसके पश्चात् दमयती उसे न पाकर स्वतः पितृगृह चली जाएगी और उसका वन वन भटकने का कष्ट मिट जाएगा। इस निश्चयानुसार वह धीरे से उठा और दमयंती को छोड़ कर चला गया। चलते समय ओढ़ने पहनने के लिये दमयंती की साड़ी और चादर आधी आधी फाड़कर ले गया। प्रातःकाल जब दमयंती जागी तो नल को न देखकर बहुत चकित हुई। वह उसे इधर उधर ढूंढने लगी पर वह कहीं नहीं दिखाई दिया। बहुत देर हो जाने पर भी जब नल नहीं आया तब उसका ध्यान साड़ी और चादर की ओर गया। उन्हें फटे देख उसे विश्वास हुआ कि वह उसे छोड़कर चला गया। उसका दुःख उमड़ चला वह विलाप करती हुई रोने लगी। वह नल की खोज में वन की ओर

चल पड़ी। उसे तन बदन की कुछ सुध नहीं रही; नल नल पुकारती हुई वन वन फिरने लगी। फिरते फिरते वह एक अजगर के सामने जा निकली जिसने लपक कर उसे लील लिया। एक ग्वाले ने, जो दूर से देख रहा था, तत्काल दौड़कर तलवार से अजगर का पेट चीर दमयंती को बाहर निकाल दिया। परंतु दमयंती के रूप को देख ग्वाला उस पर आसक्त हो गया और पकड़ने के लिये उसकी ओर बढ़ा। दमयंती ने ग्वाले की ढिठाई देख उसे शाप दिया जिससे उसकी तुरंत मृत्यु हो गई। वहाँ से भागती और विलाप करती हुई दमयंती आगे बढ़ी। चलते चलते वह ऐसे घोर बियाबान वन में पहुँची जहाँ सिंह, हाथी, चीते, रीछ और अनेक हिंसक पशुपक्षियों का निवास था। एक सिंह अपनी गर्जना से सारे वन को दहला रहा था। दमयंती सीधे उसके सामने गई। उसे जीवन का मोह नहीं रहा। नल के विना उसे संसार निस्सार प्रतीत हुआ और भोजन की इच्छा के बजाय उसे मृत्यु की इच्छा हुई। परंतु उस विरहिणी की वियोगाग्नि के सामने वह सिंह सियार की तरह भाग गया। यह देख दमयंती को फिर विरह सताने लगा। वह अत्यंत व्याकुल हुई। उसके लिये न तो मृत्यु ही आती और न विरह ही उसे चैन देता। वह फिर नल का नाम ले लेकर आगे बढ़ी। रास्ते में पथिकों से नल के विषय में पूछती, पर कोई कुछ न बताता। अंत में एक नदी के तीर पहुँची जहाँ उसने अनेक मुनियों को देखा। मुनियों ने दमयंती को अपने पास बुलाया और उसका परिचय पूछा। दमयंती ने उन्हें अपनी विपत्ति की सारी कहानी कह सुनाई। उन्होंने दमयंती को सांत्वना देते हुए कहा, "यह विपत्ति काल प्रेरित है, इसलिये इससे छुटकारा पाना वश की बात नहीं है। परंतु अब यह बहुत थोड़े दिनों के लिये है। पश्चात् तुझे तेरा पति मिल जाएगा और तू उसके हृदय की रानी होगी। धन, संपत्ति और राजसमाज भी पहले जैसा हो जाएगा। इसलिये निश्चित रह, चिंता न कर। तेरी सब चिंताएँ शीघ्र दूर हो जाएँगी।" मुनियों की बात सुनकर दमयंती पहले तो विस्मित हुई, पर पीछे यह समझकर कि मुनि जन सत्य बोलते हैं, उसे कुछ धीरज बँधा। वह वहाँ से कलपती विलपती आगे बढ़ी। रास्ते में बनजारों का झुंड मिला। बजारों के नायक ने परिचय पाकर उसे चंदेरी चलने के लिये कहा। उसने दमयंती को समझाया, कि वन के बजाय बस्ती में पथिक रात दिन आते जाते रहते हैं। उनके द्वारा दूर दूर की खबर हवा की तरह उघड़ती है, इसलिये पूछताछ करते रहने पर उनसे कभी न कभी नल की खबर मिल जाएगी। दमयंती नायक से सहमत होकर उसके साथ चल दी। परंतु कुछ दिन पश्चात् घने वन में निवास करते हुए अर्ध रात्रि के समय बनजारों के झुंड को जंगली हाथियों ने रौंद डाला। वे सबके सब मारे गए। केवल दमयंती और दो चार भिखारी ब्राह्मण बच रहे। दमयंती बनजारों की दशा देख अत्यंत दुखी हुई और स्वयं को मृत्यु का कारण समझ बिलख बिलख कर रोने लगी। ब्राह्मणों ने उसे समझा बुझाकर शांत किया और अपने साथ ले लिया। दमयंती उनके साथ चंदेरी पहुँची। चंदेरी में वहाँ की पटरानी ने उसे देखा और अपने पास बुलाकर उसका परिचय पूछा। उसने परिचय के विषय में केवल इतना ही कहा कि "वह कुदिनों की मारी हुई है"। पटरानी ने फिर कुछ नहीं पूछा, पर उसके रंग रूप से समझ

गई कि वह कोई राजरानी है। उसने उसका स्वागत सत्कार किया और वाटिका में टिकने का स्थान दिया तथा अपनी पुत्री को साथ रहने के लिये भेज दिया।

उधर नल दमयंती को छोड़कर चला तो गया पर दमयंती का विरह उसे सताने लगा। उसके बिना वह व्याकुल होकर फिरने लगा। फिरते फिरते ऐसे वन में पहुँचा जहाँ दावाग्नि लगी हुई थी। वहाँ कोई उसको पुकार पुकार कर कह रहा था, '—नल तुम धर्मात्मा, गुणी और ज्ञानी हो, जरा मेरे पास आकर एक बात सुन लो'। नल ने यह सुनकर दृष्टि दौड़ाई तो एक सर्प को जो उसका नाम पुकार रहा था—दावाग्नि में पड़ा देखा। उसकी बात मानकर वह उसके पास गया। सर्प ने कहा, "मैं पापी हूँ। मुझे अपने कर्मों और ब्राह्मण के शाप से यह गति मिली है। मैंने एक ब्राह्मण को अकारण डसा था जिसने मुझे एक ही जगह पर स्थिर रहने का शाप दिया। इसलिये मैं हिल डुल नहीं सकता। इधर यह अग्नि काल रूप होकर मेरी ओर बढ़ रही है। आप मुझे इससे बचाइए और सुरक्षित स्थान पर ले जा कर रख दीजिए। यदि आपने इस बार मुझे बचा लिया तो मैं सदा के लिये अमर हो जाऊँगा।" नल के हृदय में सर्प के प्रति दया उत्पन्न हुई और उसने उसको उठाकर अग्नि से बाहर कर दिया। जब छोड़ना चाहा तो सर्प ने दस कदम गिनते हुए चलकर छोड़ने के लिये कहा। नल ने वैसा ही किया; परंतु 'दस' कहने पर सर्प ने उसे डस लिया। सर्प के डसने से नल के सारे शरीर में विष व्याप गया और उसका रंग काला पड़ गया। नल ने कारण पूछा तो सर्प ने कहा, "मैंने आप के साथ धोखा नहीं किया है। इस समय आप कुदिनों के फेर में पड़े हैं। और यह दशा कुछ दिनों तक बनी रहेगी। आप राजा हैं, और सारा संसार आपको जानता है। कोई शत्रु इस स्थिति में आपको दुःख दे सकता है। इसलिये मैंने आपके रूपको छिपा लिया है जिससे कोई आपको पहचान न सके। जब आपके कुदिन टल जाएँगे तो आपके स्मरण करने पर मैं प्रकट हो जाऊँगा और अपने विष का शोषण कर लूंगा। आप का रंग फिर ज्यों का त्यों हो जाएगा। इसके अतिरिक्त यह विष आपकी रक्षा करेगा। इसके प्रभाव से आपके निकट न तो कोई शत्रु आएगा और न युद्ध में कोई आपसे जीत ही सकेगा। अब आप अपना नाम बाहुक रख सीधे राजा ऋतुपर्ण के पास अयोध्या चले जाइए। राजा ऋतुपर्ण जुवा खेलने की विद्या जानते हैं। आप उनकी सेवा करके वह विद्या प्राप्त करें। जुवा का मर्म जान लेने पर फिर उसी खेल द्वारा आप अपना गया हुआ राज्य वापस पाएँगे और यह दुःख फिर आपके लिये स्वप्न हो जाएगा।" यह कहकर उसने नल को दो कंचुलियाँ यत्नपूर्वक रखने के लिये दीं और कहा कि वे अवधि स्वरूप हैं। समय आने पर वे उसके तेज को पहले जैसा कर देंगे। नल सर्प के उपदेशानुसार सीधे अयोध्या पहुँचे और वहाँ राजा ऋतुपर्ण के सारथी बन कर रहने लगे।

कुंडनपुर में जब नल दमयंती के वनवास का समाचार पहुँचा तो राजा भीमसेन और रानी राजमती बहुत शोकाकुल हुए। उन्होंने शीघ्र ही नल दमयंती की खोज करने के लिये चारों ओर ब्राह्मणों और भाटों को भेजा। राजा नल का पता तो न चला, पर सहदेव नामक ब्राह्मण ने चंदेरी के राजमहल में दमयंती को देख लिया। बात प्रकट हो

जाने पर चंदेरी की रानी दमयंती से प्रेम पूर्वक मिली। उसने दमयंती को बताया कि उसकी माता और वह सगी बहनें हैं इसलिये वह उसकी पुत्री के समान है। वह दमयंती के दुःख को देखकर बहुत दुखी हुई और उसे उसकी इच्छानुसार राज साज के साथ कुंडनपुर भेज दिया। दमयंती के कुंडनपुर पहुँच जाने पर सबको बड़ा हर्ष हुआ, पर दमयंती को उससे कुछ सुख नहीं मिला। वह नल के विरह में घुलने लगी। उसके दुःख को देखकर राजा और रानी बहुत चिंतित हुए। उन्होंने नल को ढूँढ़ने के लिये ब्राह्मणों को नियुक्त किया। ब्राह्मण पहले दमयंती से मिले। दमयंती ने उन्हें नल के चिह्न बताए और फटी चादर दिखाकर नल के कार्य का परिचय दिया। उसने कहा, जहाँ जहाँ जाओ वहाँ-वहाँ कहना कि "एक पुरुष दुःख से दग्ध स्त्री को संग में सोती छोड़कर चला गया। उसकी चादर को भी आधी फाड़कर ले गया। ऐसा निठुर कि जरा भी द्रवित नहीं हुआ। उसके तन, मन और हृदय को वस्त्र की ही तरह चीर कर चला गया।" उसने कहा, यदि इन बातों से कहीं डेरा डाले किसी पुरुष का पता चले तो समझ लेना कि वही वनवासी निठुर नल है। ब्राह्मणों के हृदय में भी दमयंती की पीड़ा से बड़ी करुणा उत्पन्न हुई। वे उसका मर्मभेदी संदेश लेकर चले और उसे वन-वन, नगर-नगर कहते हुए नल को ढूँढ़ने लगे। उनमें से एक ब्राह्मण अयोध्या भी गया और घर-घर, गली-गली वही बात सुनाने लगा। वह फिरते-फिरते वहाँ निकला जहाँ नल रहता था। नल ब्राह्मण के मुख से मर्म संदेश सुनते ही मूर्छित हो गया। जब चैतन्य हुआ तो ब्राह्मण को प्रेम से बुलाकर बैठाया और इस प्रकार कहने लगा, 'हे मित्र! वही पतिव्रता स्त्री है जो पति से सच्ची प्रीति करती है। भले ही पति सेवा में उसे दुःख मिले, फिर भी उसकी सेवा में अधिकाधिक मन लगाती है। पति को सब तरह से भला समझती है और कष्ट का कारण अपने बुरे कर्मों को बताती है उसे पति के सब कार्य हितकारक जान पड़ते हैं। उसके अहित पूर्ण कार्यों को वह मन में नहीं धरती और भ्रामक दृष्टि उसको अच्छी नहीं लगती। और सुनो, उस स्त्री में वे सब बातें थीं जो उसके पति को भाती थीं। वह सुकुमार बड़े दुःख में थी इसलिये उसके दुःख को जब पति नहीं देख सका तो छोड़कर चला गया। परंतु इस संसार में वे विरली स्त्रियाँ हैं जो दुःख पाकर भी दुखी नहीं होतीं। पतिव्रता वही है जो पति के रुष्ट हो जाने पर रुष्ट नहीं होतीं प्रत्युत उसके रुष्ट होने पर उन्हें उसी में रस आता है।" ब्राह्मण ने नल का कथन संदेश के उत्तर रूप में पाया। वह नल को अपने स्थान पर ले गया और उसका परिचय पूछा। नल ने कहा, "मेरा नाम बाहुक है। यहाँ राजा की सेवा में रहता हूँ। मैं शालिहोत्र विद्या जानता हूँ इसलिये राजा ने अपने घोड़ों की देख-रेख और सम्हाल करने के लिये मुझे नियुक्त किया है। इसके अतिरिक्त राजा के चित्रकारों को चित्रांकन करना सिखाता हूँ और पाक विद्या में प्रवीण होने के कारण राजा के लिये अनेक प्रकार की रसोई तैयार करता हूँ। राजा मेरी सेवा से प्रसन्न रहता है और मुझसे प्रेम करता है।" ब्राह्मण संदेश का उत्तर पाकर सीधे कुंडनपुर आया और राजा तथा दमयंती को उसने समस्त वृत्तांत सुनाया। दमयंती ने बाहुक के रूप रंग के विषय में पूछा तो ब्राह्मण ने रंग बहुत ही काला बताया और कहा कि संभवतः वियोगाग्नि में जल कर वह वैसा हो गया है। दमयंती को विश्वास हुआ कि बाहुक ही राजा नल है। वही शालिहोत्र विद्या जानता है और

चित्र तथा रसोई बनाने की कला में भी वह प्रवीण है। उसके रूप रंग ने उसको कुछ भ्रमित अवश्य किया, पर उसका विश्वास डिगा नहीं। उसका हृदय उससे मिलने के लिये उद्विग्न हो उठा। वह माता के पास गई और उसकी संमति से उसने नल को कुंडन-पुर लाने का उपाय सोचा। उसने सहदेव ब्राह्मण को बुलाया और उसे अयोध्या जाकर राजा ऋतुपर्ण को यह समाचार सुनाने के लिये कहा, "नल खो गया है, उसका कहीं पता नहीं लगा। इसलिये उसकी स्त्री दूसरा विवाह करना चाहती है। विवाह मुहूर्त आज ही है। जो आज कुंडनपुर पहुँचेगा उसको दमयंती पति के रूप में वरेगी।" उसने सहदेव को अपनी योजना बताई और कहा कि 'यदि नल सचमुच राजा ऋतुपर्ण के यहाँ होगा तो एक ही दिन मे रथ लेकर कुंडनपुर आएगा'। सहदेव ने अयोध्या जाकर राजा ऋतुपर्ण को उक्त समाचार सुनाया। राजा ने समाचार सुना तो उसके हृदय में दमयंती को प्राप्त करने की प्रबल इच्छा जगी। वह शीघ्र से शीघ्र कुंडनपुर पहुँचने की उतावली करने लगा। उसने तुरंत बाहुक को बुलाया और उसे दमयंती के विवाह का समाचार सुना, दिन डूबने के पहले ही रथ द्वारा कुंडनपुर पहुँचाने के लिये कहा। बाहुक दमयंती के निश्चय को सुनकर पहले तो हक्का बक्का रह गया, पर फिर यह समझकर कि संभवतः उसने उसे ही बुलाने का उपाय रचा है, उसका दमयंती पर फिर विश्वास जमा। उसने तुरंत सम्हल कर राजा से कहा कि वह दिन डूबने के पहले उन्हें अवश्य कुंडनपुर पहुँचा देगा। उसने तेज चलने वाले घोड़ों को रथ मे जोता और राजा को बिठाकर रथ कुंडन-पुर की ओर ले चला। उसके हांकने से घोड़े पवन वेग के समान चल पड़े और रथ से मेघ गर्जन की सी ध्वनि उत्पन्न हुई। राजा को बड़ी प्रसन्नता हुई और वे नल की प्रशंसा करने लगे। इसी समय राजा के कंधे से दुपट्टा खिसककर नीचे गिर पड़ा। उन्होंने बाहुक को 'दुपट्टा गिर गया' कह कर तुरंत रथ ठहराने का आदेश दिया। बाहुक ने दुपट्टे के सात कोस पर छूट जाने की बात बतला बहेड़ा वृक्ष के पास रथ ठहरा दिया। राजा को जब रथ की गति विदित हुई तो बाहुक से बोले, "बाहुक! इसमें संदेह नहीं कि तुम बड़े गुणी हो; परंतु मैं भी अद्भुत गुण का मर्मी हूँ। सामने जो बहेड़े का वृक्ष दिखाई देता है, उसमें जितने फल, फूल और पत्तियाँ हैं तथा जितने पके-अधपके फल हैं एवं उनमें से जितने जमीन पर गिरे हुए हैं, मैं उन सबका अलग-अलग लेखा बतला सकता हूँ।" बाहुक यह जानने के लिये बड़ा उत्सुक हुआ और उसने राजा से लेखा पूछा। राजा ने सबका अलग-अलग लेखा बतला दिया। बाहुक ने वृक्ष उखाड़कर गणना की तो लेखा सत्य पाया। उसने राजा से वह विद्या उसे सिखा देने और बदले में उससे शालिहोत्र विद्या लेने की प्रार्थना की। राजा ने उसे अपनी विद्या सिखादी। उस विद्या को प्राप्त करने के पहले बाहुक को द्यूत विद्या सीखनी पड़ी। इसलिये जैसे ही वह विद्या प्राप्त हुई वैसे ही उसे कलियुग दिखाई दिया। कलियुग नल के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हुआ और उससे क्षमा याचना के लिये अनुनय विनय करने लगा। उसने कहा कि उसे दुष्कर्मों का फल मिल गया। पतिव्रता दमयंती ने दुर्दिन मे पड़कर उसे इस प्रकार शाप दिया था, "जिसने मेरे साथ अकारण ऐसा वैर ठाना है और मेरे पति को डाँवा डोल किया है, वह भी, हे विधाता! सुख की छाया में न बैठे। उसका भी गृह छूट जाय, वह

वनवास करे और उसका सुख मंदिर ढहकर धरती में मिल जाय।" कलियुग ने कहा कि उस शाप का प्रभाव उस पर व्याप्त हो गया है। उसकी आदि ठौर नष्ट हो गई है। जिस बहेड़े के वृक्ष पर वह रहता रहा, वह उसके द्वारा कट कर धराशायी हो गया और वह पूर्ण रूप से उसके वश में है। नल को कलियुग पर दया आई और उसने उसको क्षमा कर दिया। पश्चात् कलियुग चोला त्याग कर चला गया और नल भी राजा ऋतुपर्ण सहित तीसरे पहर रथ लेकर कुंडनपुर जा पहुँचा। रथ की आवाज सुनकर दमयंती पति को देखने के लिये राजमहल की छत पर गई। परंतु सब लक्षण घटित होने पर भी रंग को न देख वह नल को बाहुक के भेष में नहीं पहचान सकी। उसके सामने यह समस्या अकल्पनीय रूप में उपस्थित हुई और वह भ्रम में पड़ गई।

उधर राजा भीमसेन को जब राजा ऋतुपर्ण के आने का समाचार मिला तो उन्होंने उनका स्वागत किया और उन्हें भवनसार में टिकाया। राजा ऋतुपर्ण ने देखा कि वहाँ विवाह की कुछ भी तैयारी नहीं हो रही है तो वे चकराए और बड़े विचार में पड़े। राजा भीमसेन को जब विदित हुआ कि राजा ऋतुपर्ण उसी दिन अयोध्या से चले हैं तो वे भी सोच में पड़े। उन्होंने राजा ऋतुपर्ण से शीघ्रता से आने का कारण पूछा। राजा ऋतुपर्ण के मुख पर पहले संकोच और लज्जा के चिह्न झलके; परंतु तुरंत अपने को सम्हाल कर उत्तर दिया कि 'वे केवल दर्शनों के लिये आए हैं'। राजा भीमसेन ने इस पर कृतज्ञता प्रकट की और उनका बड़ा सत्कार किया।

दमयंती ने नल का समाचार जानने के लिये गुप्तचर भेजा और स्वयं महल की छत पर से कान लगाकर सुनने लगी। चर ने बाहुक से उसका और उसके साथियों के नाम पूछे तथा रथ स्वामी के विषय में बतलाने को कहा, बाहुक ने कहा। "रथपति अयोध्या नरेश" राजा ऋतुपर्ण हैं। वे दमयंती के द्वितीय वर वरण करने का समाचार पाकर आए हैं। मेरा नाम बाहुक है और मैं राजा का सारथी हूँ। साथियों के नाम क्रमशः वारसुतो और जीवन हैं, वे सामान की देख रेख करते हैं।" चर ने वारसुतो से, जो पहले नल का सारथी था और उसके पुत्र पुत्री को कुंडनपुर पहुँचाकर अयोध्या चला गया था, नल का समाचार पूछा। परन्तु वारसुतो के कहने के पहले ही बाहुक बोल उठा। उसने पूछा, "क्या नल की स्त्री इसी जगह रहती है? यह बात यह लोग जानना चाहते हैं इसलिए पूछता हूँ। फिर वारसुतो जिस गाँव को देखता है, वहाँ नल अवश्य होगा। इस समाज से वह बाहर नहीं है। यदि वह है तो इसी रथ में है। वह जिसके हृदय में रहता है वही उसको पहचान सकता है। हृदय के वर्ण को देखकर उसे अब अवर्ण वाला जाने। जो उसे (वास्तविक) वर्ण में देखना चाहेगा वह ढूंढ़ ढूंढ़ कर थक जाएगा, पर उसे नहीं पा सकेगा। अवर्ण समझते हुए जो खोज करेगा वह पा जाएगा। जो बाल-बान में भेद लेना जानता है वही उस पुरुष को पहचान सकता है।" चर ने बाहुक को मर्मी और ज्ञानी समझा। उसे विश्वास हुआ कि वह या तो स्वयं नल है अथवा वह नल के विषय में जानता है। उसने बाहुक से उस पुरुष के विषय में भी अपनी जानकारी बनाने के लिये पूछा जिसने अयोध्या में घूमते हुए उस ब्राह्मण से बातें की थीं जो कहता फिरता था, कि "वह कौन पुरुष है जिसने पतिव्रता स्त्री को उसकी साड़ी और चादर

चीर कर तज दिया। वह बड़ा ही निठुर है, उसे जरा भी पीड़ा नहीं हुई। वह निर्दय उस सोती हुई को छोड़कर चला गया।" इस बात ने नल के हृदय को मानो चीर दिया। उससे पहले की जो दरार थी वह नई होकर फिर पीड़ा देने लगी। प्रेमाग्नि ने उस घाव को फिर सेकना आरम्भ किया। हँसता हुआ मुख रखते हुए भी उसकी आँखें लाल हो गईं और उनसे अश्रुधाराएँ निकल पड़ीं। वह फिर बोला, "हे मित्र! सुन, वह पुरुष भी हमीं से है। वह या तो मैं हूँ या वह मेरे संग ही है। दूसरी जगह कहीं नहीं है। इतना सुनते ही वह चर सीधे दमयन्ती के पास आया और उससे बाहुक की सब बातें ब्योरेवार कह सुनायीं। चर ने दमयन्ती से कहा, "बाहुक को ही प्रीतम समझो। मैं उसके हृदय में प्रेम की पीड़ा पाता हूँ। उसमें विरहाग्नि भरी हुई है। ऊपर से देह काली पड़ने का कारण यह है कि वह विरहाग्नि से दग्ध हो चुकी है। उसके बोलने से अग्नि की लपटें ऐसी निकलती हैं मानो उसका मुख मुख न होकर अग्नि की भट्टी ने मुख खोला हो। वह चुभने वाले वचन कहता है और उसका मन तुम्हीं में लगा रहता है। अन्त में जब तुम्हारा नाम सुना तो उसकी आँखों से रुधिर की धाराएँ बह चलीं। वह निश्चय ही तुम्हारा पति है। समय रहते उसे पहचान लो। उसके चले जाने पर फिर रोना होगा।" दमयन्ती ने कहा, "हे भाई! मैंने भी बातें सुनकर प्रियतम को पहचान लिया है। परन्तु भ्रम को सब तरह से दूर कर देना अच्छा है जिससे पीछे पछताना न पड़े। इसलिए भोजन की सामग्री और रीते घड़े लेकर बाहुक के पास जाओ। यदि वह नल होगा तो बिना जल और अग्नि के रसोई तैयार कर लेगा। नल के देखते ही खाली घड़े पानी से भर जाते हैं और उसके स्मरण करते ही अग्नि भी चली आती है। इनके अतिरिक्त कुछ सुगन्धियुक्त फूल लेजाकर उसके हाथ में देना। यदि हाथ से मलने पर फूल ज्यों के त्यों अम्लान और सुगन्धियुक्त बने रहें तो बाहुक निःसन्देह नल के अतिरिक्त और कोई नहीं।" वह मनुष्य तत्काल फूल, जलरहित घड़ा और रसोई का सामान लेकर बाहुक के पास गया। बाहुक उन्हें देखते ही बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने समझ लिया कि वह सब उसकी परीक्षा के लिये भेजा गया है। उसे प्रिय का मिलन निकट दिखाई दिया। उसने पहले फूलों को लेकर हाथ से मला तो उनके तेज रंग, और सुवास में और वृद्धि हो गई। देखने वाले आश्चर्य करने लगे। फिर उसने खाली घड़े की ओर देखा, वह पानी से भर गया। तत्पश्चात् बरतन के अन्न में नमक जल डाल और सुवास का संचार कर उसे हाथ में लिया तो तत्काल उफान आकर भोजन भी तैयार हो गया। फलतः यह परीक्षा सब तरह उसकी साक्षी बन गई। वह मनुष्य भोजन के बरतन को लेकर दमयन्ती के पास वापस आया और उसे बरतन देकर जो कुछ देखा वह वर्णन कर सुनाया। दमयन्ती ने पहले भोजन को सूँघा और फिर प्रेम से उसे खाया तो उसमें सुगन्धि, रस और मिठास आदि सब वैसे ही पाए जैसे नल के बनाए भोजन में रहते थे। इस पर उसे निश्चय हो गया कि बाहुक ही उसका पति है। उसने अपने बालकों को भी उसके पास भेजा। बाहुक ने उन्हें दौड़कर गले लगा लिया और रोने लगा। राजा ऋतुपर्ण यह देख रहे थे। उन्होंने बाहुक से उन बालकों का परिचय पूछा। बाहुक ने कहा, "महाराज! इन्हीं बालकों के समान मेरे दो बालक थे जिनका स्मरण कर मैं रो उठा हूँ। दमयन्ती ने जब इसका भी परचा पाया तो उसे बाहुक के पति

होने में पूर्ण विश्वास हो गया और वह तुरंत माता के पास गई। उसने माता को पति के आने का समाचार दिया और जिस जिस प्रकार पति की परीक्षा की वह भी सब सुनाया। माता ने उसी क्षण चर भेजकर बाहुक को बुलाया। दमयंती बाहुक के सामने जाकर सीधी खड़ी हो गई। नल की दृष्टि जैसे ही दमयंती की दृष्टि से मिली, वह रोने लगा। उसके आँसू निकलते समय लाल दिखाई दिए और गिरते समय सफेद। यह नल में विशेष बात थी। दमयंती ने जब यह भेद भी पाया तो वह जोर से रो उठी। वह बोली, "प्रियतम! मुझे वन में छोड़कर तुमने जैसा किया वैसा कोई नहीं करता। संग रहते भेद उत्पन्न किया और जिस मिलन की सदा इच्छा रहती है उससे अलग हो गए। दूर भी होते हैं तो परीक्षा नहीं होती। बिछुड़े हुए मिलन हो जाने पर फिर गले लगते हैं। सचमुच, मैं इस मिलन के कारण मारी गई। मैं तुमसे जुड़ी हुई थी, पर तुमने अलग किया। सुना है, कपटी लोग मिलन में भी अलग रहते हैं। हे कंत! तुम्हें भी मैंने वैसा ही देखा। बताओ, कौनसा हित सोचकर पहले भूमि पर बिछौना बिछाया और मुझे गल से लगा सुलाया फिर मुझ निद्रा में छोड़ विछोह किया। क्या मिलन में कोई ऐसा करता है? यदि मैं जानती कि मुझे कपट से सुलाकर तुम स्वयं अलग हो रहे थे तो मैं किस लिये सोती और किस लिये तुम जैसे रत्न को खोती। तुमने मुझे कंठ से लगाकर सुलाया, पर मन में गाँठ धरे रहे। फिर भी, जाने दो, वह बात बीत गई। अब तो मिलो। क्या अब भी वह गाँठ नहीं छोड़ोगे।" नल ने कहा, "हे सुन्दरी! यह सब प्रारब्ध वश हुआ। प्रारब्ध कभी नहीं मिटता। उसका भोग करना पड़ता है। जो कुछ किया प्रारब्ध ने किया। उसी ने कारण के रूप में कलियुग को बीच में डाला जिससे विछोह हुआ। अब दिन फिर लौट आए हैं। वह कलियुग मित्र बन गया है। परन्तु तूने तन के लिये विछोह माना, नहीं तो मैं तुझमें ही समाया हुआ हूँ। क्षण भर के लिये भी तुझसे अलग नहीं हुआ, भूल से तेरे ही मन में भ्रम उत्पन्न हुआ है। तूने ही अपने मन में गाँठ डाली है जिसके कारण मुझसे संबंध विच्छेद कर देह से सम्बन्ध जोड़ा है। देह सुख के लिए तूने मुझे भुला दिया है और वर बुलाकर वरण किए हुए को खो दिया है। हे दमयंती, तेरी देह का पति सुखी पुरुष है, पर मैं तेरे हृदय का स्वामी हूँ इसलिये देह की तरह अपना हृदय भी मुझ से न फेर।"

दमयंती नल का उत्तर सुनकर बहुत विकल हुई और बोली, "—हे स्वामी मैंने तुमसे सम्बन्ध नहीं तोड़ा है वरन् सबसे उदासीन होकर तुमसे ही नाता जोड़ा है। देह का सुख मैं कुछ नहीं गिनती। अपना तन, मन और प्राण सब कुछ तुम्हीं को समझती हूँ। तुम्हें बुलाने के लिये ही आज का आयोजन किया। एक दिन में सौ योजन की गति से रथ चलाने की कला केवल तुम्हीं जानते हो। इसलिये यह सोचकर कि यदि तुम अयोध्या में हो तो रथ द्वारा एक ही दिन में यहाँ पहुँचोगे। फिर भी, यदि तुमने अपने मन में ऐसा ही समझ लिया है तो ये सूर्य और चन्द्रमा साक्षी भरेंगे तथा मेरी देह के संगी—पृथ्वी, पवन, अग्नि और वरुण भी भ्रम का निवारण करेंगे।" दमयंती के ऐसा कहते ही तत्क्षण अग्नि, पवन और वरुण देह सहित प्रकट हुए; उन्होंने उसके सत की साक्षी दी। इससे नल को परम संतोष हुआ और उसने दमयंती को शृंगार करने के लिये कहा।

स्वयं भी उसने सर्प का स्मरण किया। सर्प तत्काल प्रकट हुआ और उसने उसका विष उतारा तथा कंचुली पहना कर उसे पूर्व रूप में ज्यों का त्यों कर दिया। तत्पश्चात् नल और दमयंती आनन्द पूर्वक मिले।

राजा ऋतुपर्ण को जब नल दमयंती के मिलन का समाचार मिला तो वे उसी समय नल के पास गए और उससे अपनी अज्ञानता के लिये क्षमा माँगी। नल ने राजा ऋतुपर्ण की प्रशंसा की और उनकी उदारता के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए उन्हें शालिहोत्र विद्या सिखाई। राजा ऋतुपर्ण कुछ दिन नल के साथ प्रेम पूर्वक रहकर फिर अयोध्या चले गए। तत्पश्चात् नल शीघ्र ही राजा भीम से बहुतसा धन और हाथी, घोड़े, रथ तथा सेना लेकर कुंडनपुर से उज्जैन आया। उसने पुष्कर को जुए में हराकर अपना राज्य वापस ले लिया और फिर दमयंती के साथ आनन्दपूर्वक रहने लगा।

महाभारत की कथा से अंतर

महाभारत से वृहदश्व ऋषि और युधिष्ठिर के संवाद के रूप में नल दमयंती की कथा वन पर्व के अन्तर्गत अट्ठाईस अध्यायों (५२-७९) में वर्णन की गई है। उससे प्रस्तुत कथा में कई स्थलों पर अन्तर पाया जाता है :—

आरम्भ का तो अधिकांश (दमयन्ती के स्वयंवर की चर्चा चलन तक) कल्पित है। इसमें पहली बात तो यह है कि हंसों को कोई स्थान नहीं दिया गया है। महाभारत में हंस नल दमयन्ती के बीच प्रेम संदेसा पहुँचाने का कार्य करते हैं और तत्पश्चात् लुप्त हो जाते हैं। प्रस्तुत कथा में हंसों के स्थान पर भाटिन की योजना की गई है। भाटिन रूप में अनूप और गायन में निपुण एवं अपूर्व है। वह नल की सभा में आरंभ में ही प्रकट हो जाती है और पद्मिनी के विषय में चर्चा छिड़ते ही प्रमुख वक्ता का स्थान ग्रहण करती है। उसकी प्रगल्भ वाक्शक्ति के आगे सारे सभासद निस्तेज हो जाते हैं। पद्मिनी के परिचय से आरम्भ कर कुंडनपुर नगर, राजा भीमसेन, रानी राजमती, पद्मिनी स्वरूपा राजकुमारी दमयन्ती और हस्तिनी, शंखिनी, चित्रणी एवं पद्मिनी नामक स्त्रियों के विशद वर्णन द्वारा वह नल को मुग्ध करती हुई उसकी सुध बुध खो उसे प्रेम पथ पर आरूढ़ करती है। इसके पश्चात् हंसों की तरह उसका भी कोई पता नहीं चलता। इससे स्पष्ट होता है कि स्वाभाविकता लाने के लिये भाटिन द्वारा प्रस्तुत किया गया विस्तृत विवरण कवि को अभिप्रेत था। हंसों द्वारा, उनके पक्षी होने के कारण, वैसा वर्णन करना सम्भव न था एवं वह अस्वाभाविक होता। दूसरी बात यह है कि दमयन्ती को पद्मिनी के रूप में चित्रित किया गया है और उसकी उँगलियों में अमृत बताया गया है जिसके आधार पर वन में मछलियों के जीवित होने की कथा गढ़ी गई है। महाभारत में ऐसा कुछ नहीं है। वहाँ दमयन्ती को अत्यन्त रूपवती बताया है; मृतक मछलियों के जीवित होने की कथा उसमें नहीं है। तीसरा परिवर्तन यह किया है कि दमन ऋषि को राजधानी से चार कोस दूर वन में तपस्या करते हुए दिखाया गया है। राजा भीमसेन वहाँ उनके दर्शन के हेतु जाते हैं और ज्ञानोपदेश के अनन्तर फल प्राप्त करते हैं जिनके प्रभाव से रानी के गर्भ से सन्तान उत्पन्न होती है। महाभारत के अनुसार

ऋषि राजा के ही घर पर आते हैं। चौथा परिवर्तन यह है कि दमयन्ती के हृदय में नल का प्रेम सहसा उत्पन्न होता है। यह प्रेम का माहात्म्य दिखाने के लिये किया गया है।

कल्पितांश के पश्चात् मूल कथा में प्रमुख रूप से निम्नलिखित अन्तर पाए जाते हैं—

१—इंद्र के साथ वरुण, कुबेर और यम कुंडनपुर जाते हैं। महाभारत में कुबेर के स्थान पर अग्नि का उल्लेख है। इसी तरह इनके द्वारा नल को वरदान देने में भी हेर फेर है।

२—देवताओं के दूत के रूप में दमयन्ती के भवन में पहुँचने पर नल को दमयन्ती ने पहचान लिया जिससे उसके प्रेम की महत्ता प्रकट होती है। महाभारत में ऐसा नहीं है। वहाँ नल अपना परिचय देता है।

३—दमयन्ती नल का रूप धारण किए हुए देवताओं को पहचानने में असमर्थ होने पर अंचित प्रभु की शरण में जाती है। महाभारत में दमयन्ती देवताओं से ही अपना वास्तविक रूप धारण करने के लिये प्रार्थना करती है।

४—बनजारों के स्वामी के समझाने बुझाने पर दमयन्ती उसके साथ चंदेरी चलती है। महाभारत में दमयन्ती स्वतः ही बनजारों के स्वामी के साथ चंदेरी चलती है।

५—नल का राजा ऋतुपर्ण को लेकर कुंडनपुर पहुँचाने पर दमयन्ती ने उसका समाचार जानने के लिये चर भेजा और उसकी परीक्षा के निमित्त उसी चर के हाथ फूल, जलरहित घड़ा और भोजन की सामग्री भेजी। महाभारत में केशिनी नामक दूती नल का सामाचार लाने के लिये भेजी जाती है। उसमें फूल, घड़ा और ।ज सामग्री भेजने का उल्लेख नहीं है।

६—नल चर द्वारा बुलाए जाने पर जब दमयन्ती के सामने खड़ा हुआ . रोने लगा। उसके आँसू आँखों में लाल और गिरते समय सफेद दिखाई देते थे। मह' भारत में ऐसा कुछ नहीं लिखा है।

७—नल को वास्तविक रूप में करने के लिये कर्कोटक सर्प उपस्थित होता और उसके शरीर से विष का शोषण करता है तथा उसे दी हुई कंचुली पहनाता है महाभारत में कर्कोटक के आने का उल्लेख नहीं है, केवल कंचुली पहन कर ही न. अपने प्रकृत रूप को प्राप्त करता है।

इनके अतिरिक्त छोटे-छोटे अंतर बहुत हैं, पर वे नगण्य हैं। प्राचीन (ऐतिहासिक या पौराणिक) कथाओं को अपनी कल्पनानुसार काव्य रूप देने में कवि लोग स्वतंत्र — इसमें संदेह नहीं। परंतु एक स्थल पर कवि की उद्भावना चित्य है। दमयंती की उं में अमृत होने की कल्पना बहुत शिथिल है। उस अमृत को स्वयं नल दमयंती ने जाने कितनी बार चखा होगा। इस दृष्टि से उन्हें अमर हो जाना चाहिए था। इस अतिरिक्त मरे हुए बनजारों के समूह को भी जीवित किया जा सकता था। इन बा.

को दृष्टि में रखकर कवि को कुछ न कुछ सामंजस्य बैठाना चाहिए था। कहने का तात्पर्य यह है कि यह कल्पना अव्याप्ति दोष से ग्रसित है।

सूफी विचारधारा

प्रस्तुत काव्य मे सूफी विचारों का अनुकरण दो तरह से किया गया है। एक तो रचना प्रकार को लेकर और दूसरा प्रेम साधना को लेकर। यहाँ इनका क्रम से उल्लेख किया जाता है:—

रचना प्रकार

१—सूफी प्रेमाख्यानकों की तरह प्रस्तुत काव्य भी अवधी में है। इसकी रचना भी दोहे चौपाई छंदों मे हुई है और इसमें भी अध्यायों या सर्गों का उपयोग नहीं किया गया है।

२—सूफी लोग कथा के पहले परमात्मा की स्तुति, समसामयिक शासक की प्रशंसा, पैगंबर की वंदना और गुरु (पीर) का वर्णन करते हैं। इसमें भी ऐसा ही किया गया है। समसामयिक शासक (शाहजहाँ) और गुरु का वर्णन पीछे किया जा चुका है। परमात्मा की स्तुति वेदांत के आधार पर है। उसमें वेदांत पर स्थित अन्य दार्शनिक विचारों विशिष्टाद्वैत, भेदाभेद और अद्वैत का भी उल्लेख मिलता है:—

जो कोउ कहै 'अंस' हौं ताको। एक रूप मेरो अरु वाको॥
तिहि अपनो अंसै कै जानी। निरमल अमल आप सौं मानी॥

—विशिष्टा द्वैत

जो कोउ ढीठ कहै हौं सोई। मो अरु वामैं भेद न कोई॥
तापर रीझि बहुत सुख मानै। अंतर मेटि आप सौं सानै॥

×　　　　×　　　　×

निज समुझौ तो एकौ सोई। साहव सेवक भेद न कोई॥
जड़ चेतन अंतर पुनि नाहीं। सवै समाइ रहै ता माहीं॥
ज्यों जल माँहि बुद बुदाभयेऊ। है जल नांव और होई गएऊ॥ आदि

—अद्वैत [दोहा-७

साहव (मोहम्मद साहव) धर्म का भी उल्लेख मिलता है:—

जो ताकौ साहव कै मानै। ताहि वहौ सेवक कै जानै॥

[दोहा—७]

पैगंबर (मोहम्मद साहव) की वंदना भी सूफी रचनाओं में रहती है। पद्मावत से मोहम्मद साहव को परमात्मा द्वारा निर्मल ज्योति के रूप में उत्पन्न किया गया बताया गया है। प्रस्तुत काव्य में भी इसका अनुगमन करते हुए मोहम्मद साहव का तो नहीं, पर निर्मल ज्योति का वर्णन है। इसका 'मीत' शब्द से भी उल्लेख है, जिसके गुण का कवि कथन करता है—

अब 'गुन' कथन 'मीत' कै करौं । जिन्ह कै प्रेम प्रताप निस्तरौं ।।
जवते प्रघट मोहि निसितारे । उन एते केतै निस्तारै ।।
प्रथम 'निरमल वह जोति' उपाई । तिन्ह कै प्रीत सव सिष्टि वनाई ।।
रसन एक अस्तुति वहु भेखा । लिखै सो को नाहिन कछु लेखा ।।
जाके पेम हिय यह मदमाते । ताकै प्रीत प्रथमै रंगराते ।।
हौं वलहार नांव कै जाओं । जिन्ह प्रताप प्रभु दरसन पाओं ।।
औ उन्ह प्रेम विन मुक्ति न होई । जिन भूलौ भटकौ मत कोई ।।

[दोहा—१२

परंतु इस ज्योति को श्रुति में उल्लिखित ज्योति समझना चाहिए:—

'तत्तेजोऽसृजत'

नंददास ने भी 'परमजोति' के रूप में इस ज्योति का वर्णन किया है:—

प्रथमहि प्रणउ पेम मय, 'परम जोति' जो आहि ।
रूप उपावन 'रूप निधि,' निति कहत हे जाहि ।।

—रूप मंजरी

गो० तुलसीदास जी ने भगवान् राम को 'प्रकास रूप' और 'प्रकासनिधि' कहा है जो इस 'निर्मल ज्योति' से भिन्न नहीं:—

सहज 'प्रकास रूप' भगवाना । नहिं तहँ पुनि विज्ञान विहाना ।।
× × ×
पुरुप प्रसिद्ध 'प्रकास निधि,' प्रगट परावर नाथ ।
रघुकुल मनि मम स्वामि सोई, कहि सिवँ नायउमाथ ।।

—वालकांड

कवि कहता है, यही ज्योति प्रेम का विपय है और इसके प्रेम के विना मुक्ति संभव नहीं । जिसके हृदय को यह ज्योति प्रेम में मतवाला बनाती है या वनाना चाहती है वह पहले प्रीति में रंगता है । वष्णवों की प्रेमा भक्ति की तरह ही सूफियों का यह प्रेम है । नंददास 'रंगीले प्रेम' द्वारा ही भगवान् का सान्निध्य प्राप्त करते हैं:—

जदपि अगम ते अगम अति निगम कहत हे जाहि ।
तदपि 'रंगीले प्रेम' तेनिपट निकट प्रभु आहि ।।

—रूप मंजरी

तुलसी भक्तों के प्रेम के कारण अगुन (निरगुन) का सगुन ('सहज प्रकास रूप' भगवान् राम) होना वतलाते हैं:—

अगुन अरूप अलख अज जोई । भगत प्रम वस सगुन सो होई ।।

वही, वालकांड

कहने का तात्पर्य यह है कि यह 'निर्मल ज्योति' पदमावत में वर्णित मोहम्मद साहव की' जोति' से भिन्न है । हाँ, इतना अवश्य है कि इसका व्याख्यान मोहम्मद साहव

की वंदना के ढंग पर हुआ है । इसका कारण सूफियों विशेषतः पदमावत के रचना प्रकार का अनुकरण करना है । पदमावत में मोहम्मद साहब की वंदना इस प्रकार है:—

कीन्हेसि पुरुष एक निरमरा । नाउँ मुहम्मद पूनिउँ करा ।।
प्रथम जोति विधि तेहि कै साजी । ओ तेहि प्रीति सिस्टि उपराजी ।।
दीपक लेसि जगत कहँ दीन्हा । भा निरमल जग मारग चीन्हा ।।
जौ न होत अस पुरुष उज्यारा । सूझि न परत पंथ अँधियारा ।।
दोसरइँ ठाँव दई ओइँ लिखे । भए धरमी जो पाढ़ित सिखे ।।
जगत बसीठ दई ओइँ कीन्हे । दोउ जग तरा नाउँ ओहि लीन्हे ।।
जेइँ नहिं लीन्ह जरम सो नाऊँ । ताकहं कीन्ह नरक महँ ठाऊँ ।।
गुन अवगुन विधि पूँछत होइहि लेख अउ जोख ।
ओन्ह बिनउब आगे होइ करव जगत कर मोख ।।१।।११।।

प्रेमसाधना

सूफियों का मत अनन्य प्रेम द्वारा परमात्मा को प्राप्त करना है । समस्त संसार को व परमात्मामय देखते हैं । उनके इस सिद्धांत का आधार अद्वैत मूलक सर्वात्मवाद है जिसके आगे न तो अंधविश्वास ही टिकता है और न अंध परंपराएँ ही रहती हैं; लोक लज्जा के लिये भी कोई स्थान नहीं रहता । सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों में यह अद्वैत मूलक प्रेम भावना अप्रकट रूप मे रहती है । प्रेमाख्यानकों से भिन्न भावात्मक शैली मे लिखे गए सूफी काव्यों में एकांतिक प्रेम की उदात्त व्यंजना पाई जाती है । हिंदी में मिरजा मुहम्मद जान की 'प्रेमलीला'[1] इस विषय की सुंदर कृति है । उसमें बाँसुरी द्वारा प्रियतम (परमात्मा) का विरह जगाया गया है । बाँसुरी वनवारी से विछुड़ कर विरह दुःख मे रो उठती है । उसका रोना सुनते ही चराचर सृष्टि से खलवली मच जाती है । सब मोह निद्रा से जगते है और सबको प्रियतम की स्मृति होती है । फलस्वरूप वे सब भी प्रिय के विरह मे रो उठते है :—

बाँसुरिया बिछुरन भइ भारी । बिछुरन दुख वह रोइ पुकारी ।।
जब वह रोइ बिछुर बनवारी । धुनि सुन रोये पुरुष अरु नारी ।।
जल सों बिछरि मछरिया रोई । मेरो मिलन बहुरि कब होई ।।
कैसे निवहै जीवन मेरो । रीत परे संग तजौ न तेरो ।।
निकसि तीर सों बाहर पड़ी । खन उलटी खन सूधी गड़ी ।।
तरुवर सों जिमि पाती झड़ी । पौन की मारी इत उत पड़ी ।।
विरह वियोग किमि जान कोई । जापर बीते जान सोई ।।
अपने प्रीतम लाल से, मिलि बिछुरै जनि कोइ ।
बिछुरन दुख सो जानहिं, जो कोइ बिछुरा होइ ।।

पाद टिप्पणी—

१. उन्नीसवाँ खोज विवरण (का० ना० प्र० स०), संख्या १२७ ।

वंशी की ध्वनि का संबंध नाद से है। नाद को हिंदू शास्त्रों में ब्रह्म (ॐकार) का स्वरूप माना है। प्रणवनाद (ॐकार) से अनाहत (सूक्ष्मनाद) और आहत (स्थूलनाद) उत्पन्न हुए। आहत नाद से दो प्रकार के नाद निकले—जीव जन्य (शब्द) और जड़जन्य (ध्वनि) तथा इन प्रत्येक के अमधुर और मधुर करके दो दो भेद हैं। इस प्रकार जीव की तरह वंशी ध्वनि भी वनवारी (शब्द ब्रह्म, ॐकार) से बिछुड़ी हुई है, ऐसा भी समझना चाहिए। प्रत्यभिज्ञा जगने पर वह रो रही है। कहते हैं गोपियों के प्रति अभिमान दिखाने के कारण श्री कृष्ण की वंशी को भी उनसे अलग होना पड़ा। स्वामी हित हरिवंश जी को श्रीकृष्ण की वंशी का अवतार बताया जाता है। ऐसे ही और भी कई वंशी के अवतार कहे जाते हैं। सूफी लोग अपने 'प्रेम संगीत' को भी बाँसुरी से उपमा देते हैं:—

फिर अनुराग 'बाँसुरी' बाजी। सं अभिलाख स्वान्त उपराजी ॥

—अनुराग बाँसुरी

वैष्णव भक्ति साहित्य में श्रीकृष्ण की वंशी की प्रसिद्धि तो है ही, संतों के षट्चक्र साधन क्रिया में भी इसका उल्लेख मिलता है। परंतु वहाँ कान्हा के द्वारा बजने के कारण यह मन को 'भूपाल' बनाकर निहाल कर देती है। त्रिकुटी से कुछ ऊपर की साधना क्रिया में प्रवृत्त होते ही वंशी की ध्वनि सुनाई देने लगती है:—

सोची सोची मनूआ रहल मुरझाइ। एहि अवसर कान्ह मुरली बजाइ ॥
मुरली को धुनि सुनी मन भैला पूसिआल। रहलो भीछूक जनु भैलो भुअपाल ॥
धुनी सुनी मनुआ उपर चली गेल। तहवा देपल एक अदबूद पेल ॥
बीना रवी ससी ताहा होला उजिआर। रीमी झीमी मोतीआ बरीसु जलधार ॥*

—महराई गोसाईं धरनीदास

अस्तु, प्रस्तुत काव्य में भी कवि ने बहुत से स्थलों पर अपना (वास्तविक) अर्थ छिपाया है जो सब किसी से नहीं पाया जा सकता। बहुत से लोग समुद्र को जहाजों द्वारा पार करते हैं, परंतु मोती खोजने वाले समुद्र में ही धँसते हैं:—

बहुत ठौर निज अरथ दुरावा। सब काहू पै जाइ न पावा ॥
बहुत लोग बोहित चढ़े, दधि पर आवैं जांहि।
मुकता पावै मरजिया, धसि खोजै ता माँहि ॥२७॥

इस काव्य में नलदमयंती के प्रेम के अतिरिक्त ज्ञान और व्यवहार धर्म का प्रतिपादन है। प्रथम के अनुसार नल के लिये दमयंती और दमयंती के लिये नल प्रेमस्वरूप परमात्मा के रूप में हैं। दोनों के हृदय में जब एक दूसरे के प्रति प्रेम प्रकट होता है तब दोनों मिलने के लिये व्याकुल होते हैं। परंतु लोक की अनेक कठिनाइयों

पाद टिप्पणी—

* अठारहवाँ खोज विवरण (का० ना० प्र० स०), संख्या ११४ ख।

के कारण सरलता से मिल नहीं पाते। इसलिये वे विरहाग्नि में तपने लगते हैं। यही विरहाग्नि उनकी साधना स्वरूप है। उनकी इंद्रियाँ अपने-अपने विषयों से विरत हो जाती हैं। उन्हें न तो नींद ही आती है और न भूख प्यास ही लगती है। राग रंग से मन हट जाता है और विरक्तों की तरह संसार से कोई नाता नहीं रह जाता। उनकी चित्त-वृत्तियाँ एक दूसरे में एकाग्र हो जाती हैं। सच्चे (सात्विक गुण प्रधान) प्रेम में उनकी इस एकाग्र (ध्यान, धारणा और समाधि युक्त) स्थिति का सादृश्य गीता के निम्नलिखित श्लोक के संयमी में मिलता है :—

या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

इस प्रकार विरह के तीव्र वेग के कारण प्रलाप की स्थिति में दोनों अपने-अपने प्रेम को एक दूसरे के प्रति जिस प्रकार व्यक्त करते हैं उससे प्रेम की लौकिकता अलौकिकता की ओर जाती हुई लक्षित होती है। यही अलौकिकता प्रस्तुत कवि का गुप्तार्थ है। इसमें प्रेम की अलौकिकता के साथ-साथ रहस्यमय सत्ता के प्रति भी इंगित रहता है। कुछ उदाहरण दिए जाते हैं :—

नल का विरह

[प्रेम का अलौकिक वर्णन और परमात्मा की ओर संकेत]

हौं जागौं तोहि लागि दमावत। तोहि सुख चैन नींद कित आवत॥
हौं भै भवंर भवौं वैरागी। तू सरोज सुख सर अनुरागी॥
हौं चातक पिउ पिउ रट मोरे। तूं स्वांती भायै नहिं तोरे॥
मो मन चित चकोर विन देखें। तू सो चंद तोर नहिं लेखें॥
मो गति ज्यों मछरी विन पानी। तू अपने पानी अभिमानी॥

[दोहा—१२२

× × ×

मो सों विनती पै बन आवै। होइ सो वहै जो पिउ कौ भावै॥

× × ×

औ पुनि यहौ वात कछु नाहीं। सव जग जीव देइ तो माहीं॥
जाकों कृपा दृष्टि कर हेरसि। ताही के दुख दाह निवेरसि॥

[दोहा—१२३

× × ×

पेम समुद्र अथाह अपारा। तहां परै को काढन हारा॥
नदी समाइ जाइ इक ओरा। का सिख बूंद करै तिहिं जोरा॥

× × ×

पेम पहार अकास उचाहीं। सिख दोला ना ऊपर ताहीं॥

[दोहा—१

प्रेम साधना-पंथ

सो तो सूझत तुमहि दुहेला । जिनहुं न भयो पेम कर मेला ।।
उपज न हियँ विरह वैरागू । भयौ न अगवहुं कै पिछलागू ।।
तिन यह पंथ सुगम करि जाना । जिन्ह कर पेम पंथ मन आना ।।
हौं सिख सीस चरन कर धाऊँ । पैग पैग चल चाव बढाऊँ ।।
बसौं न बीच रैन दिन चलूं । तौ लगि जौ लगि मीतहिं मिलूं ।।
ज्यों ज्यों चलूं उमंग त्यों होई । पेम पंथ पर थकै न कोई ।।
जो तन हार रहै तजि जाऊं । मन पग पिउ मग सों न डिगाऊं ।।

पेम पंथ मोहि अति सुगम, भूख प्यास डर नाहिं ।
कसक करेजै काटही, नीर जु नैनन माहिं ।।१२६।।

× × ×

सीसैं एक ओर कै डारैं । तब इहं ओर आइ पग धारैं ।।
पेम खेल महं माथैं बाजी । सो खेलैं जो इह पर राजी ।।
यह देखो पुनि अचरज रीता । जो हारैं जानहु तिन जीता ।।

पेम समुद्र अपार अति, नाहिं ओर नहिं छोर ।
जो बूड़े सोई तिरैं, यहै पेम दधि ओर ।।१२७।।

सांसारिक भोगों से विरक्ति

हों अस राज न मन मैं लाऊँ । जिहिं सुख उरझि मीत बिसराऊँ ।।
जो जिउ मांझ मिले पिउ सोई । तौ यह राज कुसल पै होई ।।
नाहित पेम अगिन तन जारौ । झूठे राज जनम का हारौ ।।

हार जनम राजा घनें, गए उघांइ निसान ।
तैं जीते जेई परें, जूझ पेम मैदान ।।१२८।।

[लोक लज्जा की उपेक्षा]

पुनि तुम यह सिच्छा मुख आनी । चलै देस महं हास कहानी ।।

× × ×

डरों न हास कलंक सों, जो पेम रहे मन माहिं ।
इहि आँसू परवाह जल, कित कलंक ठहराहिं ।।१३२।।
पुनि तुम यह बोले सिष बानी । राजन्ह महँ होइ है अपमानी ।।

× × ×

झूठ मान ए मान सब, काया के सनमान ।
मान कियौ मै मान सों, रीझ पेम अपमान ।।१३३।।

× × ×

[प्रिय शोध (मिलन) की कठिनाई]

बढ़ी रजाई ऊँच दुवारा । सब कर तहाँ कहाँ पैसारा ।।
करहिं द्वारपालक कठिनाई । आयसु बिना पवन न ढुराई ।।
कै सो जाहि जो ग्याता होई । जिहि औ राजहिं भेद न होई ।।
ग्यातहि जात अटक कछु नाहीं । को बरजै अपने घर जाहीं ।।
कै सो जाहि जिहि आप बुलावै । पेम बसीठ होइ पहुँचावै ।।
जो जद्यपि पहुंचै उतकोई । तौ आवन पुनि उलटि न होई ।।
हेरि रूप वह जाइ हिराई । तिहि मिल आपा देइ गवांई ।।
इहै कठिन सोध पिउ केरा । कोउ न फिरा जिनहि मुख हेरा ।।

काहि पठाऊं पीउ पहं, को दो जिउ को होइ ।
एक जीउ के देइ बिनु, पीउ न पावै कोइ ।।१३५।।

[ध्यान की एकाग्रता और अद्वैत स्वरूप दर्शन]

सांचो प्रीत न रहै दुरानी । जिन जासों लाई तिन जानी ।।
तन यह दिस्टि मात्र लों न्यारा । सो एकइ जो जानन हारा ।।
औ पुनि अचल प्रीत जब होई । तब तिनहूं महं भेद न कोई ।।
अंतर तौलों देइ दिखाई । जौलों मैं तू बीच कचाई ।।
तनमैं भए न अन्तर कोई । तन औ प्रान सो एकै होई ।।

तन सब ताहि अतन महं, अतन सबै तन माहं ।
वहै अतन तब मैं भयो, अतन दुतिय पुनि नाहं ।।१३८।।

ध्यान की एकग्रता सिद्ध हो गई तो प्रेम साधना भी सिद्ध होगई । फलस्वरूप प्रियतम का दर्शन या तो उसी समय हुआ समझिए और यदि नहीं तो उसमें नाम मात्र का विलंब समझना चाहिए । जब 'अति प्रबल अवस्था' हो जाती है तो 'बरखा' होने में कोई संदेह नहीं रह जाताः—

जब अति प्रबल अवस्था होई । तब बरखा संदेह न कोई ।।
कहु को दुखी जो पेम दुख, जिन सुधि पिय ना लेइ ।
बैद लिये औखद निकट, पीर बिना कहं देई ।।१३९।।

इसीलिये नल की प्रेम साधना अंतिम सीमा तक पहुंच गई तो उसे स्वयंवर में जाने का निमंत्रण मिला ।

दमयंती का विरह

[प्रेम साधना की गंभीरता]

सुरत ध्यान पिउ सों अनुरागी । बातैं करैं विरह बैरागी ।।
प्रीतम सुरत करसि क्यों न मोरी । सब जग छांड़ि भई हौं तोरी ।।
अब लगि विरह बान मैं सहे । रोमहि रोम पैठि तन रहे ।।
अब लागें सो घाव पै लागें । जिउ अकुलाइ चहै तन त्यागें ।।

जदपि जीउ तन त्यागि कै, वेग मिलै तोहि जाइ ।।
पै मन चाव कि तो अछुत, जीउ तो माहि समाइ ।।१५५।।
पिउ जिउ तू तो विन कल नाहीं । मोहि जिउ को संसा कछु नाहीं ।।
यह जव तव तो सों मिल रहा । अवहूं अनमिल जाइ न कहा ।।
निज जिय धाम अतन तन तोरा । यह मन भूल कहै जिउ मोरा ।।
तिन कारन विनती हौं करौं । हा हा खाइ सीस भुइं धरौं ।।
तन तोहि लागि वहुत दुख पावा । रूप रंग रस सवहिं गवांवा ।।
× × ×
विरह रोग सिर वहुत चढ़ावा । ताहूं पै नित करै सवावा ।।
प्रीतम जिउ तू तन अलग, सदा रहै तुव पास ।
विरह त्रास दुख तन सहै, सोई जाइ निरास ।।१५६।।

[परमात्मा की ओर संकेत]

पंच सत्रु हौं एकली, जूझत हौं इन मांह ।
गाढ़ परै पिउ तोहि भजूं, जो राखो गहि वांह ।।१६१।।
हौं अनाथ कछु होय न मोसों । जो कछु होइ नाथ सव तोसों ।।
मोसों यही पेम दुख भरना । नाउं तिहारो सुमिरन करना ।।
यह वल नाहिं कि तुम पहं आऊं । मिलि कै तन की तपत वुझाऊं ।।
तुमहीं प्रघट होहु जो आई । आपा आन देहु दिखराई ।।
तवही पिउ दरसन हौं पाऊं । इन सत्रुन सों आप छुड़ाऊं ।।
महाराज तुमसों सव होई । तुम कहं वरजनहार न कोई ।।
तुम अपने सत्रुन कै वरता । सव करि सकै आप जो करता ।।
जो तुम आइ करहु वट फेरा । कहो तुम्हें कौने धौं घेरा ।।
दोहा—१६२
× × ×
औ इहि मैं कछु दोस न मोरा । जो कछु करै सो वह चित चोरा ।।
छिन छिन घाव घाव पर लावै । दिस्टि अगोचर वान चलावै ।।
धानक वही धनुक पुनि सोई । आपहिं वान और नहिं कोई ।।
आपहिं वेझि घाव उर करै । आपहि तहां लोन होइ परै ।।
दोहा—१६६

[संसार और लोक लज्जा का त्याग]

प्रीतम सुरत करसि क्यों न मोरी । सव जग छांड़ि भई हौं तोरी ।।
दोहा—१५५
× × ×
प्रीतम काज लाज मैं खोई । रोइ रोइ अंसुवन सव धोई ।।
× × × ×
जो पिउ लागि लाज पै जाई । जाहु निलज मोरे प्रभुताई ।।
[दोहा—१५९

नल दमयंती का यह साधनात्मक प्रेम पत्नीव्रत और पातिव्रत्य धर्म के रूप में सामने आता है। वास्तव में ऐसे ही स्त्री पुरुषों का प्रेम लोक रंजक के साथ साथ लोक कल्याणकारक होता है। ये एक दूसरे को परमात्मामय ही देखते हैं। इनकी रहनी गहनी शुद्ध सात्विकता लिये हुए होती है। इनमें सद्‌वृत्तियों का पूर्ण विकास पाया जाता है जिनसे इन्हें अमृतत्व प्राप्त होता है। अपने अकृत्रिम मधुर व्यवहार से ये सब को मोह लेते हैं। जीव जंतुओं के प्रति सदय रहते हैं। संसार का सारा वैभव प्राप्त होने पर भी ये विकार ग्रसित नहीं होते। ये लोक मर्यादा के संस्थापक और पालक होते हैं। समाज इनको अनुकरण करता है। नरनारी इनसे अनुप्राणित होकर अपने-अपने चरित्र का निर्माण करते हैं। इस प्रकार संसार इनसे कृत्य कृत्य होता है। ऐसे स्त्री पुरुष बड़े भाग्यशाली और उच्च संस्कार युक्त होते हैं। ये सर्दैव और सर्वत्र सुलभ नहीं होते। कभी कभी ही संसार में जन्म लेते हैं। परंतु जब जन्म लेते हैं तो संसार इनकी ख्याति सुन इन्हें देखने के लिये लालायित हो उठता है:—

आगे जगत थका सुनि सोभा। कौतुक कहं सब कर चित लोभा ॥

× × × ×

कोऊ धरै मिलन मन आसा। कोऊ देखा चहै तमासा ॥

[दोहा—१७१

सब अपनी अपनी भावनाओं के अनुरूप इनके रूप 'पानिप' के प्यासे हो जाते हैं। इस दृष्टि से इनके रूप की व्याप्ति मे अलौकिकता आ जाती है। इनके रूप के सामने संसार के रूप का मान नहीं होता। सूरज और चाँद लज्जित हो जाते हैं। ब्रह्म की तरह इनका रूप घट घट में व्याप्त हो जाता है। नारद ने दमयंती के रूप के संबंध में इंद्र से ऐसा ही कहा:—

चांद सुरज तिहिं देखि लजाहीं। रहा न रूप मान जग माहीं ॥
ब्रह्मरूप तिहि रूप जनु, घट घट रहा समाइ।
जिन हेरा तिहिं हेरि छवि, आपा दीन्ह हिराइ ॥१८४॥

× × × ×

बहुत देव कुंडनपुर गए। तिहिं 'पानिप' के प्यासे भए ॥

नारद जैसे ब्रह्मज्ञानी इस रूप मे ब्रह्म रूप का ही दर्शन करते हैं। भले लोग पहले तो काम से मोहित होते हैं, पर जब 'वर्ण से वर्ण' (स्त्री पुरुष का उत्तम जोड़ा) मिल जाता है तो प्रसन्न होते हैं। इंद्रादिक देवता और राजा ऋतुपर्ण के विषय में ऐसी ही बात है। इंद्रादिक देवता दमयंती की बुद्धि के आगे थक गए:—

औ पुनि इन्द्रादिक जे देऊ। इहिं चरित्र थकित भए तेऊ ॥
इन अवला कैसे नल जाना। कौने चिह्न पुरख पहिचाना ॥
पुनि प्रसन्न मन ह्वै सब बोले। अंत होय जो जिन्ह कै सोलै ॥
भली भई नारी नल पावा। विधना 'वरनहि बरन' मिलावा ॥

[दोहा—२०६

राजा ऋतुपर्ण नल से क्षमा माँगते हुए कहते हैं :—

पुनि ऋतुपरन मरम इह पावा । तिन्हहिं काल नल पहँ उठि आवा ॥
बोला बहुत चूक भइ मोसों । ओछी टहल गही मैं तोसों ॥
मैं तेरा तव भेद न जाना । अब लखि मरम बहुत पछिताना ॥
तू राजा मोरे घर माहीं । मै अजान तोहि जाना नाहीं ॥
[दोहा—३६०

दुर्जन लोग अंत में निराश होते हैं :—

बाला दइ नल कहँ जैमाला । चली और लोगन उर साला ॥
अपने उर सों साल उतारा । सोई दुरजन जन हिय डारा ॥
दामिनि कौंध दमंती गई । लोगन घटा रंध्र हिय भई ॥
सगरी सभा झुरै जनु लागी । विरध भये विरही वैरागी ॥
चातक ज्यों जिय हुती जो आसा । मिटी सो पिक लौं भई निरासा ॥
[दोहा—२०६

'राम चरित मानस' में इस जगद्भावना का बहुत ही उत्तम वर्णन किया गया है। विदुषों ने पुरुषोत्तम राम को विराट्मय देखा, योगियों ने परम तत्त्वमय, पुरवासियों ने लोचनसुखदायक और दुर्जनों ने भयानक :—

जिन्ह कै रही भावना जैसी । प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी ॥

× × × ×

विदुषन्ह प्रभु विराट मय दीसा । बहु मुख कर पग लोचन सीसा ॥

× × × ×

जोगिन्ह परम तत्त्वमय भासा । सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा ॥
हरि भगतन्ह देखे दोउ भ्राता । इष्ट देव इव सब सुख दाता ॥

× × × ×

पुरवासिन्ह देखे दोउ भाई । नर भूषन लोचन सुखदाई ॥

× × × ×

डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी । मनहुँ भयानक मूरति भारी ॥

× × × ×

सीता जी को तो कुटिल राजा राम से बल पूर्वक छीन लेना चाहते थे —
तब सिय देखि भूप अभिलाषे । कूर कपूत मूढ़ मन माखे ॥

× × × ×

लेहु छुड़ाइ सीय कह कोऊ । धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ ॥

तात्पर्य यह है कि प्रेम साधना में तपकर ऐसे स्त्री पुरुषों में अलौकिकता आजाती है और वे जीवन की सर्वोच्च भूमिका पर स्थित हो जाते हैं। वहाँ उन्हें कोई पराभूत नहीं कर सकता। यदि परालब्ध वश उन पर विपत्ति भी आती है तो अंत में फिर जय प्राप्त करते

हैं। इस प्रकार उनका प्रेम अमर हो जाता है। प्रेम का तत्व यही है। इसी से 'प्रीति-रस' होता है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने हनुमान को जानकी के लिये जो संदेश दिया था उसमे इसी 'प्रेमतत्त्व' का दर्शन होता है:—

कहेउ राम वियोग तव सीता। मो कहं सकल भए विपरीता ।।
नवतरु किसलय मनहु कृसानू। काल निसा सम निसि ससि भानू ।।
कुबलय विपिन कुंत वन सरिसा। वारिद तपत तेल जनु बरिसा ।।
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिविध समीरा ।।
कहेहू तें कछु दुख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई ।।
'तत्व प्रेम' कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा ।।
सो मन सदा रहत तो पाहीं। जानु 'प्रीति रसु' एतनेहि माहीं ।।

इस प्रेम संदेश ने अपना प्रभाव इस प्रकार प्रकट किया कि जहां जानकी पावक मे जलने की तैयारी कर रही थीं वहाँ इसने उनकी सारी सुधबुध खो उन्हें प्रेम में मग्न कर दिया:—

प्रभु संदेसु सुनत वैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही ।।

फलतः वे मृत्यु से बच गईं और मिलन होने तक रावण के अगणित अत्याचारों को सहन करती हुई भी निडर और अडिग बनी रहीं। रावण उन्हें मारना चाहता था, पर मार नहीं सका।

अस्तु, यही कारण है कि लोक ने शिव-पार्वती, राम-सीता, सावित्री सत्यवान और नलदमयंती के प्रेम को आदर्श रूप में अपनाया। ये महान् विभूतियाँ लोक मर्यादा की रक्षक और लोक जीवन को विकसित करने वाली हुईं। गृहस्थ धर्म (प्रवृत्ति मार्ग) इन्हीं के मार्ग पर चलने से 'प्रीति रस' युक्त होता है।

गुप्तार्थ के संबंध मे यह भी उल्लेखनीय है कि यह जितना पूर्वार्द्ध (कथारंभ से लेकर दमयंती के स्वयंवर की चर्चा चलने तक) में पाया जाता है उतना उत्तरार्द्ध में नहीं उत्तरार्द्ध में कहानी अधिकतर प्रकृत रूप में चलती है। इसका कारण यह है कि कवि पूर्वार्द्ध में प्रेम और ज्ञान का प्रतिपादन करना चाहता है और उत्तरार्द्ध में लोकव्यवहार का। इसका संकेत राजा भीमसेन के प्रति दमन ऋषि के उपदेश में मिलता है जिसमें ऋषि राजा को पहले परमात्मा और आत्मा के ज्ञान का उपदेश करते है और तदनंतर व्यवहार धर्म का:—

परमात्मोपदेश

सिद्ध कहा राजा सुन मोसों। निज यह मरम कहौं हौं तोसों ।।
जो सुनि समुझि बात उर धारेसि। अगम वस्तु कहं सुगम निहारेसि ।।
साईं एक वहै सब ठाऊ। सुन ताके तोहि चिन्ह सुनाऊँ ।।
स्थिर निर्गुण अतन अभेषा। चरम दिस्टि सों जाइ न देखा ।।
मुक्त न बद्ध सहज परकासा। ज्यों देखसि सब ठावं अकासा ।।
घट औघट अंतर कछु नाहीं। सिमट समाइ रहा सब माहीं ।।

सोई सब खलन कर खेला । और न संगी आप अकेला ।।
ये वहु खेल जो देहि दिखाई । चेतन सब महँ रहा समाई ।।
ता बिन करनी कछू न होई । गुन औगुन तिन्ह लगै न कोई ।।

ऐसे सब रंगन चुना, पै वह अपने रंग ।
जो निज वाको निरँग रंग, तासों भयो न भंग ।।६६।।

आत्मोपदेश

अब तोहि तोरो गति समझाऊँ । समुझ देखि निज कहि सुनाऊँ ।।
जो वह एकै सिमट समाना । घट औघट ता बिन नहिं आना ।।
त्यों तोरे घट तू पुनि सोई । निरख देख निज और न कोई ।।
जो वह सो तू सिमट समाया । मुआ न उपजा गया न आया ।।
जो तू आदि अंत पुनि सोई । मन उपाधि न मानहु कोई ।।
जो वह सो तू सिमट समाया । मुआ न उपजा गया न आया ।।
जो तू आदि अंत पुनि सोई । मन उपाधि न मानहु कोई ।।
यहे उपाधि आप जो विसारसि । भूल और को और विचारसि ।।
छांड़ि अमर पद मिरतक होई । तोरै कुमत काल भै तोही ।।
तोहि यह मिथ्या भरम जो भयऊ । औरहि ते औरहिं ह्वै गयऊ ।।
ज्यों धनाढ्य माया अधिकारी । सपने महँ होइ जाइ भिखारी ।।

माया निसि सपना जगत, नींद भरम अज्ञान ।
सोइ सांच समझा सवन, जागे कछु न निदान ।।६७।।

पै यह ज्ञान आज तोहि नाहीं । तू उरझा गाढ़े तिन माहीं ।।
तोरे जिय परतीत न आवै । मन मलीन संका उपजावै ।।
मारग कै जल ज्यों गदराना । मारग जल ज्यों होइ ठहिराना ।।
रतन दुरा गदरे जल माहीं । विना थिराने सूझत नाहीं ।।
ताते जो तोरे यह इच्छया । सुन उरधार देउँ तोहि सिच्छया ।।
प्रथम मांज मन दरपन काई । तब निरमल छवि देइ दिखाई ।।
सोहं स्वांस सबद मसकला । सहजहि जाय रैन दिन चला ।।
तासों लग सोई मन मांजे । मांज ग्यान अंजन द्रिग आंजै ।।
उघरैं नैन ग्यान हिय होई । रहै न द्वैत रहस होइ सोई ।।
मुकत होइ अलख जब सूझै । सहजैं सकल मरम तब बूझै ।।

दुविधा पवन मथान मन, तन मटकी दधि जीव ।
मथै मही माया निकसि, दह्यो रह्यो होइ जीव ।।६८।।

व्यवहारधर्मोपदेश

अब व्योहार करम सुन मोसों । जानि सुपात्र कहौं हौं तो सों ।।
तोहि दयाल दीन्ह बड़ राजू । तोहि अस का बहुतन कर राजू ।।

चीन्हक चलेसि धरम पग धारैं । राज करेसि सत धर्म बिचारैं ।।
होइ न दुखी राज महं कोई । राव रंक सुख मानहि दोई ।।
राजा जब नियाव पर आवै । सील छांडि कै सत्त दिढावै ।।
राव रंक सरवर कै जानै । समुझि दूध पानी निज छानै ।।
राजहिं यह बूझहिं तिहिं वारा । कस नियाव कीन्हेसि ससारा ।।
जो रंकहि वरियार सतावै । तिहँ पलटैं राजा दुख पावै ।।
राव रंक जिन्ह कर उपराजा । तिन्ह कर तैस रंक तस राजा ।।

राव रंक परजा सबै, राजा सब कर सोइ ।
यह सपने कै राज पै, गरब करो जिन कोइ ।।६६।।

ज्ञान के इन दो पक्षों को प्रस्तुत आख्यानक के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध में कलात्मक ढंग से क्रमबद्ध किया गया है । प्रथम ज्ञान का विषय निर्गुण ब्रह्म है और दूसरे ज्ञान का विषय व्यवहारधर्म । लोक व्यवहार का उपदेश पात्र (राजा) के अनुसार राजधर्म के रूप में हुआ है । परंतु राजा भीमसेन को किया गया यह उपदेश प्रस्तावना रूप में कोरा उपदेश समझना चाहिए । अन्यत्र यह 'कांता संमित उपदेश' के रूप में कहानी के साथ गुंथा हुआ है । कवि ने एक बात और की है । दमयंती के वर्णन में उसने परमात्मा को प्रम(प्रेमामृत) के रूप में चित्रित किया है और नल के वर्णन में ज्ञान रूप में । यह उनके लिंग भेद के कारण है जो स्वाभाविक है । परमात्मतत्त्व दोनों में एक ही है । दोनों शुद्ध सात्विक वृत्ति के होने के कारण वह तत्त्व उनमें पूर्ण प्रकाश रूप में भासने लगता है । रंगहीन शुद्ध काँच की बोतल में जैसे गंगाजल दिखाई देता है ऐसे ही उनके त्रिगुण मल रहित शुद्ध अंतःकरण में परमात्म रूपी आत्म तेज चमकने लगता है । इस प्रकार उनमें जिस रूप सौंदर्य का निर्माण होता है वह अनुपम, दुर्लभ और अलौकिक है । उसके आगे स्वयं रूप (जगद् रूप) का मुख फीका पड़ जाना उचित ही है । इस दृष्टि से इस रूप की उपमा के लिये ब्रह्म ही रह जाता है और ऐसा ही कवि ने किया है । यह भी बात है कि कहानी ब्रह्म की ओर इंगित करती हुई चलती है । नल के सौंदर्य का वर्णन केवल कहानी के आरम्भ में है और वह कवि द्वारा हुआ है । दमयंती के सौंदर्य का वर्णन भाटिन द्वारा तीन बार और कवि द्वारा उत्तरार्द्ध में दो बार किया गया है । यहाँ विषय स्पष्ट करने के लिये उनके आरंभिक रूप सौंदर्य का एक एक उदाहरण दिया जाता है । इन्हीं में समस्त भेद खुल जाता है—

नल का सौंदर्य

वह (ज्ञान रूपी नल) उज्ज्वल वर्ण वाला है मानो काम ने (परमात्मा का नाम 'काम' भी है इसलिये परमात्मा रूपी काम ने) अवतार लिया हो । जिसके मुख से सुना गया, वही उस रूप को सुंदर (वास्तविक, ब्रह्मरूपमय) कहता था । नल के मुख के आगे रूप (जगद् रूप) का मुख फीका था । उसके रूप की बराबरी कोई नहीं कर सकता था । मानो विधाता ने सब के घट-घट में उसी रूप को लिखा (मानो वही रूप सबके घट-घट में ब्रह्मरूप के समान व्याप्त हुआ) । उसके मुख की ज्योति सूर्य कांति (ब्रह्मज्योति) के समान थी । संसार में दिन करने वाले सूर्य की ज्योति उस ज्योति को

नहीं पाती थी। सूर्य को देखने से आँखों की ज्योति जलने लगती हैं और वे तब शीतल होती हैं जब हिम देखने को मिलता है। परंतु नल को देख लेने पर सूर्य को देखने के लिये कोई लालायित नहीं रहता था। जो नल को देख लेता था, वह उसमें सूर्य का (दूसरा अर्थ, ब्रह्मरूप का) दर्शन करता था। सूर्य को देखने से आँखों की जो गति (जलने की गति) होती है वही गति नल रूपी सूर्य को क्षण भर देखने से होती थी (अर्थात्, नलरूपी ज्ञान सूर्य अज्ञानांधकार युक्त आँखों को क्षण भर में जला देता था)। पुरुष अथवा स्त्री, जिसके भी चित्त में वह रूप (ब्रह्मरूप) झलक पड़ा, फिर वह जन्म भर उसके चित्त से नहीं टला। वह रूप संसार के हृदय में समाया हुआ जैसा था। जिसने उस रूप को देखा उसने अपने को उसी में हिरा दिया (दूसरा अर्थ, जिसने उस ब्रह्म रूप का दर्शन किया वह भी ब्रह्ममय हो गया)।

जितने राजा अविवाहित थे उन्होंने जैसे ही नल के रूप के विषय में सुना वैसे ही उन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया (वैराग्य इसलिये कि संसार की सुंदरी नल को छोड़ उन्हें नहीं वरेगी)। वे अग्नि वर्णयुक्त नल के वर्ण के कारण द्वेषाग्नि में जलने लगे।

दूसरा अर्थ

जो रजोगुणी (शुद्ध सात्विक गुण से अयुक्त) थे वे उस ज्ञानरूप के विषय म सुनते ही विरक्त (सांसारिक भोगों से अलग) हो गए। और ज्ञानाग्नि में तपे (नल के सदृश्य) शुद्ध सात्विक उज्ज्वल वर्ण प्राप्ति के निमित्त वे भी अपने रजोगुण को ज्ञानाग्नि में जलाने लगे।

ज्ञानोपदेश

यह लिखा जा चुका है कि कवि कहानी के साथ-साथ ज्ञानोपदेश भी करना चाहता है। नल के इस रूप वर्णन में ज्ञान द्वारा ब्रह्म प्राप्ति का उपदेश है—

ब्रह्म ही वास्तविक वस्तु है। वही काम है। उसका रूप अनुपम है। सब जगह और सब के हृदय में वही रूप व्याप्त है। उसके रूप की झलक मात्र मिलने से ज्ञान चक्षु प्राप्त होते हैं और ज्ञान प्राप्त होते ही ब्रह्म प्राप्त हो जाता है। ज्ञान की प्राप्ति के लिये त्रिगुणों (सत, रज, तम) को समूल नष्ट करके शुद्ध सात्विक वृत्ति प्राप्त करनी पड़ती है, आदि। कहानी के रूप में यह ज्ञान रसात्मक शैली में वर्णन किया गया है—

औ अति रूपवंत उजियारा। मानो काम लीन्ह अवतारा॥
जिन्ह मुग्ध रूप कहै तिहिं नीका। नल मुख रूप रूप सुख फीका॥
करै न कोउ रूप सरि तातें। घट जनु घट लिखि दीन्ह विधातें॥
सूर कांति वरनी मुख जोती। पै सूरह मुख जोति न ओती॥
नैनहिं जोति जरै रवि देखें। सीतल होहिं हेम तब पेखें॥
सूरह देखि लोभाइ न कोई। इन्ह देखें सो दरसन होई॥
जो गति नैनन की रवि ताकें। सो गति छिन ताकें मुख याकें॥

पुरुष नारि जाके चित परा । फिरि भरि जनम न चित सों टरा ।।
ब्रह्म रूप जग हीय समाना । जिन्ह देखा सो देखि हिराना ।।

जे रजवारैं अन वरैं, सुनि सोभा वैराग ।
अनल बरन नल बरन लग, बरन लगैं होइ आग ।।२६।।

दमयंती का सौंदर्य

वह (प्रेमामृत स्वरूपा दमयंती) जगत की सर्वश्रेष्ठ स्त्री पद्मिनी की अपेक्षा एक कला बढ़ कर है । उसकी हाथ की उँगलियों में अमृत भरा है जिनका धोवन मृतक के मुख मे देने से वह तत्काल जी उठता है (प्रेमामृत पान करने से जीव तत्काल मृत्यु के मुख से छुट कर अमर हो जाता है) । मानो विधाता ने उसी को अमृत से छापकर बनाया हो और फिर उसके समान दूसरी स्त्री न बना सका हो । वह एक ही पद्मिनी ऐसी है जो अमृत से भरी है (परमात्मा एक ही है और वही अमृत है) । न जाने वह किसके लिये अवतरित हुई है । हे महाराज ! उसके मुख की ज्योति का सौंदर्य देखते ही बनता है, कहते नहीं । वह आश्विन पूर्णिमा के चंद्र से भी कहीं उच्च ज्योति पुंज के समान है । निश्चय ही वह पद्मिनी आश्चर्य पूर्ण है । ऐसी अभीतक कहीं सुनने में नहीं आई । उस कमल की सुगंधि तीनों लोकों मे पहुँच गई है । सारा संसार भौंरा बनकर उस सुगंधि की आशा मे भ्रमण कर रहा है । उसकी शोभा ने सबको लुभा लिया है; न जाने वह किसके हाथ लगती है ।

संसार रत्न (अमृत रत्न) के खोज में है और वह पद्मिनी प्रेम समुद्र की मुक्ता रूपी अमृत रत्न है । न जाने कौन उसे पाकर समुद्र (संसार समुद्र) पार करता है और कौन उसी मे (संसार समुद्र मे ही) डूबा रह कर प्राण देता है ।

उपदेश

दमयंती के इस सौंदर्य वर्णन के साथ साथ प्रेम द्वारा ईश्वर प्राप्ति का उपदेश मिलता है—

'प्रेम ही से अमृत रूपी परमात्मा या आनंद दायिनी मुक्ति प्राप्त होती है । प्रेम ही अमृत है (परमात्मा का नाम अमृत भी है) परमात्मा रूपी प्रेमामृत पान करने से जीव जन्म मरण के बंधन से छूटकर अमरानंद प्राप्त करता है । प्रेम समुद्र में डुबकी लगाने से वह प्रेमामृत रूपी मुक्ति रत्न मिलता है जिससे जीव संसार समुद्र से तर जाता है—

पदुमिनि चाहि बाढ़ एक करा । कर अंगुरिंहि अमृत रस भरा ।।
जो परवार मिरतक मुख घालहि । जी उठि ठाढ़ होइ तत्कालहि ।।
जनु बिधि अमी छाप कर डारी । कै न सकै सरि दूसर नारी ।।
इक पद्मिनी औ अमृत भरी । धौं किहि जोग दई अवतरी ।।
महाराज मुख जोति निकाई । कहि न जाइ देखत बनि आई ।।
जनु असौज पून्यों ससि ऊवा । तासों ऊँच कांति कर दूवा ।।

यह अचरज कि वह पदुमिनी। महाराज अवलों नहिं सुनी ।।
पहुँचै कँवल तिहूँ पुर वासा। जग भा भौंर भवै तिहि आसा ।।
सुनि सोभा सब जगत लोभाना। धौं काके कर चढै निदाना ।।

जगत मरजिया पेम दधि, मुक्ताहल सो तीय ।
धौं को पावै लै तिरै, को बूडै दे जीय ।।७४।।

(यहाँ दमयंती की उँगलियों में अमृत का होना गुप्तार्थ में तो चमत्कार पैदा करता है; परंतु प्रकृतार्थ में, जैसा पहले लिखा जा चुका है, ठीक सामंजस्य नहीं बैठता।)

दमयंती के अन्यत्र वर्णित रूप का भी छोटा सा उद्धरण दिया जाता है जिसमें उसके रूप को देखकर सूर्य और चंद्र लज्जित होकर चिंता में पड़ जाते हैं तथा जिसका रूप संसार के रूपों को प्राप्त होता है एवं जो सब रूपों की उपमा है—

भुइँ पर चाँद उवा जनु आई। जोत अकास दीन्ह बिखराई ।।
देख जोत पून्यों ससि घटा। कत यह और चंद परगटा ।।

वहि सोच सोचत झुकत, परा स्याम उर अंग ।
अजहूँ प्रगट सो दाग हिय, जग जो कहै कलंक ।।७५।।

बीती रैन सूर परभातै। निकसा तबहिं हुता रंगरातै ।।
निरखत खिन वारी उजियारी। पीर भयो तन पारत पारी ।।

× × ×

रूप देह धर जनु औतरा। रही न अंत रूप कै करा ।।
ताकी छवि कहुँ कौन बखानै। ओहि कहँ जो दरसै सो जानै ।।

इहि सरूप धारी भई, रूप रूप तिहिं रूप ।
रूप रूप कहँ उपम वह, वा मुल रूप अनूप ।।७६।।

और भी—

मेरे जान तिहूँ पुर माहीं। ताके रूप और धनि नाहीं ।।
दुतिय नास्ति एकौ जग आनू। कहि न जाय तिहि रूप बखानू ।।

× × ×

जो पुनि कबहु अकास तें हेरे नैन फिराइ ।
सबै देव होइ किलकिला, गिरा चहै तहँ राइ ।।७९।।

कहानी के अध्यात्म पक्ष को लेकर विचार करें तो भाटिन पता बताने वाली कोई गुणीजन या गुणवती दूती अथवा सूफी मान्यता के अनुसार गुरु ठहरती है। नल ज्ञान है और दमयंती अमृत। ज्ञान के प्रतीक अग्नि और सूर्य हैं और अमृत के प्रतीक प्रेम और चंद्र। काम और पद्मिनी (कमल) भी प्रतीक के रूप में क्रमशः प्रयुक्त हुए हैं जिन्हें सौंदर्य के अर्थ में समझना चाहिए।

ज्ञान और अमृत दोनों ही ब्रह्म स्वरूप है—

ज्ञानं स्वप्रकाश चिदात्मा परं ज्योतिः

—वसिष्ठ

रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वानंदी भवति

शुद्ध सात्विक ज्ञान से अमृत अलग नहीं है। जो ज्ञान है वही अमृत है। ज्ञान के साथ साथ अमृत की सिद्धि भी स्वतः हो जाती है। जीव विना दाम्पत्य प्रेम किए भी ज्ञानामृत पान कर आत्मानंदी होता है। ऐसे ही शुद्ध सात्विक दाम्पत्य प्रेम से प्रेमानंदी होता है। इन्हीं को क्रमशः निवृत्ति मार्ग और प्रवृत्ति मार्ग कहते हैं। पहली स्थिति में विषय वासनाओं से ऊपर उठने के लिय संसार का सर्वथा त्याग करना पड़ता है और दूसरी स्थिति में समस्त चराचर सृष्टि को परमात्मामय (तुलसी के शब्दों में—'सिया राम मय') समझते हुए उसके साथ संबंध स्थापित करने की आवश्यकता रहती है। यही दूसरी स्थिति गृहस्थ धर्म का मर्म है। गृहस्थाश्रम में ही कविता कामिनी ने प्रथम प्रथम नव शृंगार रचा और उस प्रथम महाकाव्य को जन्म दिया जिससे समस्त संसार अलौकिक प्रीति रस से सिक्त हुआ। इस आश्रम का मूल मंत्र निश्छल प्रेम है। निश्छलता (शुद्ध सात्विकता) में ज्ञान है और प्रेम में अमृत। ज्ञान का प्रतीक, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, सूर्य है और अमृत का चंद्र। सूर्य की उत्पत्ति महत्पुरुष की आँख से हुई है और चंद्रमा की उत्पत्ति उसके मन से—

चंद्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्योऽजायत

इससे यह सिद्ध हुआ कि निश्छल (शुद्ध सात्त्विक) प्रेम परमात्ममय है, और वह आँख और मन से होता है। आँखों में प्रियतम को बसाना पड़ता है, और मन उसको देना पड़ता है। विरहाकुला दमयंती कहती है:—

विरह अगिन उर कीन्ह प्रकासा। आँखिन निकट कंत कर वासा॥

× × ×

वहै बधिक नल काँपा लावा। मन पंछी अचेत उरझावा॥

हौं अपने मन कौ झुरौं, जो नल लैगा उरझाइ।

राज करहु नल जो कोऊ, मन मोहिं देहु मंगाइ॥१६९॥

कविवर 'प्रसाद' भी इसी स्वर मे स्वर मिलाकर कहते हैं कि प्रेम के विरह-मिलन में सुख-दुःख आँख और मन का खेल खेलते हुए नाचेंगे—

मानव जीवन वेदी पर, परिणय है विरह मिलन का।

सुख दुख दोनों नाचेंगे, है खेल आँख औ मन का॥

अस्तु, कवि ने नल को 'ज्ञान' रूप में और दमयंती को 'अमृत' रूप में चित्रित कर स्त्री-पुरुष की समानता के सिद्धान्त की भी पुष्टि की है। यह भारतीय विचार सरणी का अनुगमन करना है। आर्य धर्मशास्त्रों के अनुसार स्त्री अर्द्धांगिनी है। स्त्री-पुरुष दोनों

ही बराबर के जीवन साथी हैं। एक ही ब्रह्म सृष्टि रचने के निमित्त स्त्री-पुरुष रूपों में विभक्त हुआ। स्त्री शक्ति रूपा है, और पुरुष शिव रूप—

सृष्ट्यर्थमात्मनो रूपं मयैव स्वेच्छया पित:।
कृतं द्विधा नगश्रेष्ठ स्त्री पुमानिति भेदत:॥१३॥
शिव: प्रधान पुरुष: शक्तिश्च परमा शिवा।
शिव शक्त्यात्मकं ब्रह्म योगिनस्तत्व दर्शिन:
वदन्ति सा महाराज तत एव परात्परम्॥१४॥

—महा भागवत, भगवती गीता, चतुर्थ अध्याय

अस्तु, सूफी प्रेम कथानक काव्यों में श्रेष्ठ काव्य, पद्मावत की शैली पर नायिका के देश की श्री संपन्नता का वर्णन भी विशेष रुचि के साथ किया गया है। वहाँ की प्रत्येक वस्तु जैसे, पेड़ पौधे, वन उपवन, ताल तलैया, फल फूल, पशु पक्षी, कुआँ, बावड़ी नगर, देश, नगर निवासी, पनिहारिन, हाट, बाजार, कृषि व्यवसाय, दुर्ग पर्वत, और हाथी घोड़े आदि का वर्णन करते हुए उनसे प्रेमपूर्वक उपदेश कराया गया है। कवि कुंडनपुर की उपमा वैकुंठ से देता है और कहता है कि वह धार्मिक देश है जहाँ प्रत्येक जाति के लोग हर के ध्यान में लीन रहते हैं। वहाँ चारों ओर लगे वृक्ष प्रेमी जनों की तरह जगत से उदासीन होकर प्रियतम के गाढ़े प्रेम में गड़े हैं; उसी के प्रेम ध्यान में एक पग से खड़े हैं। उनकी प्रेमाग्नि मानो वृक्ष को ठूंठ बना देने वाली पतझड़ है और उनकी प्रेमोन्मत्तता सरस वसंत है जो उन्हें प्रेमाग्नि से अनुरंजित नवीन कोंपलें प्रदान करता है। जैसे जैसे वे प्रेमाग्नि में जलते है वैसे वैसे उनका सारा तन श्री संपन्न हो जाता है। उनकी शाखा के अग्रभाग फूलों से सुशोभित होने लगते हैं। पक जाने पर वे गिर जाते हैं, पर उनका प्रेम छोटा नहीं पड़ता। वे सदा एक ही पानिप (प्रेमामृत रूपी परमात्मा दर्शन) के प्यासे रहते हैं, परहित के लिये सदा झुके रहते हैं।

वे (तरुवर) मानों कह रहे हों कि संसार में वे विरले ही हैं जो स्वयं शीत और धूप सहकर दूसरे को छाया प्रदान करते हैं—

जो वह नगर नियर कै आई। पुहुमि पेम मय देइ दिखाई॥
अस कुछ धरमवंत अस्थानू। सबहिं जाति उपजै हर ध्यानू॥
जहाँ जु सिस्टि दिस्टि मैं आवै। सोई जनु उपदेश बतावै॥
लागे बिरिछ नगर चहुँ पासा। जनु पेमी जन जगत उदासा॥
पिय कै पेम गढ़े होइ गाढ़े। तिन्ह ही ध्यान एक पग ठाढ़े॥
ज्यों ज्यों पेम अगिन तन जारै। कै पतझार ठूंठ कर डारै॥
त्यों त्यों होहिं पेम मदमाते। काढ़े पात अगिन रंगराते॥
जो पुनि जरै बहुरि तन भरै। डार डार फुनगा फुल परै॥
पाकै पाकि पाकि सब गिरै। तउ न पेम लहुरा सों टरै॥
सकल एक पानिप को चहै। पर काजै नित ऊने रहैं॥
ते तरुवर मनु इमि कहैं, ते विरले जग मांहि।
सीउ धूप आपुन सहैं, करैं और पर छांहि॥३६॥

पनघट का दृश्य तो बड़ा ही सरस और चमत्कार पूर्ण है। पनिहारिनों की पंक्ति मुनियों की पंक्ति की तरह है। जैसे बड़े मुनि छोटे मुनियों को उपदेश देते हैं वैसे ही पनिहारिनों का भी उपदेश चलता है। वे एक दूसरी को पैरों की ओर दृष्टि रख घट की ओर ध्यान देने का उपदेश देती हैं। बाँकी दृष्टि सीधी कर लेने, सिर में बोझ और बाट रपटीली होने की चेतावनी दी जाती है, आदि। यह सारा उपदेश ज्ञान साधना की ओर भी संकेत करता है, जैसे—मन को एकाग्र करना चाहिए। घट रूपी शरीर में ही परमात्मा रूपी आत्मा है, उसमें ध्यान लगाओ। घट रूपी शरीर दुःख रूपी बोझ है। ज्ञानमार्ग सूक्ष्म है मन के चंचल होने पर उस मार्ग से च्युत हो जाना पड़ता है। फिर तो कब नवीन शरीर मिलेगा और कब परमात्मा की कृपा होगी—

पनिहारी देखीं मृग नैनी। गज गामिनि औ कोकिल बैनी ॥
पहिरैं चीर सो भांतन भांती। राइमुनिहि की ज्यों अस पांती ॥
लेजू पात गहे वा हाथैं। नैनन्ह पानी कलसा माथैं ॥
निपट लाज सों आवहि जाहीं। पाइन दिस्टि सुरत घट माहीं ॥
जो कोई सखी नैक दृग फेरैं। सूधी दिस्टि बांक कै हेरैं ॥
मिल सब सखी ताहि समुझावहि। जनु परदेसिन पंथ बतावहि ॥
बल चेतहु घट गहं मन देहू। बांको दिस्टि सूध कर लेहू ॥
माथैं बोझ बाट रपटीली। रपट परे दुख होइ छबीली ॥
जो घट फोरि जाहि घर छूंछे। का पुनि कहैं कंत कै पूछे ॥

रपट फोरि घट खोइ जल, बिन पानी बिललाहिं।
पुनि धौं कब आवा चढ़ै, कब कुम्हार कहँ जाहिं ॥४२॥

दमयंती के प्रेम के संबंध में थोड़ा सा स्पष्टीकरण करना उचित होगा। मूल कथा में हंस नल-दमयंती के बीच प्रेम संदेसा ले जाने का काम करते हैं जिससे दोनों में गुण श्रवण द्वारा पूर्वानुराग उत्पन्न होता है। 'नल दमन' में कवि ने हंस के स्थान पर भाटिन की योजना की है। परंतु भाटिन केवल नल को ही दमयंती का पता देती है और तत्पश्चात् लुप्त हो जाती है। दमयंती को नल के विषय में पता देने वाला कोई नहीं। कवि ने यह काम 'प्रेम' से लिया है, और इस प्रकार वह प्रेम का माहात्म्य दिखाना चाहता है। उसका कहना है कि प्रेमी और प्रेमिका के बीच दूत का काम प्रेम ही करता है:—

मिला जो चाहै पीउ सों, तो पेम करो गह नेम।
प्रेमी प्रीतम मिलन कौं, बीच बसीठ सो पेम ॥१३७॥

प्रेम का आकर्षण ऐसा है कि जो जिसके रंग मे रँगता है, वह भी उसके मद में मत्त हो जाता है। जो जिसको चाहता है वह भी उसको चाहने लगता है। दोनों एक ही प्रेमाग्नि ताप से तप्त होते हैं। दोनों ओर प्रेम ही दूत संबंध बनाता हुआ दोनों को सुरति डोरी से जोड़े रखता है। सच्ची प्रीति छिपाने से नहीं छिपती। तन तो केवल देखने मात्र के लिये अलग है। वास्तव में वह एकमात्र प्रेम रूपी परमात्मा ही सब जगह व्याप्त है। जब प्रेम अचल हो जाता है तब दोनों में कोई भेद नहीं रहता। लैला ने रक्त

कढ़ाया ही था कि मजनू की आँखों से वह निकल पड़ा। इसलिये अंतर तब तक ही दिखाई देता है जब तक 'मैं' और 'तू' की कचाई बनी हुई रहती है। प्रेम में तन्मय हो जाने पर तन और प्राण एक हो जाते हैं। तन उसी अतन रूपी परमात्मा में है और वह अतन भी समस्त तन में व्याप्त है। इस प्रकार ज्ञान होने पर दोनों प्रेमी अतनमय होकर 'मैं' रूप—एकोहं द्वितीयोनास्ति' हो जाते हैं। यही प्रेमाख्यानक काव्यों का अद्वैत सिद्धांत है जो कवि का वास्तविक अभिप्राय है :—

जो कोऊ जाके रंग राते। सोऊ पुनि ताके मद माते ।।
जो जिहिं चहै चहै तिहिं सोऊ। एकहिं ताप तयें मिलि दोऊ ।।
पेम वसीठ एक दुहुं ओरा। वहै सुरत डोरी कर जोरा ।।
साँची प्रीत न रहै दुरानी। जिन जासों लाई तिन जानी ।।
तन यह दिस्टि मात्र लौं न्यारा। सो एकइ जो जाननहारा ।।
औ पुनि अचल प्रीति जब होई। तब तिनहूं महं भेद न कोई ।।
लैलै इहां जो रकत कढ़ावा। वहां मजनू के नैनहिं आवा ।।
अंतर तौलौं देइ दिखाई। जौलौं मैं तू बीच कचाई ।।
तनमै भए न अन्तर कोई। तन औ प्रान सो एकै होई ।।
तन सब ताहि अतन महं, अतन सबै तन माहं।
वही अतन तब मैं भयौ, अतन दुतिय पुनि नाहं ।।१३८।।

परंतु जिज्ञासा पूरी तरह शांत नहीं होती। परमात्मा के संबंध में भी पहले से ही सुनासुनाया या संस्कार के रूप में, कुछ न कुछ ज्ञान बना रहता है। जब तक वह ज्ञान नहीं है तब तक ज्ञान मार्ग का अनुसरण करना बेकार सा ही है। जब आधार ही नहीं तो आधेय कहाँ से होगा। इससे विदित होता है कि दमयंती को नल के रूप सौंदर्य का पता पहले से अवश्य था। पुराने जमाने में राजकुमारों और राजकुमारियों के चित्रों का विक्रियार्थ आदान प्रदान एक राज्य से दूसरे राज्य में बराबर होता था। उन चित्रों का परिचय भी दिया जाता था। इसी आधार पर यह कह सकते हैं कि दमयंती को नल के विषय में पूरी जानकारी थी। यही नहीं, उसके हृदय में नल के प्रेम की चिनगारी पड़ चुकी थी। काव्य के निम्नलिखित दो उद्धरणों में इस बात के संकेत मिलते हैं :—

प्रथम पत्र नल चित्र बनावा। सहज कुसुम ताके रंग आवा ।।
देखि सो अनल बरन उजियारा। परा हुता हियरें चिनगारा ।।
अब लगि प्रेम पवन सो जागा। सुलगा हिया जरन तन लागा ।।
[दोहा—१४०

इसमें 'पराहुता हियरें चिनगारा' बतलाता है कि दमयंती के हृदय में नल का प्रेम चिनगारी के रूप में पहले से पड़ा हुआ था।

दूसरा उद्धरण—

नल दुर्जन राजा जो कहावा। इन बारी तासों चित लावा ।।
सुनियत अनल बरन उजियारा। तिहिं कर झरप लगी उरझारा ।।

वहै दाह हियरै महं परा । सोंका चहै आग कर जरा ॥
तिहि क रूप चित्र एक चीता । वहै राम कै जानै सीता ॥
निसि दिन रहै पेम अनुरागी । ओट होइ तबही बैरागी ॥

रोवै मन देइ मित्र महं, देखि देखि यह चित्र ।
जिहि को ऐसो चित्र यह, कैसो धौं सो मित्र ॥१६५॥

इसमे 'सुनियत' शब्द से पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है कि सखियों ने नल के 'अनलवरण' होने के विषय में सुन रखा था । अतएव दमयंती के हृदय में नल के प्रति जो प्रेम उत्पन्न हुआ, वह गुण, श्रवण, चित्र और स्वप्न दर्शन से हुआ ।

कवि ने सूफियों की दो अन्य बातों की ओर भी ध्यान दिया है । उनमे से एक तो है 'मधुप्याला' और दूसरा है 'चित्र विधान ।' मधुप्याला के दो उद्धरण दिए जाते हैं ।

पहला—

औ उर भाठी मद पेम चुआऊं । नल कै कथा सु नलकै लाऊँ ॥
ऐसो पेम मयो मधु ढारौं । जासौं दिया पेम मग वारौं ॥

× × ×

पेमी पीउनहार जे, चाखत खिन छकि जाँहि ।
एक पियाला फिर पिवै, दूभर देंहि उंघाँहि ॥२६॥

दूसरा—

चित्र सुराही नैन पियाला । मद वह मींत पिवै यह वाला ॥

चित्र विधान का एक उद्धरण इस प्रकार है :—

जदपि तोर चित्र मोह पाहां । रात दिवस चितवों तिहि माहां ॥
अँखियाँ तो तासो बिरमाऊं । मन चंचल आवै न उहाऊं ॥
सो तोरे निज मूरत चाहै । आप दहै औ तन कै दाहै ॥
जिय निज तत्त रूप कर भूखा । तिहि कर चित्र दिखावत रूखा ॥
वह जानै यह चित्र न जीऊ । जिय को जीउ प्रान सो पीऊ ॥

दोहा—१५७

इसमे चित्र विधान के साथ साथ ज्ञान और प्रेम साधना का चित्र भी खींच दिया गया है ।

व्यवहार धर्म

जैसा पहले लिखा जा चुका है, कवि ज्ञान और प्रेम के साथ-साथ व्यवहार धर्म का भी प्रतिपादन करना चाहता है । इसीलिये काव्य के उत्तरार्द्ध मे (दमयंती के स्वयंवर से लेकर अंत तक) कहानी अधिकतर लौकिक रूप में चलती है जिसमे धर्म का महत्त्व दरसाया गया है । लोक व्यवहार धर्म पर आधारित होना चाहिए और धर्म सत्य पर । सत्य पूर्वक धर्मावलंबन करने से मनुष्य को कोई नहीं सता सकता । धर्म उसका सहायक होता है और जिसका धर्म सहायक है उसको इहलोक एवं परलोक का कोई भय नहीं

रहता। यों तो नल पहले से ही सत्य और धर्म पर चलता था; परन्तु प्रेमसाधना में कसकर और दमयंती जैसी स्त्री रत्न मिल जाने पर उसके बल, पौरुष, उत्साह और उत्तरदायित्व में अधिक वृद्धि हो गई। उसके अंदर जो कुछ अपरिपूर्णता थी वह सब जाती रही और वह पूर्ण मानव में परिवर्तित हो गया। दिव्यमाधुरी संपन्न त्रिलोक सुंदरी को प्राप्त कर लेने पर भी वह केवल भोगों में लिप्त नहीं हुआ। वह धर्म और राजनीति के अनुसार राजकाज करने लगा जिससे प्रजा सुखी रहने लगी और चारों ओर धर्म का बोलबाला हो गया। हरिस्मरण के बिना कोई काम नहीं होता था। वह सदा पवित्र रहता था और नित्य अतुल दान देता था:—

नित नल धरम पंथ पग धरै। राजनीति बरनी तस करै॥
परजा सुखी धरम कर राजू। हरि सुमिरन बिन और न काजू॥
सदा पवित्र रैन दिन रहै। दान प्रबाह नदी नित बहै॥
ऐसो धरमवंत जो होई। ताकौं बिघन न ब्यापै कोई॥
जहां तहां इहि धरम सहाई। जहां सत्य तहां पाप न जाई॥
धरम सहाइ कोटि दुख टारै। धरम सत्रु संताप निवारै॥

सजग धरम मग पुरुख जो, को तिहि सकै सताइ।
दुहुं लोक को भय हरै, जा कहं धरम सहाइ॥२४३॥

ऐसे कर्तव्य परायण, सत्यवादी और धर्मप्राण राजा को संसार का ऐश्वर्य स्वतः ही प्राप्त हो जाता है। इसलिये कवि ने नलदमयंती के सुखभोग का भी पूरा वर्णन किया है:—

होइ लाग पुनि सदा बधावा। बिधिना सुख संजोग बनावा॥
भोग बिलास करैं मिलि दोऊ। रातहि द्यौस न होइ बिछोऊ॥
दोऊ एक पेम मद माते। अन्तहकरन एक रंग राते॥
दो मन मिलि जो होहिं इक ठाऊं। तिहि सुख का उपमा जो बताऊं॥
औ घर राज भोग कर साजू। खांग न कौनों सबै समाजू॥
दोऊ रहं फूल से बने। फूलन कौं सुबास रंग सने॥
दिन दोइ फूल कंत औ अली। रैन होहिं मिलि एकै कली॥
मिला कवँल मधुकर कर जोरा। सेज सरोवर लेहिं हिलोरा॥
भंवर समाइ कवँल महं रहै। कवँल सो सिमिट भवँर कहँ गहै॥

दोऊ पागे पेम रस, हियै मिलाप हुलास।
रात द्यौस संगहिं रहै, षट रितु बारह मास॥२३३॥

अन्यत्र कहा जा चुका है कि ऐसे सत्यवादी और धर्मात्मा पुरुषों के ऊपर जब विपत्ति आती है तो उसका कारण प्रारब्ध समझना चाहिए। कलियुग के कोप से नलदमयंती के विपत्ति में फंसने का कारण कवि ने प्रारब्ध ही बताया है—

परालबध पै अति बरियारा। सो न टरै काहू कर टारा॥
दुख सुख होनहार जो होई। जिहि कहं जलन रहै होइ सोई॥
मिटै न परालबध कर भोगू। ज्यों होना त्यों होइ संजोगू॥

धरम पवित्र जिन झूठ न बोला । परालवध वस बन बन डोला ।।
नल सरवंस धरम मग दीन्हा । परालवध कुसती तिन कीन्हा ।।
करम अलग ग्यानी संजोगी । सोऊ परालवध कै भोगी ।।
परालवध बाँधी यह काया । आतम जीव भयो मिलि माया ।।
यह सब परालवध कर खेला । तेही कीन्ह तत्त गुन मेला ।।
परालवध मिलि भए एक ठारे । परालवध होइ है पुनि न्यारे ।।

परालवध दुख सुख वंधे, खिन आवहिं खिन जाहिं ।
हरख सोक बिसराइ मन, नित रह साईं माहिं ।।२४४।।

इसमें कवि ने आवागमन (खिन आवहिं खिन जाहिं) का कारण प्रारब्ध बताया है, जो भारतीय विचारधारा है। अस्तु, परंतु अंत में धर्म की विजय होती है। कलियुग परास्त हुआ और नल दमयंती ने विजय प्राप्त करते हुए शेष जीवन धर्मानुसार सुखपूर्वक व्यतीत किया। इस प्रकार कवि ने धर्म, प्रेम और ज्ञान का प्रतिपादन किया है। धर्म से प्रेम (भक्ति) उत्पन्न होता है और प्रेम (भक्ति) से ज्ञान। ज्ञान प्राप्त हो जाने पर मोक्ष प्राप्त हो जाता है। पार्वती हिमालय से कहती हैं—

ज्ञानात् राजायते मुक्तिर्भक्तिर्ज्ञानस्य कारणम् ।
धर्म्मात् संजायते भक्तिर्धर्म्मो यज्ञादिको मतः ।
तस्मान्मुमुक्षुर्धर्म्मार्थं ममेदं रूपमाश्रयेत् ।।६०।।

महा भागवत, भगवती गीता, प्रथम अध्याय

धर्म (यज्ञादि कर्म) और प्रेम (भक्ति) का वास्तविक क्षेत्र गृहस्थाश्रम है। ज्ञान के लिये गृहस्थाश्रम (संसार) त्याग करना पड़ता है। प्रवृति मार्गी वृद्धावस्था में इस मार्ग का अवलंबन करते हैं। कवि ने दमयंती की मृत्यु हो जाने पर नल से भी गृहस्थाश्रम छड़ाया[1]—

कह ये वचन, चल बैठि अगोसें । ग्रह तजि मीत सवांर सदोसें ।।
लोग कुटुंब रोवत सब त्यागा । छूटा मोह मीत मन लागा ।।
मन तिहिं देइ तन सुरत गवाँई । प्रान तिन्हिं में रहा समाई ।।
उपज ज्ञान अज्ञान हिराना । चल वियोग संजोग समाना ।।
सुमिरन भजन बिसर सब गयेऊ । जाको भजै सोऊ अब भयेऊ ।।
सुमिरन भजन देह मिल होई । सो तन जिय सों अछत बिछोई ।।
मंदिर ज्यों तन कहं जड़ जाना । चेतन पुरुख अलग पहिचाना ।।
जद्यपि तिहिं काया यह त्यागी । पै वह रहै अवधि लौं लागी ।।
आधि अवधि पूरन जब भई । देही बन्स बिचल तब गई ।।

जद्यपि जिउ तन कों तजत, तोऊ न तजै परीत ।
जब दरसै पिउ को दरस, तब पावै परतीत ।।७।।

पादटिप्पणी

१. देखिए 'स' प्रति के अंत में दोहा, ७ और उसकी चौपाइयाँ ।

व्यावहारिक धर्म की दृष्टि से राजा नल उदात्त नायक के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। उनमें दया, क्षमा, नम्रता गांभीर्य और दृढ़ता आदि गुण विद्यमान हैं। आत्म सम्मान उनमें भरपूर है जिससे उनकी नम्रता आदि गुणों का कोई दुरुपयोग नहीं करने पाता। यहाँ उनके दो गुण—दया और क्षमा विशेष उल्लेखनीय हैं। दया का उदाहरण दावानल में पड़े सर्प के प्रसंग में मिलता है। सर्प मनुष्यों का सहज शत्रु है। विपत्ति ग्रस्त सर्प की करुण पुकार पर राजा नल को दया उत्पन्न होती है और वे उसे आसन्न काल के मुख से बचाते हैं। आगे भले ही वह सर्प राजा नल के लिये परम उपकारी के रूप में प्रकट होता है, पर तात्कालिक स्वरूप उसका विपत्ति ग्रस्त शत्रु का ही मानना पड़ता है। ऐसे शत्रु पर दया करना उच्च संस्कार युक्त पुरुषों का कर्तव्य है। क्षमा के प्रधानतः दो प्रसंग हैं। एक कलियुग से संबंधित है और दूसरा पुष्कर से। कलियुग बाहरी शत्रु है और पुष्कर घर का होने से अधिक भय कारक। अंत में दोनों परास्त होते हैं और राजा नल दोनों को क्षमा कर अपनी उदारता का परिचय देते हैं। दोनों को क्षमा करने में भेद है। कलियुग अपराध के लिये क्षमायाचना करता है, जिसके फलस्वरूप नल उसे क्षमा करते हैं। परन्तु पुष्कर के साथ सिर की बाजी लगती है। हार जाने पर वह जीवनदान के लिये प्रार्थना नहीं करता। यदि राजा नल चाहते तो उसका प्राण ले सकते थे, कोई कहने वाला नहीं था। परन्तु वह भाई है इसलिये उनके हृदय में बंधुत्व का जो भाव उमड़ा वह महान् आदर्श को लिये हुए है। वह पुष्कर को क्षमा तो करते ही हैं साथ ही साथ उचित शिक्षा देकर उसके जीवन यापन की समुचित व्यवस्था भी बाँध देते हैं। क्षमा के ये प्रसंग अपने-अपने स्थान पर अलग-अलग स्वरूप लिये हुए हैं। दोनों ही लोकरंजनकारी हैं। राजा नल को अपने आत्मबल पर पूरा भरोसा है और साथ ही साथ वे लोक मर्य्यादा पालन की ओर भी पूरी तरह सजग हैं। वे पुष्कर से कहते हैं, "यदि मैं भी तेरे ही तरह बुराई करता हूँ तो संसार से भले और बुरे का भेद ही जाता रहेगा"—

> जो हौंहूँ अब करौं बुराई। भलै बुरै अंतर उठि जाई।।
> भलै बुरै अंतर यही, भला भलाई रीति।
> तजै न जद्यपि बुरै सों, देखै कोटि अनीति ।।२६७।।

कलियुग को क्षमा करते समय भी यही दृष्टि है—

> नल तासों तैसी पुनि करी। नैक न ता करनी मन धरी।।
> कहा कि हौं जिय बैर न धरौं। जो तैं करी सो सुरत न करौं।।
> यह परकिति मोरैं चलि आई। द्वै सवँरौं द्वै देउँ भुलाई।।
> गुन अगले का औगुन अपना। निसि दिन करौं दुहुन को जपना।।
> अपने गुन अगले कर दोखू। हिय सों करौं दोउन को मोखू।।
> दै जय बोल बचन नल तोखा। कलिजुग कियौ भेंट मन चोखा।।
>
> [दोहा ३३९]

तात्पर्य यह कि, "मैं अब तेरे प्रति अपने मन में कोई बैर नहीं रखूंगा और जो कुछ तैंने किया है उसे स्मरण भी नहीं करूँगा। मेरी यह प्रकृति है कि दो बातों का नित्य प्रति स्मरण करता हूँ और दो बातों को सदैव के लिये विस्मृत कर देता हूँ। जिनका नित्य प्रति

स्मरण करता हूँ व ह —'बड़ों के गुण और अपने अवगुण" तथा जिन दो को भूल जाता हूँ वे हैं—"बड़ों के अवगुण और अपने गुण"।

कहने का उद्देश्य यह है कि इन्हीं गुणों को पाकर लोक जीवन का विकास होता है।

दमयंती में स्वकीया नायिका के शील, सारल्य और पवित्रता आदि गुण पूर्ण विकास को पहुँचे हुए हैं। वह पतिव्रता, चरित्रवती, लज्जावती और पतिसेवा परायणा है। उसमें स्त्रियोचित आत्मगौरव पूर्ण मात्रा में है। इनके अतिरिक्त भारतीय नारियों की वह तेजस्वी प्रत्युत्पन्नमति भी उसमे विद्यमान है जो पुरुष की बुद्धि कुंठित हो जाने पर आगे मार्ग निकालती है। दमयंती तीन अवसरों पर अपने इस गुण का परिचय देती है। इनमें से दो तो स्वयंवर से संबंधित हैं जिसमें पहले अवसर पर देवताओं के दूत बनने पर दमयंती के बारबार अनुरोध करने पर भी राजा नल के लिये उसे ग्रहण करना दूत धर्म के विरुद्ध जान पड़ता है, पर दमयंती उपाय बताकर उन्हें चिंता मुक्त करती है और दूसरे अवसर पर देवताओं के छल को निरर्थक करती हुई उन्हें पहचानने में सफल होती है। तीसरा अवसर वह है जब रूप-वर्ण खोकर राजा नल एक तरह संसार से ही लुप्त हो जाते हैं; परंतु दमयंती चुपचाप बैठी न रहकर अपनी बुद्धि कौशल द्वारा उस स्थिति में भी उनका पता लगा लेती है और ऐसी बुद्धिमानी से सूत्र संचालन करती है कि नल स्वतः ही उसके पास खिंचे चले आते हैं। यह सब उसकी प्रत्युत्पन्नमति द्वारा संभव होता है। चरित्रबल भी उसमें उच्चकोटि का है। वन में राजा नल से बिछड़ जाने पर आततायियों से रक्षा करने में शील और पातिव्रत्य युक्त यही चरित्रबल उसकी सहायता करता है और उसे निर्भय बनाये रखता है। दमयंती के इस चरित्रबल को देखकर इन्द्र और राजा ऋतुपर्ण सरीखे असाधारण कोटि के पुरुष भी स्तंभित हो जाते हैं। उसका यह चरित्रबल इतना बढ़ा चढ़ा है कि देवता भी समय पड़ने पर उसके शील की रक्षा करने के लिये उपस्थित हो जाते हैं और सिंह जैसे हिंसक पशु उसके आगे शृगाल बन जाते हैं। निःसंदेह, ऐसी ही यशस्विनी नारियों का चरित्र लोक को चिरकाल तक अमल आलोक से परिपूरित रखता है।

इस प्रकार कवि ने प्रस्तुत काव्य मे सूफी विचारधारा और भारतीय विचारधारा का समन्वय किया है। यदि यह कहें कि सूफी खोल मे भारतीय आत्मा भरी है तो अनुचित नहीं होगा। यह कार्य बहुत कुछ तो जायसी ही कर चुके थे, पर सूरदास ने रही सही कमी को पूरा कर दिया। इस दृष्टि से प्रस्तुत आख्यानक काव्य विशेष अध्ययन की वस्तु है।

काव्य

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में प्रस्तुत काव्य की रचना निकृष्ट कोटि की बताई है। इसका आधार संभवतः 'स०' प्रति है जो काशी नागरी प्रचारिणी सभा में है और जिसकी लिपि अत्यंत भ्रष्ट है। भूमिका के आरंभ में हमने भी यही विचार प्रकट किए हैं कि यदि 'स०' और 'कां०' प्रतियों में से किसी एक के आधार पर संपादन होता तो वह नितांत असफल सिद्ध होता। परंतु दो प्रतियों के आधार पर जो संपादन संभव हुआ उससे यह काव्य उत्तम रचना के रूप मे सामने आता है और

आचार्य शुक्ल की उक्त धारणा के लिये स्थान नहीं रहता। क्या भाव, क्या भाषा और क्या शैली, सब दृष्टियों से यह सफल काव्य कृति है। संबंध निर्वाह और वस्तु वर्णन भी कवि कौशल के परिचायक हैं। इसकी कथावस्तु एक प्रेम कहानी है और यह शृंगार रस प्रधान काव्य है। शृंगार रस के दोनों पक्षों—संभोग शृंगार और विप्रलंभ शृंगार का इसमें वर्णन है। विप्रलंभ भी दो तरह का है एक विवाह पूर्व का और दूसरा विवाह के पश्चात् का। विवाह पूर्व का अभिलाष हेतुक वियोग शृंगार जैसा कि पहले कहा जा चुका है गुण, श्रवण और चित्र-दर्शनजन्य है। शृंगार रस के अंतर्गत नखशिख, बारह मासा और षट्ऋतु वर्णन भी आते हैं। 'नलदमन' में बारह मासा को स्थान नहीं दिया गया है। शेष दो का वर्णन है। षट्ऋतु वर्णन संभोग शृंगार के उद्दीपन के रूप में हुआ है। दोनों के एक-एक उदाहरण दिए जाते हैं—

शिखनख [नासिका वर्णन]

नासिक खीन खरग कै धारा। मन तिहि परत होइ दो फारा॥
ससि पर चंपकली जनु रासी। मलय पुहुप थोंहू का साली॥
जो पुनि पहरै फूल जराऊ। कहि न जाइ कछु तिहि कर भाऊ॥
सुअटा अधर बिंब तकि छका। ध्यान रूप रखवारी लगा॥
सुवा ठौर का बरनौं तासू। वह न बास यह पुहुप सुबासू॥
जदपि सुवा ठौर अति लोनी। तऊ कठोर न तिहि सर होनी॥
वह कोमल जनु पुहुप बनाई। पुहुपहुँ तें अति कोमलताई॥
बन बन सुवा फिरै तप साधै। मूँदि मूँदि आँखिन अलख अराधै॥
नासिक बरन ठौर मकु होई। परि जो भयो काट दुख सोई॥
बनी प्रकासक बदन पर, इमि नासिक चित चोर।
अभी स्वाद मनु ससि कुतुर, कीर निकासी ठौर॥६३॥

संभोग शृंगार

[षट् ऋतु वर्णन]

रितु बसंत फूलि है बन बेली। सुरितु चैत बैसाख नवेली॥
सब दिन सुख तैसे फुलवारी। चाँचर जुरैं होंहि धमारी॥
बाजहिं साज राग धुनि होई। इंद्र अखाड़ कहा जस सोई॥
नवल फूल फूले चहुँ ओरा। आवहि पवन सुबास हिलोरा॥
सुमन हार को दाऊ डारी। औ अभरन सब सुमन सवाँरी॥
सारे पुहुप बेलि जनु फले। इहि मनु गति मधुकर होइ भूले॥
अँग अँग भँवर पुहुप रस लेई। रदन कँवल कंजन सुख देई॥
रैन होइ मंदिर सुखवासी। सज्या बीनि कुसुम दल डासी॥
हँसि हँसि मिलहिं पुरुख अरुनारी। मगन केलि रस प्रीतम प्यारी॥
पीतम प्यारी एक संग, रितु बसंत पुनि होइ।
या सुख सम संसार महँ, दूजा और न कोइ॥२३८॥

विरह वर्णन के भी थोड़े से उदाहरण दिए जाते हैं। नल में विवाह पूर्व का विरह गुण-श्रवण जन्य और दमयंती में गुण-श्रवण और चित्र दर्शन जन्य है—

नल का विरह

[विवाह पूर्व का]

राजा प्रबल प्रेम बस भयऊ। अस्थिर मन उदास होइ गयऊ॥
राज काज दिन चित्त न लागै। निसि निद्रा बिनु परै न जागै॥
तारे गिनत छिपहिं सब तारे। छिन न छिपैं पुतरी के तारे॥
नींद लाग तिन्हक मग रोगू। छाड़ दिहेसि घर भेष वियोगू॥
जो मन राग रंग महँ लावै। तिनहू न लगै पेम भरमावै॥
कल न परै व्याकुल भै रहै। काहू सो मन मरम न कहै॥
सोचहँ सोच जरै दिन राती। जैसे दियो दिया कै बाती॥
छुध्या रही न दीसै आँसू। दिन दिन घटै लाग तन माँसू॥
भा तन पियर रात जो रहा। सूरज वदन गहन मनु गहा॥
जिन्ह घट बासा पेम को, तिन घट रकत न माँस।
अगिन तेज दोउ उफनत, चुड़ निकसे होइ आँस॥१०६॥

[विवाहोपरांत का विरह]

निस जब होइ नींद टर सोवैं। यह दुख भरा जाग निस खोवैं॥
बैरी विरह नाग होइ आवैं। विखधर जान जुद्ध कहँ धावैं॥
निबल पाइ रिपु घर घर खावैं। रुदन करैं जब कछु न बसावैं॥
स्याम घटा तन औ निसि कारी। तैसइ विरह उमगि अँधियारी॥
लसै बीज होइ हियै दमावत। निसि बीतै चख झरै लगावत॥
द्यौस कंवल ज्यौं सब निसि नैना। औ मुख कहै विरह दुख बैना॥
प्यारी तू किहिं बन बनवासी। कित डोलसि भूखी अरु प्यासी॥
ऐ जिउ प्रान कहाँ तोहि बासा। दिस्टि न परसि रहसि जिउ पासा॥
तैं उदास कैंधौं मन माहीं। का तोहि रूप सुरत मोहि नाहीं॥
कत तिहिं द्यौस निसा परै, उहि बटपारैं गाउँ।
बस कुमति उपजी हियै, करि मल मल पछिताउं॥२००॥

दमयंती का विरह

[विवाह पूर्व का]

कठिन विथा मुख जाइ न काढ़ी। ज्यों ज्यों दुरै अधिक त्यों बाढ़ी॥
रातहि सखी सोइ जब जाहीं। उठि बैठे मन दै पिउ माहीं॥
हाथ चित्र लै टकी लगावै। नैन इहाँ मन उहाँ मिलावै॥
लाइ सुरत डोरी पुनि रोवै। नैंक न नैनन नीर बिछोवै॥

ससि कहँ सदा सुरज को ध्यानूं । जाग रैन नित करै बिहानूं ।।
नींद जो गई सो फिर ना आई । आवै उझिक झाँक फिर जाई ।।

नीद निरासै आइ क, कौन ठौर ठहराइ ।
नैन जो मंदिर नींद कै, तहँ पिउ रहा समाइ ।।१४०।।

निस दिन रहै पेम अनुरागी । क्षुधा घटी तिरखा अति जागी ।।
पेम सबर (सबल) भा तन भा हीना । लागे बोझ चीर अति झीना ।।
राता कँवल पियर दिखरावा । अनु पिउ पेम गहन महँ आवा ।।

[दोहा—१४१]

× × ×

[विवाहोपरांत का]

जा कहँ प्रीत पीउ सों होई । ताहि कुटुंब सों काम न कोई ।।
रथ तें उतरि पवँरि जब आई । नल मिलाप गृह दीन दिखाई ।।
देखत खिन सो ठाँ वह नारी । उठी वियोग अगिन उर भारी ।।
तिहिं मिलि रोइ कुटुंब दुख खोवै । वह तिन्ह मिलि बिछुरै कहँ रोवै ।।
दिन मिलि मिलि सखियन सों रोई । निसि नल के दुख सों मिलि खोई ।।
ब्रह्मा कै दिन ज्यों निसि बाढ़ी । घटै न बिरह उमंग जिउ गाढ़ी ।।
भर भर अंकम देइ मरोरा । सहै न निबल गगन झकझोरा ।।
ताक भुईं पलका कै पाटी । सब निसि दुहीं ओरतें काटी ।।

[दोहा—२१३

शृंगार के अतिरिक्त करुण, अद्‌भुत और शांत रस भी ध्वनित होते हैं । इनके भी उदाहरण दिए जाते हैं—

करुण रस

इसका स्थायी भाव शोक है । यह द्रव्य नाश, बंधुनाश, प्रियवियोग और धर्म अपघात आदि से उत्पन्न होता है । प्रथम दो के उदाहरण दिए जाते हैं—

[द्रव्यनाश जन्य]

चले पुरुख नारी संग दोऊ । देखि उनहिं झुरवै सब कोऊ ।।
सब दिन धरमराज इन कीन्हा । दुख धौं कौन दोख बिधि दीन्हा ।।
कोऊ कहै बड़ी अग्यानी । आपु आपुदा आपुहिं आनी ।।

× × ×

नल कै स्रवन भनक यह परी । सुनि सुनि सीस तरहिनी करी ।।
औ सो वचन रानि पुनि सुनै । लाजन्ह गड़ी जाइ सिर धुनै ।।
इन बातन अधिको अकुलानी । चली उतायल लाज लजानी ।।
छाड़ि नगर बाहर भए दोऊ । नारी पुरुख और नहिं कोऊ ।।
फिर गति काल और रंग फेरा । नगर छाँनि बन दीन्ह बसेरा ।।

हुआ कालिह लौं राज समाजू। आज आइ प्रगटा यह साजू॥
जे पग सदा पवित्तर रहें। ते ताते भूभल महँ दहें॥
जे तन पुहुप अरें अरसावें। सो काँटों तर लोटनि खावें॥
ताती ताप लगै तन जरै। उड़ि उड़ि धूरि सीस पर पड़े॥

पग बाहन दुख को कटक, छत्र छाँह रवि धूप।
घन चादर चौडोल महँ, चला जाइ नल भूप॥२५४॥

राजभ्रष्ट राजा नल आलंबन हैं। पुष्कर का कृत्य उद्दीपन है। प्रजा और दमयंती का क्रंदन अनुभाव है। विषाद, चिंता आदि संचारी भाव हैं।

[बंधु नाश]

नल तिहि सोक सीस महँ मारा। झुका हार लाई तन छारा॥
घन घन कूक ढाह देइ रोवै। रुहिर धार नैनन न बिछोहै॥
नैनन अगिन लपट मुख काढ़े। आप जरा औरहिं उर डाहे॥
जम को बर मोकहँ जम भयेऊ। अब बर सो सराप होइ गयेऊ॥
कत बैरन्ह तिहि दिन बर दीन्हाँ। देइ सराप कस छार न कीन्हाँ॥
पर पुनि का वैरी प्रतिपाला। सो तो लहसि प्रान ज्यों बाला॥
औ सो मरे जाकर जिउ लेई। मम जिउ लै पै मरन न देई॥
मरन चहौं पै मरन न पावों। सुमिरन करों हारतौ नाओं॥
पाँच बरख अब प्रान विहूना। तन किहि लागि जिया तौं सूना॥

ये विलाप कर कर झिकै, रोवै औ बिललाय।
मुवा चहै कैसे मरै, जो जम न प्रान ले जाय॥५॥

दमयंती की मृत्यु आलंबन है। उसकी पतिभक्ति आदि गुण-स्मरण उद्दीपन है। नल का रोदन और दैव निंदा अनुभाव है। निर्वेद, मोह, स्मृति और प्रलापादि संचारी है।

अद्भुत रस

स्थायी भाव-विस्मय। आलंबन—अलौकिक और आश्चर्य जनक वस्तु और कार्य—

जो देखै तौ कइ नल ठाढ़े। नल बिन ज्यों नल ह्वै छल बाढ़े॥
औ पुनि नल ता हिय जो समाना। जो देखा सो नल कै जाना॥
दुविधै पड़ी सोच जिय करै। विधि किहि भाँति जानि पिउ परै॥
जो अब चूकूँ जनम भर रोऊँ। पावा पीउ हाथ सों खोऊं॥
एहिं सभा महं पीउ जो पावा। तो पावा पुनि हाथ न आवा॥
कौतुक दुखन सभा यह पाई। औ अब छिनक माँहि उठिजाई॥

× × ×

—दो०—२०३

जब नहिं निव्रित होइ बहु बाधा। तब तिन परभु अचिंत अराधा॥
दीन बंधु बड़ अंतरजामी। घट औघट समान बिसरामी॥

भूलें पंथ बतावन हारे। संकट परें छुड़ावन हारे ।।
तुम जानौं जिहि मद हौं माती। जाके पेम रंग उर राती ।।
कृपा करहु मोहि वहै मिलावहु। छरहिं जो छर तिन पाहिं छुड़ावहु ।।
असरन सरन सरन जब गई। तब अकास बानी तिहिं भई ।।

[दोहा—२०४

× × ×

सुन अकास बानी उर धारी। तब अच्छर छर निरखि निहारी ।।
देखै त्रिगुन अलग तिन माहीं। एक पुरुख दूजा कोउ नाहीं ।।
वहै अचल राखै थिर पाऊं। और अधर ह्वै रहै चलाऊँ ।।
एक सो पुरख निरखि पहिचाना। मिटा भरम मन निहचै आना ।।
चिन्हेसि कहसि यहै सो पीऊ। जिहिं लै थापा आपन जीऊ ।।
गह भेंटा पीतम अपनावा। लै उर जैमाला पहिरावा ।।
छरें छरें वह छरी न गई। जाकी अहै ताहि कै भई ।।

[दोहा—२०५

× × ×

औ पुनि इन्द्रादिक जे देऊ। ईहिं चरित्र थकित भए तेऊ ।।

[दोहा—२०६

वास्तविक नल का दिखाई देना और कई नलों का होना आलंबन। नल को वरण करने का एक मात्र अवसर स्वयंवर सभा ही होना उद्दीपन। प्रार्थना करना, आकाश वाणी का होना और नल को वरण करना आदि रोमांच उत्पन्न करने वाले कार्य संचारी। इंद्रादि देवताओं को विस्मय होना अद्भुत रस है।

शांतरस

स्थायी भाव - निर्वेद या शम। आलंबन—अनित्य संसार की निस्सारता का ज्ञान या परमात्मा चिंतन। यह रस दमयंती की मृत्यु के पश्चात् नल को निर्वेद होने पर व्यंजित होता है—

राज काज सों भयेउ उदासी। ग्रह तजि भया चहै बनवासी ।।
पुत्र जो इन्द्रसेन लो लावा। निज आपन तिहिं बरन सुनावा ।।
कहसि पुत्र लै आपन राजू। औ जो कछु सब राज समाजू ।।
गनकहिं बूझि सुदिन ठहरावा। पाट बैठि सिर छत्र धरावा ।।
मोहि अब राज बंदिग्रह भयेऊ। राज पाट कौ सिख उठ गयेऊ ।।
राज मंदिर अब भय अंध कूयें। सांप सूर किंदुआ कुल सौंहें ।।
दावानल होइ गइ फुलवारी। हौद पहाड़ अगिन चिनगारी ।।
नैनहिं फूल गड़े होइ काँटे। बिस्तर अंग काट ज्यों चाँटे ।।
मोहि अब भसम चहै उर छाला। पै वह नावं जपन कइ माला ।।

× × ×

पर सोई मोहि ना चहै, भसम जो तन कियो गेह।
मन माला वाला वचों, छाला खाल सों देह ।।६।।

कह ये बचन, चल बैठि अगोसे । ग्रह तजि मीत सवांर सदोसें ।।
लोग कुटुंब रोवत सब त्यागा । छूटा मोह मीत मन लागा ।।
मन तिहि देइ देइ तन सुरत गवाँई । प्रान तिन्हि में रहा समाई ।।
उपज ज्ञान अज्ञान हिराना । चल वियोग संजोग समाना ।।
[दोहा—७

× × ×

'नल दमन' में युद्ध का प्रसंग न होने के कारण वीर रस का अभाव है। परंतु बहुत से लोग 'दया वीर' और 'धर्म वीर' को भी वीर रस के अंतर्गत मानते हैं। नल में ये दोनों बातें पाई जाती हैं। इस दृष्टि से जहाँ जहाँ ऐसे प्रसंग आए हैं वहाँ वहाँ यह रस भी मानना चाहिए। भयानक रस के कई अवसर आए हैं, जैसे—दमयंती के हिंसक पशुओं से युक्त वन में पहुँचना जहाँ सिंह दहाड़ रहा है और जंगली हाथियों द्वारा सार्थवाहों के मारे जाने की घटना; का होना परंतु न जाने कवि ने क्यों इन अवसरों पर इस रस का परिपाक नहीं होने दिया। हो सकता है, प्रेम साधना मार्ग के पथिकों को भयानक का अनुभव न होने देना ही मात्र कारण हो। यही बात रौद्र और वीभत्स रसों के संबंध में भी समझना चाहिए। साधना वालों को क्रोध और घृणा से क्या नाता। रहा हास्य रस, वह वैसे ही मध्यकालीन हिंदी कवियों द्वारा उपेक्षित है, इसलिये प्रस्तुत कवि ने भी उससे विशेष संबंध नही रखा। फिर भी नल दमयंती के प्रथम मिलन अवसर पर सखियों के खेल कूद में इस रस की थोड़ी सी झलक मिलती है।

अलंकार

अलंकारों का भी बड़ा रमणीय विधान किया गया है। अनेक प्रकार के अलंकारों की योजना पाई जाती है। उत्प्रेक्षा, रूपक और अतिशयोक्ति विशेष रूप से प्रयुक्त हुए हैं। अनुप्रासों के फेर में कवि बहुत नहीं पड़ा। परंतु जहाँ कहीं आए हैं तो अत्यंत स्वाभाविक रूप में। कुछ अलंकारों के उदाहरण दिए जाते हैं:—

अधिक ताद्रूप्य रूपक

भुइँ पर चाँद उवा जनु आई । जोत अकास दीन्ह दिखराई ।।
देख जोत पून्यों ससि घटा । कत यह और चंद परगटा ।।
[दोहा—७५

दमयंती के वदन उपमेय को 'कत यह और चंद परगटा' पद द्वारा उपमानचंद्रमा से भिन्न कहा गया है तथा 'पून्यो ससिघटा' कथन द्वारा वह उपमान से बढ़कर हो जाता है। इसलिये अधिक ताद्रूप्य है।

अभेद रूपक

[सावयव एक देश विवर्ति]

निरखत नैन मेघ जुरि आए । विरह सिंधु हिय सों जल लाए ।।

वदन चंद पट घट गह लियो । तम निस ज्यों दिन हिय इमि भयो ।।
वरखै लाग झकोर झकोरी । अंचर भीज चुआ होई ओरी ।।*
(दोहा—३०८

चंदेरी में सहदेव ब्राह्मण के मिलने पर दमयंती रोने लगती है। उसकी अश्रुधारा का वर्षा से रूपक बाँधा गया है। नयन मेघ रूप होकर जुड़ आए हैं। हृदय विरह सिंधु है जहाँ से मेघ जल ले गए हैं। वदन चद्रंमा रूप है और पट घटा रूप जिसमें वदन रूपी चंद्रमा छिप गया है [दमयंती रोते समय मुख को वस्त्र से ढक लेती है इसलिये वस्त्र को घटा रूप कहा गया है] । हृदय रूपी दिन रात्रि रूपी तम में परिणत हो गया है। अश्रु रूपी वर्षा रह रह कर होने लगी है। अँचला भींग कर ओरी (छप्पर का ढलुवाँ भाग) रूप हो चूने लगा है। इसमें सब अवयवों का शब्दों द्वारा कथन किया गया है; परंतु वर्षा उपमान जिस अश्रु शब्द का आरोप है उस अश्रु का शब्द द्वारा कथन नहीं किया गया है। केवल अर्थ बल से जाना जाता है। इसलिये 'सावयव एक देश विवर्ति अभेद रूपक' है।

माला रूप भिन्न शब्द परंपरित रूपक

धन चातक कहं भा पिउ स्वाती । पिउ चकोर कहं धन ससि राती ।।
धन सो मीन पावा पिउ पानी । पिउ अलि धन अंवुज अरघानी ।।
धन कुमुदिनि प्रीतम ससि पावा । पिउ पतंग धन दीप लुभावा ।।
धन महि कौं पिउ मेह सुभागू । पिउ सारंग कहं धन इभ रागू ।।
धन सीपी पावा पिउ स्वाती । पीउ भूख भोजन धन राती ।।
[दोहा—३५९

दमयंती में चातक आदि आरोप का कारण नल में स्वाती आदि का आरोप किया जाना है। दमयंती में ससि, मीन, कमल आदि बहुत से आरोप भिन्न भिन्न शब्दों द्वारा कथन किए गए हैं। ऐसे ही नल में भी किए गए हैं। जैसे-चकोर, पानी, अलि आदि। अतएव 'माला रूप भिन्न शब्द परंपरित रूपक' है। परंपरित रूपक में एक आरोप दूसरे आरोप का कारण बनता है।

एक साँग रूपक का भी उदाहरण दिया जाता है, जो काव्य का भी उत्तम नमूना है—

पहिरे राता चीर सुहावा । तिहि प्रकार रवि दिस्टि न आवा ।।
चिहुर रैन मुख ससि होइ ऊवा । नैंन कलंक भौंह मनु जोवा ।।
कुंडल स्रवन देखि मन थाका । झमक रहे जानहुं रथ चाका ।।
वना जो सीसफूल उजियारा । छत्र झिल मिले नखत संवारा ।।
सुंदर तिलक सारथी छाजै । ताकर ओकै अलग विराजै ।।
सोहे दृगन जो अंजन लागा । मानहु लागि म्रिगन मुख वागा ।।

*तुलनीय—वरखै मघा झकोरि झकोरी । मोर दुइ नैन चुवै जस ओरी ।।
पद्मावत् ३४६ ।

माँग सो जनु गजपंथ संवारा। चंदन चित्र कचपचै तारा ।।
मुक्ता लर जो माँग बैसाई। मनु बग पाँति घटा मंडराई ।।

दिन महं रैन समाज दुति, रीझि छका सब कोइ।
बहु जन कहा कि ससि उवा, निसि भई द्यौस न होइ ।।२०१।।

चौपाइयों मे साँग रूपक है और दोहे में भ्रांतिमान् अलंकार। सांग रूपक में दमयंती को चंद्रोदय के रूप म चित्रित किया गया है। लालिमा लिये हुए वस्त्रों को पहन कर उसके सौंदर्य का जो उज्ज्वल आलोक विखरा उसके आगे सूर्य का प्रकाश भी अस्तंगत हो गया। चिहुर रूपी रैन मे मुख रूपी शशि उगा जिसमें भौंह रूपी कलंक भी थोड़ा सा विद्यमान है। कानों के दोनों कुंडल चंद्रमा के रथ के चक्र हैं और शीशफूल रथ का छत्र है जिसकी गोद म तिल रूपी सारथी अलग से विराजमान है। अंजन से अंजित दृग बाग धारण किए हुए मृग रूप हैं। सवांरी हुई माँग हस्त नक्षत्र मार्ग है और चंदन की चित्र कारी कृतिका नक्षत्र रूप है। माँग पर जो मुक्तालड़ बिठाई गई है वह संध्याकाल की रक्तालोक घटा पर मडराने वाली बग पंक्ति है [बग पंक्ति का अच्छा सादृश्य बिठाया गया है। संध्या काल मे बगले पंक्तिवद्ध होकर अपने निवास स्थान को जाते हैं]।

इस प्रकार रैन समाज दिन में ही द्युति धारण कर बैठा जिसे देख सब कोई मुग्ध हो गए। बहुतों ने तो कहा कि यह चंद्रोदय है। इसलिये रात्रि हो गई है, दिन नहीं रहा। यहाँ बहुतों को चंद्रोदय का भ्रम होने से भ्रांतिमान् अलंकार भी है।

थोड़े से और अलंकारों के उदाहरण दिए जाते हैं :—

असंबधातिशयोक्ति

प्रेम समुद्र अथाह अपारा। तहां पर को काढन हारा ।।
नदी समाइ जाइ इक ओरा। का सिख बूंद करैं तिहिं जोरा ।।

× × ×

पेम पहार अकास उचाहीं। सिख दोला ना ऊपर ताहीं ।।

फलोत्प्रेक्षा

वनी प्रकासक बदन पर, इमि नासिक चित चोर।
अमी स्वाद मनु ससि कुतुर, कीर निकासी ठौर ।।६३।।

वस्तूत्प्रेक्षा

अब बरनौं तिहि मांग निकाई। जमुना चीर गंग जनु आई ।।
[दोहा—२८

× × ×

पतरी धार कौंध जनु कौंधा। तस तिहि मांग लाग रहै चौंधा ।।

× × ×

इमि दीसै अहि के उदर, अधर दमंती नार ।
नीलांबर के ओट मनो, दीपक राखा वार ॥२७३॥

प्रत्यनीक

वसा न पूज पियर भयो गाता । लागेसि विरह कील्ह घर छाता ॥
मसरी करि अहार नित रहै । विख ह्वै वचै विरह दुख दहै ॥
सव तन रोम रोम विष वसा । तिह अनखन मानुस कहं डसा ॥
[दोहा—१०५

संदेहालंकार

धौं जिउ कहं पिउ काह करेई । आपुन लै कै कालहिं देई ॥
अवलौं मिलन आस तन माहीं । रहा हुता अव रहै कि नाहीं ॥
सो वह द्यौस आइ नियराना । धौं कैसे अव रहै निदाना ॥
खेवा गहै करै पीउ पारा । कै निरास वोरै मझधारा ॥

रूपकातिशयोक्ति

मिलि ससि रवि रोवन लगे, हियरा उमड़ा दुक्ख ।
ता दिन तपन निसर चली, या निसि जागन दुक्ख ॥१८६॥

प्रथम प्रतीप

वना लंक तस जाइ न कहा । केहर देखि वैठ वन रहा ॥

यमक

देख रुदन संग हुती जो धाई । सोउ रुदन रूप होइ आई ॥
धाई जहं मंदिर पटरानी । तासों धाइ सो कथा वखानी ॥
× × ×
प्रीतम मैं तोसों नहिं तोरी । सव सों तोर मोर भइ तोरी ॥
× × ×
अनल वरन नल वरन लग, वरन लगे होइ आग ॥२९॥
× × ×
धाइ सो धाइ माइ पहं रोई ।

वृत्यनुप्रास

घन गरजन सुनि कै लखी, पति रथ की धमकार ।
चौंक चमक चपला भई, चढ़ि चमकी चौवार ॥३३९॥
× × ×

हौं भै भवंर रवीं बैरागी । तू सरोज सह सुर अनुरागी ॥
× × ×
कोऊ कहै बड़ो अग्यानी । आपु आपदा आपुहि आनी ॥
× × ×

भाषा

कवि ने न तो जायसी की ठेठ ग्रामीण अवधी का ही प्रयोग किया है और न रामचरितमानस की संस्कृत गर्भित का ही । उसने दोनों के बीच का रास्ता पकड़ा है । उसने महाभारत और पुराण साहित्य का भी पारायण किया था—

भारथ मै जो कथा बखानी । आदि अंत बानी महं आनी ॥
बात बात मै जुगति बनाई । कथा पुरान मय कै दिखराई ॥

तात्पर्य यह कि महाभारत पढ़ने के पश्चात् उसने प्रस्तुत ग्रंथ की रचना की । दूसरी बात यह है कि उसने जिस ज्ञान का प्रतिपादन किया है वह सूफी न होकर भारतीय है जो उसने भारतीय ग्रंथों (दर्शनादि) से प्राप्त किया । इस दृष्टि से वह संस्कृत का विद्वान सिद्ध होता है । इसलिये 'नल दमन' में उपर्युक्त ग्रंथों की भाषा का संतुलित रूप दृष्टिगोचर होता है । परंतु कवि ने ऐसी भाषा जानबूझकर प्रयुक्त नहीं की वरन इसका निर्माण उसकी योग्यता के अनुसार स्वतः ही हो गया । वह प्रतिभाशाली कवि है, इसलिये उसकी भाषा का माधुर्य गुण संपन्न, भाव पूर्ण, मुहावरेदार, एक रस और प्रवाह-पूर्ण होना स्वाभाविक है । कहीं कहीं जो अंतर दिखाई देता है वह उसके ज्ञान प्रदर्शन की [जिसे वह 'गुप्तार्थ' कहता है,] विशेष अभिलाषा के कारण है । वहां भाषा काव्य विहीन होकर दर्शन शास्त्र की भाषा मात्र होकर रह जाती है । इसके कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

पिउ बोला प्यारी सुन मोसों । निज मन मरम कहौं हौं तोसौं ॥
मै जबसों तो महँ जिउ डारा । तबसों आध घरी न बिसारा ॥
छिन छिन सुरत लैन लग तोरी । मन तू ही मै राखों गोरी ॥
जैसै मिरग नाद मन लावै । औ अलि कवँल बास ज्यों पावै ॥
चातक स्वाति बूंद कै आसा । निस दिन चित दै रहै अकासा ॥
त्यों तोसों मै लगन लगाई । गुडी डोर ज्यों सुरत मिलाई ॥
निस दिन सोच रहा मोहि तोरा । सुरत सूत छिन जोर न तोरा ॥
रहसि अखंड लगी मन मोरै । औ जिउ मोर रहै तनु तोरै ॥

हौं अपनौं सत भाव कहि, अब बूझत हौं तोहि ।
तैं धौं पेम बैस सुखी, किमि दीन्यौ मन मोहि ॥२१८॥

जो तुम पुनि पूछौ मो पाहाँ । बिनौ सुनौ सरवन दै नाँहाँ ॥
मै जब सों पिउ सों जिउ लावा । तब ही सों आपा बिसरावा ॥
तन आपन सो निरापन कीन्हाँ । जिउ लै काढ़ि पीउ सहँ दीन्हाँ ॥
जिउ पुनि जब पिउ सों मिलि गयऊ । जिय कै ठौर जीउ पिउ भयऊ ॥
जिउ पिउ अन्तर भेद भुलाना । मन निज जीउ पीउ कर जाना ॥

रोमहिं रोम रहा रम पीऊ । जीउ पीउ भा हौं निरजीऊ ।।
हुता जो मन में मैं अभिमाना । सो चलि प्रीतम माँहि समाना ।।
मन पुनि पीउ मिला ज्यौं जीऊ । सो अब कहन लागि हौं पीऊ ।।
मन जिउ मेटि पीउ भा सही । हौं हौं कहै ओ माँत्र न रही ।।

जैसैं दिनकर किरन मिलि, तम असत होइ जाइ ।
तैसैं प्रेम प्रकास महँ, हौं हौं गई हिराइ ।।२२९।।

ये प्रकरण स्वयंवर हो जाने पर नल दमयंती के मिलन अवसर के हैं; वे एक दूसरे से अपने-अपने प्रेम का वर्णन करते हैं । नल के प्रेम वर्णन में तो कवित्व है; परंतु दमयंती अपने प्रेम का जिस प्रकार वर्णन करती है उसमें काव्य न होकर वेदान्त बोल रहा है । उसमें कवि का गुप्तार्थ गुप्तार्थ न रहकर प्रकृतार्थ हो गया है । उसमें जीउ (जीव) और पीउ (सीव, परमात्मा) का ही विषय प्रधान होकर चल पड़ा है । जीउ (जीव) पीउ (सीव) में मिलकर एक हो गया है और 'हौं' जो अभिमान है वह नष्ट हो गया है । इस प्रकार जीउ (जीव) और पीउ (परमात्मा) की अद्वैतता सिद्ध की गई है । ध्यान देने की बात है कि नल के वर्णन में 'हौं', 'तू' और 'तैं'—उत्तम और मध्यम पुरुष दोनों हैं । परंतु दमयंती के प्रेम वर्णन में प्रथम अर्धाली के 'तुम' को छोड़कर, जिसका वास्तविक वर्णन से कोई संबंध नहीं, उत्तम पुरुष के 'हौं' के अतिरिक्त मध्यम पुरुषवाचक शब्दों का अभाव है । आगे चलकर यह 'हौं' भी 'प्रेम प्रकास' में विलीन हो जाता है । वास्तविक बात यह है कि ज्ञान अनेकता को मिटा कर एक (परमात्मा) को सिद्ध करता है और काव्य एक की अनेक व्यंजना करता है । जहाँ तक अनेकता में एक को देखने (एक की व्यंजना करने) का प्रश्न है वहाँ तक तो काव्य ज्ञान का साथ देता है और जहाँ ज्ञान ने अनेकता को मिटाना ही आरंभ किया तो वहाँ काव्य ज्ञान का साथ छोड़ देता है । यहाँ यही बात है । दमयंती सर्वत्र ऐसी ही कहती हो, यह बात नहीं है । उक्त उद्धरण तो विरल है । वह 'हौं', 'तैं', 'तू' का प्रयोग बराबर करती है और वहाँ भाषा सरस काव्य की भाषा है, जैसे—

कहसि कंत यों करै न कोई । ज्यौं तैं ही बन माँहि बिछोई ।।
संग मिलै अंतर कै डारा । मिलै माँझ होइ गयसि निरारा ।।
होतसि दूर न होत परेखा । गरैं मिलै बिछुरत का लेखा ।।
इहै मिलन लै सत हौं मारी । जुरी मिली तैं कीन्ह नियारी ।।
कपटी सुना मिलै महं न्यारा । सो प्रीतम तू नैन निहारा ।।
किंहि हित सों भुइं सैन बनाई । गरैं लाइ सुख नींद सुवाई ।।
सुख सुवाइ पुनि कीन्ह बिछोऊ । ऐसी करै मिलै महं कोऊ ।।
जो जानौं तू कपट सोवावसि । मोहि सुवाइ आपा बिछुरावसि ।।
तौ हौं किंहि कारन तब सोऊं । तो सो रतन सोइ नहिं खोऊं ।।

कंठ लगाइ सुवाइ संग, गांठ धरी मन माँहि ।
सो बीती अजहूं मिलौ, गांठ छोरि हौं नाँहि ।।३५४।।

यहाँ ज्ञान की कोई ताक-झाँक नहीं है। परंतु जहाँ ज्ञान अनेक में एक ही परमात्मा का दर्शन कराता है, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, वहाँ भी भाषा कवित्व को लिये हुए है, यथा—

हौं भै भवंर भवौं वैरागी। तू सरोज सुख सर अनुरागी ॥
हौं चातक पिउ पिउ रट मोरे। तूं स्वांती भायै नहि तोरे ॥
मो मन चित चकोर बिन देखै। तू सो चंद तोरै नहि लेखै ॥
मो गति ज्यों मछरी बिन पानी। तू अपने पानी अभिमानी ॥

यहाँ व्यंग्यार्थ के अनुसार 'हौं' जीव 'तू' परमात्मा को सरोज, स्वाती, चंद्र और पानी आदि अनेक वस्तुओं में देख रहा है। इसलिये भाषा भावमय हो गई है। यहाँ एक बात विशेष रूप से दृष्टि गोचर होती है। वह यह कि यहाँ मन के साथ चित्त भी आया है। भारतीय अद्वैती मन और चित्त को अलग-अलग मानते हैं इसलिये कवि पर भारतीय अद्वैत ज्ञान का पूर्ण प्रभाव होने का यह भी एक प्रमाण है। अस्तु, भाषा के संबंध में एक बात यह है कि वह अवधी का समसामयिक रूप है। अपभ्रंश शब्दों से वह मुक्त है। परंतु साहित्यिक रूढ़ि का नितांत त्याग नहीं किया है। ऐसे शब्द भी उसमें प्रयुक्त हुए हैं जिनका प्रयोग साहित्य में बहुत पुराने समय से होता आ रहा है, जैसे—चाहि (अपेक्षाकृत) और बाज (छोड़ कर या बिना) शब्द। परंतु ये शब्द अधिक बार प्रयुक्त नहीं हुए हैं। एक दो स्थल ऐसे भी हैं जहाँ कवि विदेशीयता लाया है, जैसे—

लैलै इहां जो रकत कढ़ावा। वहां मजनू के नैनहि आवा ॥

और—

मौलाना मिलान जिन्ह तानै। परै खिलावहि पढ़हि दुवाएं ॥

इससे वहाँ भाषा में अस्वाभाविकता आ गई है।

छंद विधान

सूरदास का छंद विधान सीधा साधा है। अन्य सूफियों की तरह उन्होंने भी दोहे चौपाई छंदों में रचना की है। चौपाइयों के दो भेद किए है। एक में सोलह मात्राएँ और दूसरे में पंद्रह मात्राएँ रखी है। दोहे मे विशेष परिवर्तन नहीं पाया जाता, पर कहीं-कहीं मात्राएँ घट बढ़ अवश्य हो गई है।

सूक्तियाँ

सूरदास को सूक्तियों से भी बड़ा प्रेम है। ऐसे बहुत कम दोहे हैं जिनमें कोई उक्ति या तो सूक्ति के रूप में अथवा भाव व्यंजना के रूप मे न आई हो। कुछ उदाहरण दिए जाते हैं। मेल विषय की सूक्ति देखिए :—

ग्वाल हुता जो चल बसा, कौन समेटे गाइ।
फैल फूट सब जाहिंगे, तहां मेल ढर जाइ ॥२७५॥

कुछ अन्य तथ्य विषयक सूक्तियां भी दी जाती हैं—

अस्तुति निंदा पत अपत, सवै काल पर होइ ।
उवत सूर प्रथमी नवै, अथवत नवै न कोइ ॥२५५॥

× × ×

तैसी चाल चलै वने, जैस काल कर चाल ।
काल व्याल न कटाइयै, आप काटियै काल ॥२६०॥

× × ×

हौं मंजीठ कै रंग ज्यों, औंटि मिली तोहि संग ।
तू ततकाल उघड़ चला, जैसे रंग पतंग ॥२६१॥

× × ×

मीत विछुर जो जीजिये, का जीयें तेहि दाव ।
सजन विछोह न कीजिये, जीव जाव तो जाव ॥२६३॥

× × ×

जैसे सुख मे नेकु दुख, वहौ वहुत दुख देइ ।
तैसै दुख मे नेक सुख, वहुत मान मन लेइ ॥२६४॥

एक उदाहरण भाव व्यंजना का भी दिया जाता है—

पग वाहन दुख को कटक, छत्र छांह रवि धूप ।
धन चादर चौडोल महं, चला जाइ नल भूप ॥२५४॥

मुहावरेदार भाषा लिखने में तो कवि वेजोड़ है। यहाँ केवल एक उदाहरण दिया जाता है जिसमें 'चला सो चला' मुहावरा प्रयुक्त हुआ है—

कलिजुग कियो कठोर मन, तोर मोह को जोर ।
चला सो चला उदास ह्वै, मुख न कियो तिहि ओर ॥२६६॥

वैसे सारे दोहे की ही भाषा मुहावरेदार है ।

दोष

'नल दमन' में दो त्रुटियाँ विशेष रूप से सामने आती हैं। एक तो अध्यात्म पक्ष का आवश्यकता से अधिक प्रतिपादन करना है जिससे वह कहीं-कहीं कोरा दर्शनशास्त्र का रूप धारण कर लेता है । दूसरा पदमावत का अनुकरण है जिसके अनुसार कामशास्त्र में उल्लिखित पद्मिनी, चित्रनी शंखिनी और हस्तिनी नामक चार प्रकार की स्त्रियों का तथा सोलह श्रृंगार और वारह आभरणों के नामों का वर्णन करना है जो काव्य की दृष्टि से कोई महत्व नहीं रखते । राम रावण जैसे शब्दों के प्रयोग भी जायसी के अनुकरण पर हुए हैं । एक स्थान पर तो इनके प्रयोग वहुत सुंदर वन पड़े हैं, जैसे—

धन सीता पिउ राम मनु, विछुर भयौ संजोग ।
दोऊ आनंदित मगन, रावन हना वियोग ॥३५६॥

परंतु एक स्थल ऐसा भी है जहाँ राम का प्रयोग ठीक से नहीं हुआ। वहाँ 'विरुद्ध मति कृत' दोष आ गया है—

कीन्ह पयान विवान उठावा। बोल कहारन राम चलावा ॥

यहाँ 'राम' से अभिप्राय 'आराम' से है। परंतु यही राम मृत्यु अवसर पर कहे जाने वाले 'राम राम सत्य' का स्मरण कराता है। इसलिये अभीष्ट अर्थ के प्रतिकूल अर्थ की प्रतीति होती है।

फुटकल प्रसंग

काव्य में वहुत से फुटकल प्रसंग आए हैं। यहाँ केवल एक उदाहरण 'कुम्हार किसान के रहस (रहिस)' का दिया जाता है—

रहिस कुम्हार किसान कँ, का भय लीन्ह जो बूट ।
ओर पहूंचै जानियै, किंहि कर वैठे ऊँट ॥१४६॥

× × ×

प्रस्तुत कृति उत्तम प्रबंध काव्य के रूप में सामने आ रही है। यह आज तक दुर्लभ कैसे वनी रही, यह आश्चर्यजनक है। फिर भी यह मिल गई है, यही वड़ी वात है। आशा है, यह अपने अनुरूप स्थान ग्रहण करेगी।

अंत में यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि भूमिका के रूप में यहाँ जो कुछ लिखा गया है, वह ग्रंथ की समालोचना न होकर उसका परिचय भर है। अभी ग्रंथ और अध्ययन की अपेक्षा रखता है इसलिये समालोचना उक्त अध्ययन के पश्चात् ही संभव है। ग्रंथ का संपादन जैसा कुछ वन पड़ा है हिंदी विद्वत् समाज के समक्ष प्रस्तुत है। आशा है, समादृत होगा।

काशी,
ज्येष्ठ शुक्ल ५, संवत् २०१७

वासुदेवशरण अग्रवाल
दौलतराम जुयाल

पुनश्च

इस संस्करण की तैयारी का निमित्त श्री मुनिकान्ति सागर जी को मिली हुई नलदमन की देवनागरी प्रति वनी। जव मैंने पहली वार जयपुर में वह प्रति उनके पास देखी और उनसे उसके संपादन के विषय में अपनी इच्छा प्रकट की तो उन्होंने सहर्ष तत्काल वह प्रति मुझे दे दी और पीछे चलकर उसे हिन्दी विद्यापीठ आगरा के पुस्तकालय के लिये दान भी कर दिया। मुनि जी की इस उदारता के लिये मैं अतिशय अनुगृहीत हूँ। उन्होंने भरतपुर, अलवर, जयपुर अर्थात् प्राचीन मत्स्य जनपद को छान कर हिन्दी के अनेक हस्तलिखित ग्रन्थों का उद्धार किया है। नलदमन की दूसरी प्रति उर्दू लिपि में लिखी हुई वम्बई संग्रहालय में है। वह मूल प्रति हमें प्राप्त न हो सकी। किन्तु उसकी एक देवनागरी प्रति लिपि मोतीचन्द्रजी ने कराई थी और उसी के आधार पर नागरी प्रचारिणी सभा ने भी एक टंकित प्रति अपने लिये तैयार कराई थी जो हमें प्राप्त हुई। इसके लिये हम अपने मित्र श्री मोतीचन्द्रजी और नागरी प्रचारिणी सभा के मंत्री श्री डा० राजवली पाण्डेय के आभारी हैं। ग्रन्थ की मूल प्रतियों से पहली मुद्रण प्रति तैयार करने

का श्रेय श्री दौलतराम जुयाल, अन्वेषक, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी को है। मैंने उस पाठ को देखकर यथामति संशोधन किया, पर मेरी बराबर यह इच्छा बनी रही कि उर्दू की बम्बई वाली प्रति यदि उपलब्ध हो सकती तो यह पाठ और भी सुधारा जा सकता था। इस संस्करण की भूमिका के लिये भी मैं श्री जुयाल का अनुगृहीत हूँ। इसे उन्होंने मेरे निर्देशन में तैयार करके मुझे दिखा लिया है। मेरी इच्छा थी कि यह उन्हीं के नाम से प्रकाशित हो, पर सहयुक्त नामों के बिना इसके मुद्रण के लिये वे तैयार न हुए। श्रीजुयाल ने इस ग्रन्थ के सम्बन्ध मे जो परिश्रम किया है उसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं।

वासुदेवशरण अग्रवाल

स्वस्ति श्रीसर्वज्ञाय नमः ॥

अथ नलदमन सूरदासकृतमारभ्यते

ईश वंदना

सुमिरौं[1] आदि अनादि जो कोई । आदि अंत[2] पुनि एकै सोई ॥
जाहि न वरन न रूप न रेखा । अविगत गति अभेख वहु[3] भेखा ॥
सिथिल न चंचल[4] वड़ा न छोटा । तरुन न बूढ़ा लटा[5] न मोटा ॥
वहुत न थोरा सजा[6] न फूटा । मिला न विछुरा जुरा न टूटा ॥
ज्यों कुछ त्यों का गाँऊं[7] नाऊं[8] । नाउं जो[9] धरै वरै तिहि[10] नाऊं ॥
नाउं इहै[11] जो कहै[12] सो नाऊँ । इहीं कहव[13] वरु[14] रापत[15] नाऊँ ॥
नाउं धरत खिन सरगुन होई । जो निरगुन तिहि[16] नाउ न कोई ॥
वह जो रूप वा कोउन[17] कहा । वचन न चलै तहाँ थकि रहा[18] ॥
जहाँ वचन कर गवन न होई । तहाँ कौन विधि वरनै कोई ॥

दोहा—आपुन वना न[19] वनै विना आपुन वना[20] वनाव ।
ज्यों सो[21] वना त्यों नहिं[22] वना कहत[23] न वनै वनाव ॥१॥

दोहा०—१—१—सुमरूं (कां०) । २—अनंत (म०) । ३—तिन्ह (स) । ४—चपल (कां०) । ५—लवा (कां०) । ६—सचा (का०) । ७—नांव (कां०) ८—वताऊँ (कां०) । ९—जु (कां०) । १०—तिन्ह (म०) । ११—एही (कां०) । १२—कहै (स०) । १३—कहिन (कां०) । १४—पर (कां०) । १५—राखव (म०) । १६—तिन्ह (स०) । १७—को अन कह्या (कां०) । १८—रह्या (कां०) । १९—वनान न वनै वना (स०) । २०—वनां (कां०) । २१—सू (कां०) । २२—त्योंही वना (कां०) । २३—कहित (कां०) ।

जद्यपि ज्यों ज्यों कहा[1] न जाई । पै घट औघट रहा[2] समाई ॥
जहाँ न वह[3] सो ठौर न कोई । सकल[4] ठौर महँ एको[5] सोई ॥
औ[6] पुनि छेद[7] भेद[8] कछु[9] नाहीं । सिमिटि[10] समाय रहा[11] सब माँहीं ॥
ओहि जो ठाठ वा कोउ न ठठा । सदा एक रस बढ़ा न घटा ॥
ज्यों आकास समान रमाना । वही जान एही[12] उनमाना[13] ॥
पै वह चेतन यह जड़ सूना[14] । वह सजोति यह जोति विहूना ॥
जो कुछ दिस्टि परै सो नाही । पै इहि[15] वा महँ वो[16] इहि[17] मांही ॥
चर्म[18] दिस्टि सों जाइ न देखा । तौ[19] दीखै जो होई कुछ रेखा ॥
वातहि बात जाइ वह जाना । दिस्टि न आवै प्रगट[20] हेराना ॥

दोहा—देख देखत देखि जब, दिस्ट कहै[21] कछु नाहि ।
दिस्टि अगोचर अलख वह, ता नाही[22] के माँहि ॥२॥

सब मैं औ[1] सबही सों न्यारा । सब कुछ करै अकरता प्यारा ॥
तिह[2] चेतन[3] बिन कछू न होई । पै करतूत न लागै कोई ॥
मंदिर माँहँ दिया ज्यों बारा । त्यों घट घट तासों उजियारा ॥
घट महं[5] करन[6] सकत[7] सब तासों । पै वह अलग दिया ज्यों वासों[8] ॥
जैसे कंवल सुरज मिलि[9] खिलै । पै याको गुन ताह न मिलै ॥
कंवल खिलै कछु सुरज न खिला । औ ताकै सुख मिलै न मिला ॥
त्यों चेतन जड़ माह समाना । अनमिल जाइ मिला सा जाना ॥
ज्यों पानी[10] पूरै घट माही । दिस्टि परै ससि कै[11] परिछाहीं ॥
जल गुन जान[12] परै जब[13] हलई । चंद सो अलग न हलइ न चलई ॥

दोहा—कही[14] न जाहि वनाय कछु ता साहब के रंग ।
रंग[15] अंग सब ता मिल बनै, आपु[16] न रंग[17] न अंग[18] ॥३॥

दोहा—२-१—कह्यौ (कां०) । २—रह्या (कां०) । ३—वोहि (कां०) । ४—ठौर ठौर मैं (कां०) । ५—एकै (कां०) । ६—ऊ (स०) । ७—बिन (स०) । ८—छंद (स०) । ९—हद (स०) । १०—समत (स०) । ११—रह्या (कां०) । १२—तिन्हही (स०) । १३—अनमाना (स०) । १४—सोना (स०) । १३—वह (स०) । १७—या (स०) । १८—चरम (स०) । १९—तो (स०) । २०—प्रघट (स०) । २१—कही (स०) । २२—मांही (कां०) ।

दोहा—३-१—औ (स०) । २—तिन्ह (स०) । ३—चिन्तै (स०) । ४—कुछौ (स०) । ५—मै (कां०) । ६—कर्ण (कां०) । ७—शक्ति (कां०) । ८—वासौं (कां०) । ९—मिल (स०) । १०—पाणी (कां०) । ११—की (का०) । १२—जानि । १३—जनु । १४—कहे (कां०) । १५—रङ्ग रङ्ग रङ्ग ताहि मिल (कां०) । १६—आप (कां) । १७—निरङ्ग (कां०) । १८—नरङ्ग ।

जद्यपि[1] आप अलिप्त अकरता । पै करता भरता औ हरता ॥
सरजनहार जगत कर सोई । अलख निरंजन और न कोई ॥
जो देखौ सब वहै बनावा । न कुछ मांहि कुछ कै दिखरावा ॥
कीन्हेसि प्रथम जोत परकासू । कीन्हेसि पानी पवन[2] अकासू ॥
अगिन पौन[3] जल रज इमि साजै[4] । जिन्ह[5] सौं ए कौतुक उपराजै[6] ॥
कीन्हेसि धरती सुरग पतारा । मेरु समुन्द सूर[7] ससि तारा ॥
दिन अरु[8] रैन धूप अरु छाहां । मेघ वर्ण[9] पानी[10] जिहि[11] मांहां ॥
देव मनुज दईत[12] औ प्रेता[13] । पसु पंछी जल थल जीव[14] केता ॥
तरुवर मूल[15] बेल अरु[16] बूटी । अगिन[17] सिरजना[18] गिनत[19] न टूटी ॥

दोहा—जे देखा ए खेत[20] जग, अनबन[21] बरन[22] अपार ।
छिनक एक[23] मंह सब किए[24], करत न लागी[25] बार ॥४॥

जहं[1] लग जीव जंतु उपराजा[2] । भूख[3] सबहिं कर साथहिं साजा ॥१॥
आपु सबन[4] सुधि कै पहुँचावै । कीट पतंगन बिसर न पावै ॥२॥
हस्ति[5] आदि दै चांटा ताई । छिन न बिसारत ऐसउ सांई ॥३॥
अस अटूट कीन्हेसि भंडारा । घटै न अघट अपूर अपारा ॥४॥
जो जिहि[6] जोग देइ[7] तिहि[8] सांई । ताकर दीन लेइ[9] सब कोई ॥५॥
जो कोउ गरब करै मन मांही । हम[10] उपराज[11] दरब तब खाहीं ॥६॥
गरब[12] मांझ का दरब कमावा[13] । तहां कौन उद्यम करि[14] खावा ॥७॥
पसु पंछी जो बसैं बन मांहा[15] । केतक अरथ दरब तिन्ह पाहां[16] ॥८॥
वहै एक जग कै सुधि लेवा । अलख अपार निरंजन देवा ॥९॥

दोहा—करन हरन पोपन[17] भरन, जग कर्ता[18] के हाथ ।
पल[19] छिन कै[20] सुधि लेइ[21] लगि रहै सबन के साथ ॥५॥

दोहा—४-१—जदप (स०) । २—प्रान (स०) । ३—खेह सब रचि (कां०) । ४—साजो (कां०) । ५—तिहि (कां०) । ६—उपराजों (कां०) । ७—सुर (स०) । ८—औ (कां०) । ९—प्रान (स०) । १०—पाइ (स०) । ११—जिन्ह (स०) । १२—दैत्य (कां०) । १३—परेता (स०) । १४—ज्यों (स०) । १५—मूर (स०) । १६—औ (कां०) । १७—अगिन (कां०) । १८—सिरजटा (कां०) । १९—करत (कां०) । २०—लखे (कां०) । २१—आनों (स०) । २२—वर्ण (कां०) । २३—मैं (कां०) । २४—कहे (स०) । २५—लाई (स०) ।

दोहा—५-१—जिन्हि सो (कां०) । २—अपराजा (स०) । ३—भेख (स०) । ४—कहे ४—सबहि । ५—हस्त (स०) । ६—जिन्ह (स०) । ७—दिये (स०) । ८—तिन्हि (स०) । ९—लिए (स०) । १०—हमही (कां०) । ११—उपाय (उपराज को काट कर उपाय बनाया गया है । उपाना = उत्पन्न करना भी अवधी की धातु है) (जेहि सृष्टि उपाई, रामचरित्रमानस) । (कां०) । १२—गर्भ (कां०) । १३—गमावा (स०) । १४—कर (स०) । १५—माहीं (कां०) । १६—पाहीं (कां०) । १७—पूपन (स०) । १८—जग को ताके (स०) । १९—छिन (कां०) । २०—की (कां०) । २१—लेन (कां०) ।

करता कीन्ह चहै सो करै । भरे ढार[1] छूछ लै[2] भरै ।।
परबत तिन ज्यों तोरि उड़ावै । तिनकहिं[3] परवत कर[4] दिखरावै ।।
सागर सोपि[5] उछारै छारा । सूखे मंह जल भरै अपारा ।।
कंचन मंदिर बसत उजारै[6] । औ[7] उजार मै कंचन ढारै[8] ।।
राता विरिछ करै विनु पाता । डुंड[9] निपात[10] करै तिन्ह[11] राता ।।
पंडित गुनी निरगुन[12] कै डारै । मूरख पंडित करि[13] वैठारै ।।
छत्रपती सों भीख मंगावै । लै भिखमंगा राज वैठावै ।।
इंद्रहिं चांटा करि[14] अवतारै । चांटहि[15] इंद्रासन बैसारै[16] ।।
वेद[17] मतो फिर फिर अवतारै[18] । अधम अधरम[19] करत उधारै ।।

दोहा—अंबरत[21] बिख मूरै[22] करै, औ विरव अंब्रत[23] मूर ।
सदा हजूरी दूर करि, दूरै करै हजूर ।।६।।

ऐसो बल ऐसी प्रभुताई । छमा[1] बूझ कछु बरनि न जाई ।।
जौने अंग भजै जो वाको[2] । तेही अंग मिलै वह ताकों ।।
जो ताकौं साहब कै[3] मानै । ताहि वही सेवक कै[4] जानै ।।
जो कोउ[5] कहै कि सखा हमारा । ताहि सखा होइ मिलै पियारा* ।।
जो कोउ[6] ताकै[7] जात कहावै । जात[8] मान तिन्ह[9] पांत[10] मिलावै[11] ।।
जो कोउ[12] कहै अंस हौ ताको । एक रूप मेरो अरु वाको ।।
तिहिं[13] अपनो[14] अंसै[15] कै जानी[16] । निरमल अमल आप सो मानी[17] ।।
जो कोउ[18] ढीठ अहै हौ सोई । मो अरु वामै भेद न कोई ।।
वा पर रीझि बहुत सुख मानै[20] । अंतर मेटि आप सो सानै[21] ।।

दोहा—ऐसो साहब और नहि, इतनी प्रभुता जाहि ।
सेवक जा सरवर[22] करै, करै आप सरि ताहि ।।७।।

दोहा—६-१—ढारै (स०)। २—ते (स०)। ३—कहुं (स०) । ४—करि (कां०)। ५—सूक (स०)। ६—उजारी (कां०) । ७—औ (कां०)। ८—धारै (स०)। ९—टुंड (कां०)। १० नपात (स०)। ११—वहु (कां०)। १२—निगण (कां०)। १३—कै (स०)। १४—कै (स०) । १५—चांटा (कां०) । १६—वैठारी (कां०)। १७—बेदमतै (कां०)। १८—अवतारी (कां०)। १९—अधर्म (कां०) । २०—प्रवधारी (कां०) । २१—अंमृत (कां०) । २२—मूरि (स०) । २३—अंमृत (कां०) । २५—दूरी (कां०)।

दोहा—७-१—छिमा (कां०) । २—तिन्हही (स०) । ३—करि (कां०)। ४—करि (कां०)। ५—कोई (कां०) । ६—कोई (का०) । ७—ताकी (कां०)। ८—जाति (कां०)। ९—तिह (कां०)। १०—पांति (कां०)। ११—लगावै (कां०)। १२—कोई (कां०)। १३—तिन्ह (स०)। १४—वोहु (कां०)। १५—अंसु (कां०)। १६—जानही (कां०)। १७—मानहि (का०) । १८—कोई (कां०) । १९—दीठ (कां०)। २०—मानही (कां०)। २१—जानही (कां०)। २२—पर (स०)।

* जयपुर की प्रति में यह पाँचवी चौपाई है।

निज समुझौ[१] तो एकौ सोई । साहब सेवक भेद ने[२] कोई ॥
जड़ चेतन अंतर पुनि[३] नाहीं । सर्वे समाइ रहे ता माहीं ॥
ज्यों जल माहि बुदबुदा[४] भएऊ । है जल नांव और होइ गएऊ[५] ॥
गांठि छुट जब जलहिं समाना । जल को जल कुछ भयो[६] न आना ॥
कनक सिला ज्यों चित्र बनाए[७] । पसु पंछी लिख नांव धराए[८] ॥
एक[९] कनक होइ[१०] रहा[११] अनेका । कारण[१२] टूट एक को एका ॥
त्यों यह सब सोइ होइ रहा । भेद कीये[१३] तिन मरम न लहा ॥
वहै[१४] नचैया[१५] वहै[१६] बजैया । वहै[१७] खेल औ वहै खेलैया ॥
जब चाहै तब धरै उठाई । अपना ज्यों का त्यों रहि[१८] जाई ॥

दो०—वह जो रूप वाको अचल, तासों भयो न भंग ।
जग समुद्र जल माहि, उपजी ए तरंग ॥८॥

जो संदेह धरै जिउ[१] कोई । वह[२] चेतन कैसे जड़ होई ॥
जद्यपि वह[३] चेतन जड़ नाही । पै जड़ प्रगट[४] भए[५] ता माही ॥
जड़ कछु[६] दूजे वस्त[७] न जाना । मकरी कर[८] जाग कै[९] माना[१०] ॥
काढ़ि आप सों कौतुक कीन्हा । औ[११] छिन माँहि[१२] लील पुनि लीन्हा ॥
अंत महा परलै जब होई । दिष्टि पदारथ रहै न कोई ॥
होइ अलोप[१३] तत्तु[१४] गुन[१५] मेला । कछु न रहै वह रहै अकेला ॥
सब कुछ[१६] ताही[१७] मांझ समाई । चेतन अविनासी कहि[१८] जाई ॥
आदि अंत जो एकै सोई । मध्य[१९] उपाधि[२०] न मानौ कोई ॥
ऐसे समुझि एक निजु जानहु । दुविधा भूलि[२१] न मन मे आनहु ॥

दोहा—और न भखउ[२२] जो[२३] कुछ सो वह[२४] अलख निरंजन एक ।
भांति[२५] भांति कै भेख धरि[२६], एकै भयो अनेक ॥९॥

दोहा—८—[१]समझै (कां०) । [२] एकै (का०) । [३] और (कां०) । २—कछु (कां०) । ३—भयो (कां०) । ४—गयो (कां०) । ५—भेव (स०) । ६—बनाई (स०) । ७—धराई (स०) । ८—कनक अंग (का०) । ९--हुई (कां०) । १०—रह्या (कां०) । ११—कारै (स०) । १२—गिनै (स०) । १३—वही (कां०) । १४—नचा-वहि (कां०) १५—वही (कां०) । १६—वही (कां०) । १७—रहि (कां०) ।

दोहा—९—१—जन (कां०) । २—विन (स०) । ३—विन (स०) । ४—प्रघट (स०) । ५—भई (कां०) । ६—दूजी (कां०) । ७—जानहि (कां०) । ८—को (कां०) । ९—करि (कां०) । १०—मानहि (कां०) । ११—ऊ (स०) । १२—मांझ । १३—अनूप (कां०) । १४—तत (स०) । १५—खन (स०) । १६—कछु (कां०) । १७—ताहि (कां०) । १८—हीं रहि (कां०) । १९—भरहु (स०) । २०—उपाइ (कां) । २१—मूल (कां०) । २२—कछु कछु (कां०) । २३—सो (कां०) । २४—वोह (कां०) । २५—कई (स०) । २६—वर (स०) ।

ता गति[१] ता बिन हाथ न आवै । वुद्धि[२] तहां परवेस न पावै ।।
मति[३] तिमि निसि वह दिन उजियारा । ताकर कहां तहां पैसारा ।।
केहि[४] बिधि मिलै धूप कहु[५] छाही । जौन सुरज चितवै तिन्ह[६] मांही ।।
खोजहिं[७] खोज हार पै माना । लपि[८] न सकै सोहि पैं[९] हेराना ।।
है तो तिनकै ओट पहारा । पै तिन तिन[१०] आंखन तिन डारा ।।
स्वप्न भर्म जासों जग फीका । एकहि हुए देखै दृग नीका ।।
ओ[११] तिन्ह[१२] कढन कढा होइ काढ़े । कढ[१३] न जाइ ताकै बिन काढ़े ।।
जब सोइ ता तमहि[१४] निकारै । ज्ञान नैत्र सूर्व कै[१५] डारै ।।
बांक[१६] द्वैत दरसन मिट जाई । तब निज एकौ देइ[१७] दिखाई[१८] ।।

दोहा—अगिन परगट जब काठ तै, काठै[१९] देइ जराइ ।।
तबहिं काठ तासों मिलै, नातर मिली न जाइ ।।१०।।

जेती वा[१] प्रभु कै[२] प्रभुताई । तेती गति[३] नहिं[४] जाइ सुनाई ।।
अति[५] अपार गति पार न कोई । निज बरनन कैसै कर होई ।।
ताको बरनन और न कोई । यहै[६] बचन जो कछु सत[७] सोई ।।
कै विस्तार पार को पावै । कथनी[८] औरै[९] और न करावै[१०] ।।
जो रसना सत[११] होहि[१२] कथैया[१३] । जिह[१४] लौं कर सब होहिं लिखैया ।।
भुइं[१५] अकास कागज[१६] सब होई । सरवर औ सागर मसि[१७] सोई ।।
लेखनि[१८] सब[१९] तरुवर तन[२०] डारा । तोउ[२१] सो[२२] लिखि न जाइ विस्तारा ।।
जो कहियै तासो उपराई[२३] । अस्तुत कौ निदान कछु नाही ।।
यहै[२४] निदान जो[२५] नांहि[२६] निदानू । सो प्रभु अनगिनत कीन्ह[२७] विधानू[२८] ।।

दोहा—निरगुन औ सगुण[२९] गुनी[३०], अबरन औ बहु भेस ।
एक अनेक जो होइ रहा, ताहि[३१] करौं आदेश ।।११।।

दोहा—१०-१—ताकत (स०) । २—विधी (स०) । ३—मत (स०) ।* यह चौपाई केवल मुनि काति सागर जी की प्रति मे है । ४—किहि (कां०) । ५—कहि (कां०) । ६—तिहि (कां०) । ७—खोजै (कां०) । ८—लिख (स०) । ९—हृदै (का०) । १०—तन (स०) । ११—ऊ (स०) । १२—वोहु गडिन गडावेहु गाढे (कां०) । १३—कढ़ि (कां०) । १४—तानह तिनहि (स०) । १५—गहि (कां०) । १६—वात (स०) । १७—देहै (कां०) । १८—देखाई (स०) । १९—सौ (कां०) ।

दोहा—११-१—ता (कां०) । २—की (कां०) । ३—कत (स०) । ४—कह (स०) । ५—अत (स०) । ६—येही (कां०) । ७—सब (स०) । ८—कीन्ह (कां०) । ९—और (कां०) । १०—करि आवै (कां०) । ११—सब (स०) । १२—होतिहि (कां०) । १३—कथा (कां०) । १४—जिहि तो गुरु सत होतिहि लपा (कां०) । १५—भुम्भ (कां०) । १६—कागर (स०) । १७—मिस सागर (कां०) । १८—लषन (कां०) । १९—शत (कां०) । २०—तिन (कां०) । २१—तौ (का०) । २२—सु (कां०) । २३—सोपराही (स०) । २४—ऐहि (स०) । २५—जु (कां०) । २६—नाथ (स०) । २७—गिनइं (का०) । २८—निदानू (कां०) । २९—सब गुन (स०) । ३०—गुणी (कां०) । ३१—ताकौ (कां०) ।

अब गुन कथन मत कै करौं । जिन्ह कै प्रेम प्रताप मिस्तरौं ।।*
जबते प्रघट मोहिं निसितारे । उन एते केतै निस्तारे ।।*
प्रथम निरमल वह जोति उपाई । तिन्ह कै प्रीत सब सिष्टि बनाई ।।*
रसन एक अस्तुति वहु भेखा । लिखै सो को नाहि कछु लेखा ।।*
जाके प्रेम हिय यह मदमांते । ताकै प्रीत प्रथमै रंगराते ।।*
हौं बलहार नांव कै जाऔं । जिन्ह प्रताप प्रभु दरसन पाऔं ।।*
औं उन्ह प्रेम बिन मुक्ति न होई । जिन भूली भटको मत कोई ।।*
अतम सब कल मांह सो जानहु । यहै वचन सत्य कै मानहु ।।*
निस वासर रावर जस कहौं । कंवल चरन मन करतैं कहौं ।।*

दोहा—तीन लोक नौ खंड महं, ऐसो और न कोइ ।
आतम आदि तैं अंत लग, भयो न कोऊ होइ ।।१२।।*

वादशाह वर्णन

साह जहां सुलतान चकत्ता । भानु समान राज एकछत्ता ।।
दिहली उवा[1] सुरज[2] उजियारा । चहूँ ओर जस किरन पसारा ।।
राजन्ह के मुख रहा न पानो । मनो[3] बेलि रवि तेज झुरानी[4] ।।
हुते[5] जु[6] गढ[7] मेर ज्यों ठाढे[8] । गारि[9] नवाइ[10] नीर कै[11] काढै ।।
किये नमान[12] सबै अभिमानी । मान छोड़[13] अब[14] करहिं[15] किसानी ।।
सीस नवाइ रहा जो वाचा । जो उकसा सो काल मुख खांचा ।।
रहा न कतहूँ जुद्ध[16] कर[17] मानू । अस दिढ होइ बैठा सुलतानू ।।
छत्री छत्रधार जो कहाए । ते जुहार को[18] बार[19] न पाए ।।
खंड खंड कै राजा राऊ । ठाढ़े रहत जोरैं कर पाऊ ।।

दोहा—जे राजा तरवार वर[20] कटक देत है[21] टार[22] ।
तोरि तोरि तरवार तिन्ह[23] फार[24] गढाए[25] कार ।।१३।।

दोहा—१३—१—हुवा (कां०) । २—सूर्य (कां०) । ३—मान (स०) । ४—झुरानी (स०) । ५—होते (स०) । ६—जो (स०) । ७—घर (स०) । ८—वाड़े (स०) । ९—कार (स०), गार (कां) । पर शुद्ध पाठ 'गारि' है । गारना=दबाकर निचोड़ना । मेरु के सदृश दुर्गों को झुका कर उनहें कउका पानी निचोड़ कर वहा दिया । १०—लुदाय (कां०) । ११—कइ (कां०) । १२—अपमान (कां०) । १३—छरी (कां०) । १४—अति (का०) । १५—करै (कां०) । १६—जड (कां०) । १७—करि (कां०) । १८—कहि (कां०) १९—पार (स०) । २०—वलि (का०) । २१—ही (कां०) । २२—तार (स०) । २३—वह (कां०) । २४—भार (स०) । २५—गढाई (कां०) ।

* ये चौपाइयाँ और दोहा श्री मुनि कांतिसागर जी की प्रति में नहीं हैं ।

साज काज करै चड़ाई। गहि मंडल[1] हय[2] मय होइ जाई ॥
चलहिं[3] गयंद ठाठ चहुं ओरा। मेधन अनी[4] कीन्ह मनु[5] जोरा ॥
अनगिन सैन न वार न पारू। महि[6]पहं[7] सहि[8] न जाइ सो भारू ॥
कांपे धरनि मेरु धस जाई। कमठहि आन बनै कठिनाई ॥
वासुकि डुलै[9] होइ कलमली। परै पताल लोक खलवली ॥
परवत चूर चूर होइ जाही। असल मसल होइ धूर उड़ाही[9] ॥
इंद्र लोक पहुंचै सो धूरी। अंधकार उपजै तिहि[10] पूरी ॥
सूरज प्रकास न देइ देखाई। वासर अछ्त रैन होइ जाई ॥
वन[11]पंड टूटि खेह मिलि जांहीं। सरवर सागर सलिल[12] सुखाही ॥
दोहा—अगलै ऊज्जल जल पिवैं[13], पिछलै रवदर[14]छानि[15]।
ता[16] पिछलै चोवा खनै, तव पावहिं[17] ते पानि ॥१४॥

न्याउ नीत जो पुरानन गाई[1]। सो प्रियमीपति कै देखराई[2] ॥
गऊ सिघ एक घाट पियाए[3]। राव रंक सर कै[4] देखराए[5] ॥
रहा न जग अभीत[6] कर[7] चीन्हा। वव मी वैर अजा[8] मुत लीन्हा ॥
नीर खीर सों होइ निरारा। कढ़ै नियाइ[9] वार[10] कै खारा[11] ॥
पुत्र[12] अवीत करै जो काऊ। सील[13] न राखै करै नियाऊ ॥
देस देस कै पतियां आवैं[14]। सो नीके[15] निन वांचि सुनावैं[16] ॥
सुना[17] अनीति कीन्ह जो काहूं। वाँधि मंगावैं वाह[18] पिछाहूं[19] ॥
वुद्ध वार कहूँ यह ठहराई। बैठै[20] साह आप[21] होइ न्याई[22] ॥
जिन्ह[23] जाकों जैसो दुखहोई। विनवै जाइ न वरजै कोई ॥
दोहा—ज्यो तन के सुधि जिउ वरै, त्यों जग कै सुधि ताहि।
चाटी दुखी जो[24] पाव[25] तर, सोउ[26] सुनै सो[27] साहि ॥१५॥

दोहा—१४—१—मदिल (स०)। २—है मई (कां०)। ३—चलहं (स०)। ४—उनै (स०)। ५—जनु (कां०)। ६—पहि, (कां०)। ७—सह (स०)। ८—दवै (स०)। ९—मिलाही (स०)। १०—तिन्ह (स०)। ११—वंखदु (स०)। १२—सलल (स०)। १३—पिवन्ह (स०)। १४—रवद (स०)। १५—रिझान (स०)। १६—पिछले जब चोका पुने (कां०)। १७—पावै (कां०)।

दोहा—१५—१—गाए (स०)। २—देखराए (स०)। ३—पियाई (कां०)। ४—कर (कां०)। ५—दिपराई (कां०)। ६—अनीत (कां०)। ७—करि (कां०)। ८—अज्या (कां०)। ९—तपाइ (कां०)। १०—वारि (कां०)।११—घारा (कां०)। १२—पुतर। (स०)। १३—शील रापय (कां०)। १४—आवहं (स०)। १५—नेगी (कां०) १६—सुनावई (स०)। १७—सुनत (का०) (कां०)। १८—वाँहि (कां०)। १९—पछाहुं (कां०)। २०—बेठि (कां०)। २१—अव (कां०)। २२—नियाई (कां०)। २३—जिसि (कां०)। २४—जु (कां०)। २५—पाइ (स०)। २६—सोउ (स०)। २७—सिर (कां०)।

धरमराज परजा सुख पावा । देस देस सब सुबस बसावा ॥
सुख सों करै किसान किसानी । बोइ सो बांट देइ राजधानी ॥
राज अंस सो बाढ़[1] न लीजै । परजहि[2] आव बचै सो[3] कीजै ॥
परजा घर आनंद बधाई । भूखा एक[4] न सबै अघाई ॥
अपने भाग दुखी जो कोई । ताकै सुधि संभार पुनि होई ॥
बरध[5] बीज भख[6] सब तिन्ह[7] दीजै । जब ताकै उपजै तब लीजै ॥
निरभै बनिज करै ब्यौपारी । लाखन साज रहे मग डारी ॥
चोर जगत महं दिष्टि न आए । जिन चोरीं सब चोर चोराए ॥
राज नीति सब कहं सुख दाई । जग सुख सो उद्यम[8] करि[9] खाई ॥

दोहा—देखि जगत सबहीं[10] सुखी, सुखहू पायो सुक्ख ।
दुख अति[11] सुख सों[12] दुखी होइ, समुंद पार[13] गयो दुक्ख ॥१६॥

दाता कहियत एकै सोई । ता सरवर[1] कहि और न कोई ॥
एक वार तिहि[2] सों जिन मांगा । पुनि[3] भर[4] जनम न काहू खांगा ॥
जे मंगप टूकन[5] कै मांगा । तिन बन भरहिं[6] रतन कै माँगा ॥*
जे[7] मंगत्त धन घर[8] घर डोलैं । सो दर पग न[9] धरैं बिन डोलैं ॥
जे मंगत चीरन्ह कै जोरा[10] । तिन्ह[11] कै कनक चीर कै जोरा ॥
जे[12] मंगत[13] चैने[14]* कर चूनू । खाहि सो मुकत[15] चिनी[16] कर चूनू ॥
लीन्ह[17] जो सदावरत कै दाना । दीन्ह[18] अब[19] सदावरत कर दाना ॥
असेप[20] मान दान जग दीन्हा । मंगत जन दाता सब कीन्हा ॥
जिन दानन[21] हातिम जग जाना । दीन्ह साह मंगन[22] ते दाना ॥

दोहा—साहजहां दातार उर, धरै पतार दुराइ ।
दवि मुकता तऊ[23] ना बचै देइ[24] कढाइ लुटाइ ॥१७॥

दोहा—१६—१—हन (स०) । २—परजन (स०) । ३—त्यों (कां०) । ५—बरद (स०) । ६—भूख (कां०) । ७—तिहि (कां०) । ८—उद्दम (स०) । ९—कर (म०) । १०—सब सुख (कां०) । ११—तातें (कां०) । १२—दुखी दुखी (कां०) । १३—दिख न सका तिहि दुख (कां०) ।

दोहा —१७—१—सर वढ़ (स०) । २—सर (स०) । ३—तिन (कां०) । ४—फिर (कां०) । ५—लोकन (कां०) । ६—फिरहि रतनग (स०) । ७—फिरि भ्रांतनि लगि (कां०) जा (स०) । ८—दर दर (कां०) । ९—हरैं (कां०) । १०—चोरा (स०) । ११—तिहि (कां०) । १२—जिन्हन (म०) । १३—मिलत (स०) । १४—चूनी (कां०) । १५—मुक्त (कां०) । १६—चूनी (कां०) । १७—लेहि (कां०) । १८—देहि (कां०) । १९—जु (कां०) । २०—अब तक (स०) । २१—दातन (कां०) । २२—मंगत (कां०) । २३—नै संचै तो (कां०) । २४—दिए (कां०) ।

* जो मंगते टुकड़ा मांगते थे उनकी स्त्रियाँ रत्नों से मांग भरने लगीं ।

अब गुरु देव केर गुन गाऊं । रंग विहारी[1] जिन कर नाऊं ॥
श्री बरनौं सो कथा उज्यारी । जग[2] जानइ ज्यों रंग बिहारी ॥
आदि नगर लहोर जिन्ह[3] नाऊं । जनम भूमि उन्हकै[4] तिन्ह[5] ठाऊं ॥
छत्री[6] ककर जात कहाई । भय्या चारहु[7] भलै देखाई ॥
पहलैं कहियत नांव वहोरा[8] । कसन वहोरें[9] नांव वहोरा[10] ॥
थोरी वैस बहुत मति धरै । सिद्ध साधु कै सेवा करै ॥
दयावंत[11] दुक्खी पर दुखी । देखि न सकै अतोखिहि[12] भूखी ॥
धरमी धरम पंथ पग धारै । कथा वारता सुनै[13] विचारै ॥
रहै पवित्र भजन सों कामू । सुमिरन करै सदा हरिनामू ॥
　दोहा—साधु सिद्ध[14] संगन करैं, साधुन सों व्यवहार ।
　　सुन[15] न नवहि समूझा चहै, आतम रूप विचार ॥१८॥

नित प्रति प्रात उठै जस[1] भानू । जाइ सजित[2](सरित)जल करहिं[3]सनानू ॥
वालक तहां सरौं पुनि खेलैं । लिपटैं[4] भिड़ैं[5] दंउ गिलि पेलैं ॥
तिन्ह[6] कौतुक छिन मन वहरावहिं[7] । नित प्रति तहं देवल जो[8] आवहिं[9] ॥
देवल पाइ वालक सुख पावै । अधिको कौतुक कर दिखरावै ॥
एक दिन देखत हुतै तमासा । सिद्ध एक आवा उन[10] पासा ॥
अद्भुत भेख धरै अविगती[11] । सूफी[12] औ न सेवड़ा जती ॥
सन्यासी पुनि कहा न जाई । ब्रह्मचर्य[13] गति जाइ न पाई ॥
जंगम कहा न जाइ न जोगी । खट दरसन सों[14] भेख वियोगी ॥
माथै[15] तिलक हाथ जपमाला । सींगी गरै[16] कांध[17] मृगछाला ॥
मन कै सुरति पीउ सों लागी । भ्रम मिटि गयो संका सव भागी ॥
　दोहा—पलक न लागै आंखिन[18], माखी निकट न जाइ ।
　　औ[19] न अंग परिछाहीऊ, अधर भूमि[20] सो पाई ॥१६॥

दोहा—१८-१—रंगभरी (स०) । २—जानै (कां०) । ३—जिहि (कां०) । ४—तिनकी (कां०) । ५—तिन्ह (कां०) । ६—छतरी (स०) । ७—चारि पुनि (कां०) । ८—विहोरा (कां०) । ९—विहोरे (कां०) । १०—विहोरा (कां०) । ११—सभा की प्रति मे यह अंश त्रुटित है । १२—आतमा (कां०) । १३—सोहं (स०) । १४—साधु (स०) । १५—सुनहि शिष्य गिछाचर हैं (कां०) ।

दोहा—१६-१—जव (स०) । २—सलिल (कां०) । ३—करैहि (कां०) । ४—लिपटहं (स०) । ५—फिरहं (स०) । ६—तिहि (कां०) । ७—भरमावहं (स०) । ८—काति सागर जी की प्रति में वह शब्द नही है । ९—जू आवहिं (स०) । १०—अन्यासा (स०) । ११—अवगती (कां०) । १२—सोपहि और न सेव राजतै (स०) । १३—ब्रह्मचरण (स०) । १४—सुन (स०) । १५—माथन (स०) । १६—करै (स०) । १७—कांधै (स०) । १८—आंख न (स०) । १९—माखै (स०) । २०—औ न अंग पउ छाही (का०) । २१—भुई (स०) । * चैना=एक प्रकार का निकृष्ट वाद्य ।

इन वह पुरुख दिष्टि महं[1] आना । देखत सिद्ध पुरुख पहचाना ।।
सिद्ध पुरुख इन्ह तन पुनि पेखा । भई परस्पर देखी देखा ।।
तब इन[2] देवल[3] गोद सों[4] काढी[5] । हिय[6] मैं पीत दरसन तैं बाढी ।।
हंस कै पुरुख हाथ गह[7] लीन्ही[8] । लै रंचक अपनै मुख दीनी[9] ।।
कर जो रहे[10] इनके मुख डारे[11] । डारत बुद्धि किवार उघारे ।।
कै चेला चल भय[12] गुरु आगे । ए गुरु के पीछे[14] उठ[15] लागे ।।
एक[16] वचन पूछा तिहि ठाऊं । कहौ[17] गुरु तुम आपन नाऊं ।।
कहा अचिंत नाम सुन मोरा । रंग बिहारी राखौं तोरा ।।
कहि[18] सुबचन[19] पुनि दिष्टि न आवा । पुरुख जहां कर तहां समावा ।।

दोहा—उनही[20] घरी[21] कृपा भई, दया कीन्ह[22] गुरु देव ।
आतम[23] रूप लखा प्रगट[24] रहा न अंतर भेव ।।२०।।

ततखन और दसा होइ गई । जीवत[1] मुक्ति परापत[2] भई ।।
सो अंजन[3] नैनन गुरु दीन्हा । जासों अलख निरंजन चीन्हा ।।
प्रगट असूझ रूप निज सूझा । बूझा चहिय मरम सो बूझा ।।
हुती[4] जो रजु विषधर कै मानी[5] । सो अब[6] निज रुचि कै रजु जानी ।।
मिटा भरम भय निरभय भयऊ । हुता जो जीव सीव[7] होइ गयऊ ।।
कै[8] घिउ महेव गांठ सो छूटी । जड़ चेतन हुत[9] जेवरि टूटी ।।
तन मिरतग[10] सों रहा न नाता । अमर आत्मा सों मन राता ।।
दिष्टि दरब झूठा कै[11] जाना । आतम अविनासी पहचाना ।।
हुता जो और और मति खेला । गुरु भा छिनक एक महं चेला ।।

दोहा—माया मही[12] मिलाप स्यौं[13], घिव जु[14] भएउ दधि जीव ।
सतगुरु[15] फेरि मथानि मन, काढि दिखायो[16] घीव ।।२१।।

दोहा—२०–१—मै (कां०) । २—उन (कां०) । ३—द्योल (स०) । ४—तैं (कां०) । ५—काढ़े (कां०) । ६—ते ताके सनमुख भये ठाढे (कां०) । ७—फल (कां०) । ८—लीन्हे (का०) । ९—दीन्हे (का०) । १०—रहि (स०) । ११—डारी (स०) । १२—बिरह कुवार ओखारी (स०) । १३—भागु (कां०) । १४—पाछे (कां०) । १५—उठि (कां०) । १६—बूझौ बचन जो अज्ञा पामों (स०) । १७—कहो कहौ (स०) । १८—कहसि (स०) । १९—बचन (त०) । २०—वही (कां०) । २१—घड़ी (कां०) । २२—करी (कां०) । २३—उत्तम (स०) । २४—प्रघट (स०) ।

दोहा—२१–१—चितवत (स०) । २—प्रापत (कां०) । ३—वावचन (कां०) । ४—हुती सुरुचि (कां०) । ५—पातै (कां०) । ६—अति निज रुचि की रुचि जातैं (का०) । ७—सेव (कां०), सोइ (स०) । ८—कहा और मोह (स०) । ९—हित (स०) । (कां०) । १०—मरतक (स०) । ११—करि (का०) । १२—मोहि (कां०) । १३—सौ (कां०) । १४—मुनि कांति सागर जी की प्रति में नही है । १५—संकर (स०) । १६—देखा (स०) । मही=मठा, छांछ । जेवरि=रस्सी ।

जागति कला भई जग जानी । रंग विहारी सिद्ध वखानी ।।
बचन[1] सिद्ध जो कहै सों होई । अविचल वचन न विचलै कोई ।।
जासों कृपा दिष्टि सौं[2] हेरै । अमर करहिं[3] तिन्ह[4] मरन निवेरै[5] ।।
जिन केतक[6] भूले समुझाए । केइयक[7] पंथी[8] पंथ लगाए ।।
तिन्ह[9] के सरन जाइ जिन लीन्हा । ज्ञान ध्यान पदवी तिन्ह[10] दीन्हा ।।
जद्यपि[11] आप पै आप समानां । सिमिट[12] जोति मिलि प्रगटिहिराना ।।
पै गुरु[13] जप तिन्ह की जो वानी । बीज मंत्र ठहराइ वखानी ।।
सो सुनि संत[14] पंथ में आवै । जो आवै सो अमर पद पावै ।।
पंथ प्रतापवंत उजियारा । जिन्ह नै गहा सो रहा न वारा* ।।

दोहा—गुरु अचित को पंथ जग, वहु जल तरनी नाव ।
पहुंचन हार जो पार को, सो राखै तहं पाव ।।२२।।

तिन्ह कै सिख कायथ भटनागर । स्याम दयाल ज्ञान गुन सागर ।।*
गोद हते जब वाल अयाने । तवही सों दिच्छा महं आने ।।
माथे हाथ धरा गुरु देवा । कै अति[1] कृपा लगाई सेवा ।।
आयसु भा[2] एहि[3] सिक्ख हमारा । होइ[4] है भगत[5] जगत उजियारा ।।
ते अव महापुरुष विज्ञानी । मुख ऊचरै[6] ज्ञान निधि[7] वानी ।।
जिन्ह[8] को नाम[9] लिएं दुख जाही[10] । दरसन[11] किएं तजि पाप पराही ।।
पा[12] परसै सन्देह न कोई । निसचै ज्ञान परापत होई ।।
जो काहू गुरु[13] सवद सुनावै[14] । ताहि[15] तेहि[16] छिन अलख लखावै[17] ।।
मोहिं तिन्हहिं[18] यह[19] पंथ लगावा । कृपा कीन्ह गुर[20] जाप सिखावा[21] ।।

दोहा—भूले भटके[22] वांह गहि, मारग दियो लगाइ ।
लोहा कंचन कै लियो, पारस पग परसाइ ।।२३।।

दोहा—२२-१—सिद्ध बचन (स०) । २—कर (स०) । ३—करन्हं (स०) । ४—तिहि (कां०) । ५—निवेरहं (स०) । ६—एक (कां०) । ७—कए (स०) । ८—कुपंथी (स०) । ९—तिनको (कां०) । १०—तिहि (कां०) । ११—अव जद्यपि ते आप समानै (स०) । १२—सुमति जोत मिल आप हिरानै (स०) । १३—ले गुरु जपतौं तिह की वानी (का०) । १४—सृष्टि (कां०) । *यह चौपाई और दोहा कां० प्रति में नहीं है । *इस चौपाई के पश्चात् का० प्रति मे निम्नलिखित दोहा और चौपाई और है:—

दोहरा—स्यामदियाल लघुवेस मै, पायौ गुरू पसाव ।
वचन सुनत गुरुदेव के, भयो सुद्धता भाव ।।

चौपाई—जन्म भयो तिन्ह कौ जब जानी । तवही ते गुन रूप सुजानी ।।

दोहा—२३-१—निज (कां०) । २—भया (स०) । ३—इह (कां०) । ४—ह्वै है (कां०) । ५—भक्ति (का०) । ६—उच्चारै (स०) । ७—बुध (कां०) । ८—जिहि (का०) । ९—नाव (कां०) । १०—जाई (कां०) । ११—पापहिं के पर पाप हिराई (कां०) । १२—पाप नसै (कां०) । १३—कर (स०) । १४—सुनावन्ह (स०) । १५—तौ (का०) । १६—तिन्है (कां० । १७—लखावन्ह (स०) । १८—तवही (कां०) । १९—इह (कां०) । २०—कर जाप (स०) । २१—सुनावा (कां०) । २२—तिन्ह की (का०) ।

सूरदास निज नाउं बताऊं । गोरधनदास पिता कर नाऊं ॥
कंबू[1] गोत माछिलै[2] तासू । कलानूर[3] पुरखन कर वासू ॥
तात[4] हमार[5] तहां सों आवा । पूरब दिसा कोऊ[6] दिन छावा ॥
नगर लखनऊ बड़ा[7] सो[8] थानू । रुचिर[9] ठौर बैकुंठ समानू ॥
मेरो जनम यहै[10] ठां भयऊ । कलानूर[11] कबहूँ[12] नहिं गयऊ ॥
जद्यपि हौं अबहूँ परदेसा । पै नित प्रति सुमिरौं सो देसा ॥
जैसे पंथी बसै सराई । महूं बिदेस रहौं[13] तिन्ह[14] नाईं[15] ॥
आदि ठौर बिसरा[16] मैं[17] नाहीं । सांई सदा रहै मन माहीं ॥
सुमिरन करौं नाम हर स्वासा । मग जो बिधि पुरखे सो आसा ॥

दोहा—बिन निज दया दयाल कै, देस न पहुंचा जाय ।
जब लग सांई बांह गहि, लेइ न देइ पहुंचाय ॥२४॥

एक दिवस[1] मोरे मन आई । भारत पढ़ै लाग चित लाई ॥
तेहिके[2] परब पढ़त जब आवा । नल की कथा खोंच हिय लावा ॥
सुना जो नर नारी कर पेमू । बिसरा[3] देह गेह[4] कृत नेमू ॥
सुनि[5] मन डार पात[6] फल[7] आवा । बिरह[8] वृक्ष इन्हन[9] जनु लावा ॥
बिकल भयौ तन छूट कचाई[10] । बिखधर डसैं लहर जनु आई ॥
मन मोरै तन कै सुध खोई । नींद जाइ अन्तैं[11] पर सोई ॥
तृखा मिरान न मांगैं नीरा । भूख अघाइ बैठ होइ तीरा ॥
पावक पुंज भयो तन मोरा । पेम[12] पौन बर बर झकझोरा ॥
जिन्ह[13] कै पेम कथा मैं[14] जारा । बन ते[15] जिन्ह झेली सो झारा ॥

दोहा—कथा अगिन होइ[16] हिय परी, बरै[17] रुई ज्यों देह ।
जो जल नैन न डारते[18], भई हुती[19] जरि खेह ॥२५॥

दोहा २४–१—केवोह (कां०) । २—माछलू (कां०) । ३—कलानौर (कां०) । ४—पिता (कां०) । ५—हमारो (स०) । ६—कऊ (स०) । ७—वडो (कां०) । ८—अस्थानू (कां०) । ९—अक्षर (का०) । १०—तिहूं (कां०) । ११—कलानौर (कां०) । १२—कबहं (स०) । १३—बसूं (कां०) । १४—तिह (कां०) । १५—माहीं (कां०) । १६—बिसरन (स०) । १७—मोहि (स०) ।

दोहा २५–१—दयोस (कां०) । २—नेह को (स०) । ३—बिसरी (कां०) । ४—कार हिय कृत (स०) । ५—सुन (स०) । ६—बात (स०) । ७—डुल (स०) । ८—बृछक (स०) । ९—भूं इं जानो (का०) । १०—कपटाई (स०) । ११—उतहीं (कां०) । १२—प्रेम पवन (कां०) । १३—जिहि की (कां०) । १४—हौं (कां०) । १५—तेहि जिहि सहे सुझारा (कां०) । १६—हो (कां०) । १७—परी ईं जों देह (कां०) । १८—वारते (कां०) । १९—भेड होइ (स०) ।

प्रेम[1] वैन मन मैं पुनि आई । दवी अगिनि यह दियो[2] जगाई ।।
पेम[3] उसास पौन[4] सो वारूं । वार विरह वाती[5] घृत डारूं ।।
प्रगट[6] करूं ज्वाला जग जानैं । जो प्रेमी[8] सुनि कै सुख मानैं ।।
पेम बीज लै पौध लगाऊं । रकत सींच फुलवारि वनाऊं ।।
अनवन[9] वरन पुहुप उपजाऊं । अलि पेमी[10] जन तिन्हहिं[11] रिझाऊं ।।
एहि[12]विधि[13]पेम खान[14]हिय[15]खोलूं । अविध[16] अमोल वोल नग तोलूं ।।
विरह वेद वानी मुख आनूं । सानि प्रेम सों पेम वखानूं ।।*
औ[18] उर[19] भाठी मद[20] पेम चुआऊं । नल कै कथा सु नल कै लाऊं ।।
ऐसो पेम मयी मधु ढारौं[21] । जासौं दिया[22] पेम मग वारौं ।।
जा तन लागि जान परि सोई । अन जानत कौं दुख न होई ।।⊙
जिन्हकै वात चाव उपजावै । जो सन कहै सो उन कहि होइ जावै ।।

दोहा—पेमी पीउनहार[23] जे, चाखत खिन छकि जांहि ।
एक पियाला फिरि[24] पिवैं, दूभर[25] देहिं उंवाहि ।।२६।।

एक संहस सतसठ सन अहा । संवत सतरह सै चौदहा ।।
कै अरंभ तव कथा वखानी । कीन्ही[1] प्रगट पेम निधि[2] वानी ।।
नल दामन[3] का[4] पेम वखाना । भया[5] मिलाप सोयंवर ठाना ।।
कलजुग नल सों जुवा खेलावा । धन हराइ[6] वनवास देवावा ।।
औ वन मै विछुरे नर नारी । पुनि मिलाप ह्वै भए एक ठारी ।।
जुवा खेल जीता पुनि राजू । आइ जुरा सव वहै समाजू ।।
भारथ मै जो कथा वखानी । आदि अंत वानी महं आनी ।।
वात वात मैं[7] जुगति वनाई । कथा पुरान मय[8] कै[9] दिखराई ।।
वहुत ठौर निज अरथ दुरावा । सव[10] काहू पै[11] जाइ न पावा ।।

दोहा—वहुत लोग वोहित चढे, दवि[12] पर आवैं जांहि ।
मुकता[13] पावैं मरजिया, धसि[14] खोजैं ता मांहि ।।२७।।

दोहा २६-१—वैस (कां०) । २—द्योंहुं (कां०) । ३—प्रेम (कां०) । ४—पवन (कां०) । ५—पानी (कां०) । ६—प्रघट (स०) । ७—जो अलाव (स०) । ८—पेमै सिक (स०) । ९—आनौं (स०) । १०—प्रेमी (कां०) । ११—तिहि (कां०) । १२—इहि (कां०) । १३—मिस (कां०) । १४—कथा (कां०) । १५—जिय (कां०) । १६—अवव (स०) । १७—वोलूं (स०) । १८—ऊ (कां०) । १९—उर (स० की प्रति में नही है) । २०—मवि (कां०) । २१—धारौं (कां०) । २२—दया (स०) । २३—पीवनहार (कां०) । २४—भर (कां०) । २५—दोऊ वहुरि अमदाहि (स०) ।

दो० २७—१—कैथी (कां०) । २—धुनि (कां०) । ३—दामनि (कां०) । ४—करि (कां०) । ५—भयो (कां०) । ६—हेराइ (स०) । ७—महं (स०) । ८—जी (स०) । ९—की (स०) । १०—जा (कां०) । ११—पर (कां०) । १२—वध पुरानोहि जांन्ह (स०) । १३—मुकत सो पावइ मरजिया (स०) । १४—जो घस (कां०) ।

कै आरंभ कथा अब गाऊं[1] । जैसी[2] सुनी सो[3] बरनि सुनाऊं ॥
कहत[4] कि अहा छतरपति राजा । ऊंचै पाट[5] राज जिहि[6] छाजा[7] ॥
राजा नल प्रगटेउ जग नाऊं[8] । नगर उजैन राज कर ठाऊं[9] ॥
तिहि[10] मंडल तस और न कोई । छतर पाट[11] पति[12] एकौ सोई[13] ॥
राना राव सीस सब नावैं । वचन मानकर सीस चढावैं ॥
जे बड[14] पापी डरन्ह झुराहीं । परजहि[15] करै हथेरहि[16] छाहीं ॥
सूर समान तेज जग माना[17] । उपना[18] सीतल[19] इंदु[20] समाना ॥
सांचा सांत रूप रस वारै[21] । राज करै सत धरम विचारैं ॥
धरम विचार न छाड़ै काऊ । राखत[22] धरम सीस किन जाऊ ॥

दोहा—बडो[23] धरम निधि राजा, पंडित सब गुन पूर ।
तेज दया कर सर वर[24] खड्ग[25] दान मति सूर ॥२८॥

औ[1] अति रूपवंत उजियारा । मानौ काम लीन्ह अवतारा ॥
जिन्ह[2] मुख रूप कहै[3] तिहि[4] नीका । नल मुख रूप रूपमुख फीका [5] ॥
करै न कोउ[6] रूप सरि तातैं[7] । वट[8] जनु घट लिखि दीन्ह विधातैं ॥
सूर क्रांति बरनी[9] मुख जोती । पै[10] सूरह मुख जोति न ओती[11] ॥
नैनहि[12] जोति जरै रवि देखै । सीतल होहि[13] हेम§§ तव पेखै ॥
सूरह देखि लोभाइ न कोई । इन्ह[14] देखै सो दरसन[15] होई ॥*
जो गति[16] नैनन की रवि ताकै[17]। सो गति[18] छिन[19] ताकै[20] मुख याकै[21] ॥
पुरुष नारि जाके[22] चित परा । फिरि भरि[23] जनम न चित सों टरा ॥
ब्रह्म रूप जग हीय[24] समाना । जिन्ह देखा सो देखि हिराना ॥

दोहा—जे[25] रजवारै अन वरैं, सुनि[26] सोभा वैराग ॥
अनल वरन नल वरन लग, वरन लगै[27] होइ[28] आग ॥२९॥

दो० २८—१—कानूं (स०) । २—जैसे सुनै (स०) । ३—सुवर्ण (कां०) । ४—कह्या कि (कां०) । ५—पात (स०) । ६—जिन्ह (स०) । ७—भाहा (स०) ।
* यह चौपाई कां० प्रति में नहीं है । ⊙ यह चौपाई स० प्रति में नहीं है।

८—जानो (कां०) । ९—थानो (कां०) । १०—तिन्ह (स०) । ११—पति (स०) । १२—तव (कां०) । १३—होई (कां०) । १४—जे बरयातैं दुरन्ह घड़ाही (स०) । १५—परजै (कां०) । १६—हथर पुनि (कां०) । १७—जाना (कां०) । १८—उपमा (स०) । १९—सियल (कां०) । २०—मंद (स०) । २१—मारैं (स०) २२—राखव (स०) । २३—वुद्धि (कां०) । २४—वर सवर (स०) । २५—दान खरग (स०) ।

दो० २९—१—ऊ (स०) । २—जिहि (कां०) । ३—कीन्ह (कां०) । ४—तिहि (कां०) । ५—तीखा (स०) । ६—कोई (स०) । ७—वातैं (स०) । ८—खट जिन खट (स०) । ९—वरनै (स०) । १०—सर (कां०) । ११—ऊती (स०) । १२—तनही (कां०) । १३—होन्ह भसमपति (स०) । १४—तिहि (कां०) । १५—दरसी (कां०) । १६—राति (स०) । १७—देखै (स०) । १८—गत (स०) । १९—इन (कां०) । २०—याकैं (कां०) । २१—ताकै (कां०) । * यह चौपाई कां० प्रति में आठवीं है। २२—ताके (कां०) । २३—फिर (स०) । २४—हीये (कां०) । २५—जे उजियारी सुनि अमृत (कां०) । २६—विन सोभा वैराग (कां०) । २७—लगी (कां०) । २८—ह्वै (कां०) । §§ हेम=हिम, वरफ, पदमावत २।१

पेमी पेम पंथ पग राखै । जब तब पेम वचन मुख[१] भाखै ।।
पेम दिया देखैं जिहि[२] वरा । तहं[३] पतंग होइ चाहै परा[४] ।।
चलै जो कहूं पेम रस वाता । सुन खिन पीर[५] होइ खिन राता ।।
लोनी[६] वात जो मन मे आवै । फिर फिर दारंबार कहावै ।।
सुनि[७] पिछलो पेमिन[८] कै कथा । ताहि[९] मुनै एक होइ अवस्था ।।
झूरै[१०] झकै रुदन पुनि करै । विकल होइ तर[११] भुइं पुनि परै ।।
विद्यमान पेमी हुइ[१२] जाई । कथा पेम[१३] हुइ हिये समाई ।।
राग रंग सों अधिक[१४] पियारू । निस दिन गुन चरचा व्योहारू ।।
एक गुनी आवहिं[१५] एक जाही । एक सेवा[१६] महं[१७] रहैं सदाही ।।
ते आतम जिन पेम गुन बूझा । मरै न जौ लग अमर न सूझा ।।*

दोहा—पंडित कविता[१८] वतकहा, कावन[१९] गुनी अनेक ।
सदा सभा चरचा करै, अक्षर अर्थ विवेक[२०] ।।३०।।

एक दिन सभा वैठ हुत[१] राजा । गुनी जनन कै जुरै[२] समाजा ।।
संगति[३] सभा पँडित सब आए । गायन गंधरप वहुत[४] बोलाए ।।
तेऊ[५] सब सेवा महं[६] जेते । औ नूतम (? नूतन) आए पुनि केते[७] ।।
सब गुनियै[८] आपन गुन काढा । भइ रस मगन सभा रस वाढा ।।
तिन्ह[९] महं पेम वात चलि परी । चलि[१०] कै जाइ रूप पर वरी ।।
वह कत रूप होइ उजियारी । सोरह[१२] कला सँपूरन नारी ।।
सबै[१३] कहा वह रूप विसेपा । सिंगल[१४] दीप कही[१५] जिन्ह देखा ।।
सप्त दीप महं[१६] और न दूजा । सिंगल[१७] दीप रूप सरि[१८] पूजा ।।
ओहि[१९] दीप महं[२०] पदमिनि होई । अंतहि[२१] अवली सुनी न कोई ।।

दोहा—औ पुनि कछु अंतर नही, रांक राय[२२] का भूप ।
घर घर अवला पदमिनी, सो पुनि रूप अनूप ।।३१।।

दोहा ३०–१—मन (स०) । २—जिन्ह (स०) । ३—तिहि (कां०) । ४—वरा (स०) । ५—पेर (कां०) । ६—नूतन (का०) । ७—निस विछलै (स०) । ८—प्रेमहि (कां०) । ९—ताहू पर इक होइ (का०) । १०—झाखै झवै सदन (स०) । ११—तरफन तन (स०) । १२—रोइ (स०) १३—जीय मैं जाइ (स०) । १४—वहुत (कां०) । १५—आवै (कां०) । १६—सेव (कां०) । १७—मैं (कां०) । *यह चौपाई कां० प्रति मे नहीं है । १८—गीता नित कथा (कां०) । १९—गाइन (का०) । २०—अनेक (स०) ।

दोहा० ३१–१—वैठिअत (स०) । २—जुरी (कां०) । ३—संगन (स०) । ४—सबै (कां०) । ५—एतौ (स०) । ६—मै जिते (कां०) । ७—किते (कां०) । ८—गुणीयन (कां०) । ९—तिहि रस (कां०) । १०—चलि पुनि (कां०) । ११—धौं किति (कां०) । १२—सोरहै किरण संपूर्ण (कां०) । १३—सर्वाहि कह्या कि (कां०) । १४—संगल (स०) । १५—कहीं (कां०) । १६—मै (कां०) । १७—सकल (स०) । १८—रस (कां०) । १९—उन्हहिं (स०) । २०—पदमन जो होइ (कां०) । २१—इतिनी (कां०) । २२—तन (कां०) ।

भाटिन एक अनूप[1] सुहाई। गायन चतुर अपूरब आई ॥
तिन[2] उठि विनौ[3] कीन्ह सिर[4] आगैं। बोली वचन पेम रस पागैं ॥
महाराज निसचै यह बाता। मेटि न जाइ बातु[5] निज बाता ॥
सिंगल दीप होईं पदमिनी। और दीप[6] उपजत नहिं सुनी ॥
पैं करता जो सिरजन हारा। वाकी[7] गति अनि अपरंपारा ॥
जो सिरजा चाहै वह[8] साईं। सिरजै मुकता ताल तलाईं[9] ॥
तिन करतार एक पदमिनी। जिन अंगन[9] बरनत[10] कवि गुनी ॥
जंबू दीप माहं उपजाई। सुनी न कहीं[11] देखि हीं आई ॥
प्रथम महूँ[12] सुनि सांच न जानी। जब सौं छवि[13] परसी तब मानी ॥

दोहा—विद्यमान अजहूँ सो वहि, कन्या दक्छिन मांहि।
वर संजोग पै आजु लौं, ग्रौर बरै[14] पुनि नांहि ॥३२॥

नगर एक कुंडनपुर नाऊँ। जगत[1] मांझ[2] उपमा किहि[3] लाऊँ ॥
महाराज मैं एहीं[4] भेखा। जंबू दीप सकल[5] फिरि देखा ॥
देस देस की[6] गति हीं जानीं। नगर नगर को रूप बखानीं ॥
पैं जस कछु वह नगर सुहावा[7]। दूजा ग्रौर दिस्टि[8] नहिं आवा ॥
जिह[9] सोभा बैकुंठ बखाना। वही[10] नगर एही[11] उनमाना[12] ॥
रुचिर[13] ठौर रवनीक[14] बिसेखी[15]। कहै[16] न बनत बनै कत देखी ॥
भीमसेन तिह[17] नगर नरेसू। सो राजा वह ताकर देसू ॥
छत्रधार तिहि[18] मंडन सोई। ता[19] सरवर कर ग्रौर न कोई ॥
ताके घर उपजी सो[20] बारी। बिधना पदमिनि कै[21] औतारी ॥

दोहा—ग्रौ पुनि ताके जनम कै, कथा कहौं[22] बिस्तार।
सिद्ध[23] पुरुष कै बचन सों, भा[24] ताकर औतार ॥३३॥

दोहा० ३२—१—सरूप (कां०)। २—तिन्ह उथ (स०)। ३—विनू (कां०)। ४—सुर (स०)। ५—बातननिजु आता (कां०)। ६—देस (स०)। ७—ताकी (कां०)। ८—सो (कां०) ९—आग (कां०)। १०—बरनै (कां०)। ११—कहुँ (स०)। १२—महुं (कां०)। १३—आंखिन देखी (कां०)। १४—परी बिन नांहि (कां०)।

दोहा० ३३—१—जग (स०)। २—अदिष्ट (स०)। ३—किन (स०)। ४—तो इन्ह पेखा (स०)। ५—सबै (कां०)। ६—कै (स०)। ७—अनूपा (स०)। ८—दिपत (स०)। ९—जिन्ह (स०)। १०—वह (कां०)। ११—तिन्हहीं (स०)। १२—अनमाना (स०)। १३—उचर (कां०)। १४—ग्रौनेक (कां०)। १५—बसेखी (कां०)। १६—कहै बन बनै गति बिन देखी (कां०)। १७—तिन (स०)। १८—तिन्ह (स०)। १९—तासर बढ कन्ह (स०)। २०—वह (स०)। २१—की (स०)। २२—बड़ी (कां०)। २३—महा (कां०)। २४—भया (स०)।

पदुमिनि चाहि[१] वाढ़ एक करा । कर अंगुरिहिं अमृत[२] रस भरा ।
जो पखार मिरतक मुख घालहि[३] । जी[४] उठि ठाढ़ होइ ततकालहिं[५] ।।
जनु[६] विधि अमी छाप कर डारी[७] । कै न सकै सरि दूसर नारी ।।
इक पदमिनि उर[८] अंब्रित भरी । धौं[९] किहि[१०] जोग दई[११] अवतरी[१२] ।।
महाराज मुख जोति निकाई । कहि न जाइ[१३] देखत वनि आई ।।
जनु[१४] असौज पून्यों ससि ऊवा । तासों[१५] ऊंच क्रांति कर ढूवा[१६] ।।
यह अचरज कि[१७] वह पदुमिनी । महाराज अवलौ नहिं सुनी ।।
पहुंचै कंवल तिहूं पुर बासा । जग भा[१८] भौंर भवै[१९] तिहि[२०] आसा ।।
सुनि[२१] सोभा सब जगत लोभाना । धौं[२२] काके कर चढै निदाना ।।

दोहा—जगत मरजिया पेम दधि[२३], मुक्ताहल[२४] सो तीय ।
धौं[२५] को पावै लै[२६] तिरै, को बूडै[२७] दे जीय[२८] ।।३४।।

सुन धन[१] मुख ससि जोत अँजोरा । राजा कै[२] मन भयो[३] चकोरा ।।
कँवल वास मधुकर जनु पाई । अरवराइ[४] चाहै उड़ि जाई ।।
मन तिंहि[५] कथा सुनत[६] खिन डोला । गाहक रूप चोंप सों वोला ।।
कह भाटिन वह नगर सुहावा । तैं जग[७] मैं जो अदिस्ट वतावा ।।
कौन रूप वह नगर विसेखा । जो तैं अदभुत[८] कांति जग देखा ।।
कैस[९] ठौर कैसा[१०] अस्थानू । कर मोसों निज नगर वखानू ।।
औ[११] वह भीमसेन जो राजा । कस मनुख्य कस राज समाजा ।।
ताके घर जु कही तैं वारी । रूप सरूप पदमिनी नारी ।।
ताकी जनम कथा कह कैसै । जस[१२] तैं सुनी वरनि[१३] निज तैसै ।।

दोहा—चोंप देखि भाटिन चतुर, वोल उठी कुहकाइ ।
अव[१४] हौं नगर कथा कहौं[१५], सुनो[१६] राज चितलाइ ।।३५।।

दोहा ३४–१—चाह (स०) । २—अंकुरहं (स०) । ३—घाल (स०) । ४—जिन (स०) । ५—ततकाल (स०) । ६—जिन (स०) । ७—वरी (कां०) । ८—औ (कां०) । ९—धुन (स०) । १०—कन्ह (स०) । ११—देइ (स०) । १२—उतरै (स०) । १३—जात (स०) । १४—जसु (स०) । १५—तामों (स०) । १६—दुवा (कां०) । १७—कै (कां०) । १८—भया (स०) । १९—भुई (स०) । २०—तिन्ह (स०) । २१—सुनि (कां०) । २२—वहं (स०) । २३—दिढ (स०), दधि=समुद्र । २४—मुक्ताराइ सो पीव (कां०) । २५—वहुं (स०) । २६—तैंतरै (स०) । २७—डूवे (स०) । २८—जीव (कां०) ।

दोहा ३५–१—धुन (कां०) । २—का (कां०) । ३—भया (स०) । ४—अवरराइ (कां०) । ५—तिन्है (स०) । ६—सुनै कहि (कां०) । ७—जु जगतहिं मांझ (कां०) ८—साच कहू जिस विधि तैं (कां०) । ९—कैसे (स०) । १०—कैस (स०) । ११—औध (कां०) । १२—जिस (कां०) । १३—वर्ण (कां०) । १४—वरनू (कां०) । १५—कहू (कां०) । सुन्ह (स०) ।

जो वह नगर नियर[1] कै आई । पुहमि[2] पेम मय देइ[3] दिखाई ॥
अस कछु धरमवंत अस्थानू । सबहिं[4] जाति उपजै हर[5] ध्यानू ॥
जहां जु सिस्टि दिस्टि में आवै । सोई जनु उपदेश बतावै ॥*
लागे[6] बिरिछ नगर चहुं पासा । जनु[7] पेमी जन जगत उदासा ॥
पिय[8] कै पेम गड़े[9] होइ गाढ़े । तिन्ह ही[10] ध्यान एक पग ठाढे ॥
ज्यों ज्यों पेम अगिन तन जारै । कै पतझार ठूंठ कर डारै ॥
त्यों त्यों होहिं[11] पेम मदमाते । काढै पात अगिन रंग राते ॥
जो पुनि जरै बहुल[12] तन भरै[13] । डार डार फुनगा फुल[14] परै ॥
पाकै पाकि पाकि[15] सब गिरैं[16] । तऊ[17] न पेम लहुरा सों टरै ॥
सकल एक पानिप को चहैं । पर काजैं नित झने रहैं⊙ ॥

दोहा—ते तरुवर मनु[18] इमि कहैं, ते बिरले[19] जग मांहि[20] ।
सीउ धूप आपुन[21] महैं, करैं और पर[22] छांहि ॥३६॥

दोहा ३६–१—नेरभा (कां०) । २—भीम (स०) । ३—देहि (कां०) । ४—सेवत जात (स०) । ५—हरि (कां०) । ६—लागे जो बिरछ (स०) । ७—जानू पेमी जगत उदासा (कां०) । ८—भुभुकै (स०) । ९—खरे (कां०) । १०—तेहूं (कां०) । ११—होहं (स०) । १२—फूल (कां०) । १३—फरै (कां०) । १४—फर (कां०) । १५—भाग (स०) । १६—करै (स०) । १७—टूटहि पेम धरा सो टरै (कां०) । १८—जिम (कां०) । १९—बरने (कां०) । २०—माहं (स०) । २१—आपान (स०) । २२—परि (कां०) । * यह चौपाई केवल कां० प्रति में है । ⊙कां० प्रति में यह चौपाई नहीं है । झने=झुके हुए ।

फर तिनके जु विरिछ पुनि पेखे। तेऊ उपदेसो[2] सब देखे
आदि[3] वचन विनवै अत्र सारे। करव[4] न क्रोध गरव हम[४]कारे॥
कटहर[5] कहै देखि[6] पिउ वोही[7]। हियें[8] ग्यान कोवा[9] जिन्ह[10] होही॥
वड़हर[11] कहहि[12] मरम[13] तिन जाना। मधुर अमल जिन भेद न माना॥
नरियर कहै[14] लखै[15] पिउ[16] सोई। ज्यों[17] तन अलग गिरी[18]जिय होई॥
जामुन[19] कहै मरन औ[20] जामन[21]। ताको मिटै[22] कंत[23] मंह[24] जामन[25]॥
महुआ टपक दिखावै[26] रोई। मात[27]मोह[28] मद यह[29]गत[30]होई॥
खिरनी कहै देह यह[31] खिरनी। चेतो[32]वहुत[33]खरी[34]सो करनी[35]॥
अमली[36] कहै मोहि मधु[37] अमली[38]। जागि नीद मेटी[39] पिउ सो मिली॥

दोहा—ढिग[40] ढिग निवकौरी फगी, जो देखी[41] वन मांहि।
कह[42] वोवैं नर नीव जे, आम[43] कहां सो खांहि॥३७॥

दोहा–१—निरख (स०)। २—उपदेसैं (स०)। ३—ऊंचे विन वह अंवर सारी (स०)। ४—गर्व न करो गर्व (कां०)। ४ं—हिमगारी (स०)। ५—कथर (स०)। ६—देखिउ (स०)। ७—उनही (स०)। ८—हंसहिं (स०)। ९—गोवा (स०)। १०—जिहि होहि (कां०)। ११—वधिर (स०)। १२—कहहि (स०)। १३—मर्म (कां०)। १४—कहैं (स०)। १६—पिय (कां०)। १७—जो (स०)। १८—करैं तन (स०)। १९—जामनु (कां०)। २०—उर (स०)। २१—जामनु (कां०)। जामन=जन्म लेना। २२—मती (स०)। २३—कंथ (कां०)। २४—मैं (कां०)। २५—जामनु (कां०)। जा मन=जिसका मन। २६—देखावहं (स०)। २७—भांति (कां०)। २८—मोहि (कां०)। २९—इहि (कां०)। ३०—गति (कां०)। ३१—इह (कां०)। ३२—चेतन (स०)। ३३—वैहुर (कां०)। ३४—घरी (कां०)। ३५—घरनी (कां०)। ३६—अंवली (कां०)। ३७—मद (कां०)। ३८—अमली (कां०)। ३९—मीठी मैं अमली (कां०)। ४०—विग धिग (स०)। ४१—देखै तिन (स०)। ४२—कहो (कां०)। ४३—अंव (कां०)।

जुर वैठै पंछी तिहि[१] साखा । वोलहिं[२] सवै[३] पेम[४] रस भाखा ।।
पांडुक[५] पेम वैन[६] गुहरावैं[७] । एक जग[८] एकै[९] तूं रट लावैं ।।
चातक देइ[१०] प्रीतम मैं[११] जीऊ । निस वासर कूकैं[१२] पिउ पीऊ ।।
तोतहि[१३] और वचन न सुहाई[१४] । भीटुहि[१५] भीटुहि रटिना लाईं ।।
महरि[१६] जो[१७] पेम दाह दहदही[१८] । तिंहि[१९] दुख सदा पुकारत[२०] रही ।।
मोरहिं[२१] निपट पेम दुखदाईं । निसि दिन मुएउँ मुएउँ चिल्लाईं ।।
कोकिल विरह[२३] जरी भई कारी । कुहू[२४] कुहू सव दिवस[२५] पुकारी ।।
समुझि[२६] न परैं कहै जस सूवा[२७] । जनों[२८] कहै जग सेंबर भूआ[२९] ।।
लखि न जाइ[३०] मैंना मुख वैना । पै जु[३१] कहै तूही[३२] प्रभु मैंना ।।

दोहा—और[३३] घने पंछी तहा[३४], गिनत कहां लौं जाउं ।
सवही[३५] कहैं[३६] पेम[३७] सों, लेहु[३८] धनी को[३९] नाऊं ।।३८।।

दोहा ३८–१—तन (स०) । २—वोलहुँ (स०) । ३—सर्वहि (स०) । ४—प्रेम (स०) । ५—पांडक (कां०) । ६—वहिस (कां०) । ७—कहरावै (स०) । ८—जक (कां०) । ९—एक (स०) । १०—दे (कां०) । ११—महुं (स०) । १२—कूकहं (स०) । १३—तू तिन (स०) । १४—सुहाए (स०) । १५—वहै तौं नही वहै रट लाए (स०) । १६—मिहर (कां०) । १७—जु (कां०) । १८—रही (स०) । १९—तिन (स०) । २०—पुकारै दही (स०) । २१—मोरो (स०) । २२—म्यों म्यों चिलाई (कां०) । २३—विरहै (कां०) । २४—कुहूं कुहूं (कां०) । २५—द्योस (कां०) । २६—समभ (कां०) । २७—सोरा (स०) । २८—चीन्ह (स०) । २९—खूवा (कां०) । ३०—जाहं (स०) । ३१—जिन (स०) । ३२—यहै पट (स०) । ३३—और कहै (कां०) । ३४—जहां (स०) । ३५—सवै (कां०) । ३६—कहौ (स०) । ३७—प्रीतम (कां०) । ३८—लेही (कां०) । ३९—कर (कां०) ।

भरे[1] सरोदक ताल तलावा। कहि न जाइ कछु तिन्हक[2] बनावा ॥
जानहु[3] पेमी पेम सिखावै[4]। पेम अवस्था प्रकट दिखावै[5] ॥
जल उज्जल निर्मल जनु[6] मोती। रहहि[7] समाइ ब्रह्म उर जोती ॥
अति गंभीर थाह[8] कछु नाहीं। मन कर मरम[9] दुरा मन माहीं ॥
चहुं दिसि[10] पाकी[11] पार बनाई। पाक पेम जनु मिटी कचाई ॥
जद्यपि पेम हिलोर[12] उठावै। उमंग अद्य[13] जल ढुरन[14] न पावै ॥
नीरज नैंन पेम रंग राते। पुतरी भंवर[15] मीत मदमाते[16] ॥
जो पुनि कहौं नैन दुई[17] गिनै। नीरज घने[18] न बरनत बनैं ॥
पिउ[19] छबि दरसन चाव जो भयऊ। सब तन नैन मई होइ[20] गयऊ[21] ॥

दोहा——औ पुनि तहा जो[22] खग बसहि[23], ग्यान सीख[24] तिन पाहं।
पाखन[25] जल बीधै[26] नही, सदा रहैं[27] जल माहैं[28] ॥३६॥

दोहा ३६-१—भरइ (स०)। २—तिहि (कां०)। ३—जानू (का०)। ४—सिखावह (स०)। ५—देखावहं (स०)। ६—जस (कां०)। ७—हिये समाइ रही केहु जोती (कां०)। ८—ताह (स०)। ९—मर्म (कां०)। १०—दिस (कां०)। ११—ताकी (कां०)। १२—हिलो (स०)। १३—आंस (स०)। १४—ढरन (स०)। १५—चवंर (स०)। १६—मधुमाते (कां०)। १७—हुई (कां०)। १८—कहै खनै न (कां०)। १९—पिय छब दरस चाउ जब भयो (कां०)। २०—ह्वै (कां०)। २१—गयौ (कां०)। २२—जु (कां०)। २३—बसै (कां०)। २४—सिखाई न त्यांहि (कां०)। २५—पांखें (कां०)। २६—वीधइ (स०)। २७—रहै (कां०)। २८—मांहि (कां०)।

मढ[1] मंडप साजे[2] चहुँ पासा । तहां सिद्ध साधक[3] कर वासा ।।
विप्र ब्रह्मचारी अनगनि । जती जो जैनमती[4] ते कहै ।।
जोगी जंगम कर बिस्रामा[5] । सूफी सन्यासी दस नामा ।।
कोऊ जपा जपै[6] आरावैं[7] । कोऊ तपा तपै[8] तप सावै[9] ।।
कोउ अष्टांग[10] जोग मैं[11] उरझै । कोऊ उरझि पाइ निज[12] सुरझै ।।
कोउ[13] बिज्ञानी[14] पुरुष संजोगी । कोऊ ज्ञान के खोज वियोगी ।।
तिनकर दरसन[15] जाइ जिन पावा । जनु[16] अठसठ तीरथ न्है[17] आवा ।।
मन मिलतइं[18] निरमल होइ जाई । छाड़ि देइ सब चंचलताई ।।
जग धंधा सो धंध कह जानै । और आपुहि धंध कै मानै ।।

दोहा—ज्यों चितवत[19] खिन सूर्य कै, कमल सुमन[20] विगसाहि ।
त्यों[21] साधुन[22] कै दरस गुन, ज्ञान नेत्र खुल जाहि[23] ।।४०।।

दोहा ४०—१—मधु (स०) । २—साजे (स०) । ३—सादक (स०) । ४—श्रो जहे मुनि कै वनै (कां०) । ५—विस्रामा (स०) । ६—जपहँ (स०) । ७—आर धहँ (स०) । ८—तपन (स०) । ९—सावहँ (स०) । १०—अष्टामग (स०) । ११—महि (स०) । १२—तिज (स०) । १३—कोई (कां०) । १४—विज्ञान (स०) । १५—दरस (कां०) । १६—जन आठहु (स०) । १७—होइ (स०) । १८—मलीन (कां०) । १९—धन सूरज को कमल (स०) । २०—सो पुनि बिकसाहं (स०) । २१—तवौं (स०) । २२—साधन (कां०) । २३—जांह (स०) । * यह चौपाई कां० प्रति में नहीं है ।

* मध्यकालीन साहित्य में लगभग अड़सठ तीर्थों की संख्या प्रसिद्ध हो गई थी (देखिए पदमावत, ६०४।२) ।

पैंड[१] पैंड पर कूवा व[२] वाई । सबहिं[३] लाई घाट[४] बंधाई[५] ॥
देखँ जाइ जो तिनकर[६] भेमू । जानहुँ करहिं[७] धरम उपदेसू ॥
बोल उठैं[८] जब[९] नियरैं जाई । आगू[१०] देखि चलौ रे भाई ॥
हमलौं अस्थिरता मन आनहुँ । तजि अभिमान सेंह[११] तन सानहु ॥
माया द्वार देह[१२] जिन तारा । मारग[१३] छोड़ि[१४] धरउ[१५] भंडारा ॥
जो जाचक आवैं[१६] तिन्ह दीजै । हम जल ज्यों कछू अटक न कीजै ॥
ज्यों ज्यों कढ़ै वढ़ै त्यों[१७] पानी । धरम[१८] सोत उमड़ै[१९] अतिवानी[२०] ॥
अन कढ नीर गवायल[२१] होई । छिया[२२] छिया बोलहिं[२३] सब कोई ॥
छिन[२४] महँ विनसि[२५] जाइ जो काया । माटी माँज मिलै चल[२६] माया ॥

दोहा—इनि[२७] माया सब जग[२८] ठगा, ताहि[२९] टर्ग सो कोइ ।
पंथहि[३०] पाईये नीर ज्यों, जाकैं अटक[३१] न होइ ॥४१॥

दोहा ४१-१—पैंद पैंद (स०) । २—आपैं (स०) । ३—सहस (कां०) । ४—घटा (कां०) सभी की प्रति मे यह शब्द नही है । ५—वढाएं स०) । ६—तिहिकर (कां०) । ७—जानहं करहं (स०) । ८—उठहं (स०) । ९—नेरैं जब (कां०) । १०—आगी (स०) ११—गेह (स०) । १२—देहि (कां०) । १३—मार्ग (कां०) । १४—छोड़ (कां०) । १५—धोहु (कां०) । १६—आवैं (स०) । १७—लो (स०) । १८—धर्म (कां०) । १९—अमदह (स०) । २०—अतिवानी (कां०) । २१—गडाइल (कां०) । २२—चहाचहा (कां०) । २३—बोलैं (कां) । २४—मैं (कां०) । २५—वांस (स०) । २६—जल (कां०) । २७—इन (स) २८—जगथ का (स०) । २९—माइयकी पुनि सोइ (स०) । ३०—पंथ वायें कै नीर ज्यों (स०) । ३१—अतक (स०) ।

पनिहारी देखीं[1] मृग नैंनी । गज गामिनि औ कोकिल वैनी ॥
पहिरैं चीर सोभा[2] तन भांती । राइ मुनिहिं[3] की ज्यौं अस पांती ॥
लेजू पात कहुँ वा हाथैं । नैनन्ह पानी कलसा माथैं ॥ *
निपट लाज सौं आवहिं[4] जाहीं । पाइन[5] दिष्टि[6] मुरत[7] घट माहीं ॥
जो कोई सखी नैंक[8] दृग फेरैं । सूधी[9] दिष्टि बांक[10] कै हेरैं ॥
मिल सब सखी ताहि समुझावहिं[11] । जनु[12] परदेसिन[13] पंथ बतावहिं[14] ॥
बल चेतहु[15] घट महुँ[16] मन देहू[17] । बाँकी दिष्टि[18] सूध कर[19] लेहू[20] ॥
माथ बोझ बाट रपटीली । रपट परैं दुख होइ छबीली ॥
जो घट फोरि जाहिं[21] घर छूंछे । का पुनि कहै[22] कंत[23] कै पूछे ॥

दोहा—रपट फोरि घट खोइ जल, बिन पानी बिलखाहिं[24] ।
पुनि धौं कब आवा चढै, कब कुम्हार कहुँ[25] जाहिं ॥४२॥

दोहा ४२–१—देखा (स०) । २—सो भांतैं भांती (कां०) । ३—मोनैयन कैं (स०) । * यह चौ० 'कां०' में नहीं है । ४—आवें (कां०) । ५—पायन (स०) । ६—दृष्ट (स०) । ७—सूरत (कां) । ८—नीक (स०) । ९—सूधी (स०) । १०—बंग (स०) । ११—समुझावहं (स०) । १२—जन्ह (स०) । १३—प्रदेशी (कां०) । १४—बतावन्ह (स०) । १५—चेतो (कां०) । १६—मैं (कां०) । १७—देहो (कां०) । १८—दृष्ट (स०) । १९—कैं (कां०) । २०—लेहो (कां०) । २१—जाह (स०) । २२—कहहु (स०) । २३—कंत जब पूछै (स०) । २४—बिलखाहु (कां०) । २५—कैं जाहु (कां०) ।

फरी[1] अपूर अमी फरवारी[2] । फर[3] फर लटकिनई[4] तिहि[5] डारी ॥
तिन्ह[6] कै गति कछु बरनि[7] न जाई । सब फर[8] उपदेगे[9] गुजराई ॥
नारंग विनवै[10] पेमी सोई । फांक फाक जाकर हिय होई ॥
कहै दिखाइ[11] दरार अनारा । सो पेमी जा हिये[12] दरारा ॥
विनवै[13] सेव सेव[14] प्रभु सोई । जाकै[15] सेव[16] रात सुप होई ॥
नीबू[17] कहै[18] सुरस[19] घट माही । पै आपा कांटे विनु नाही ॥
केला कहै करो[20] विस्वासा । फिर फरवै[21] की धरो न आसा ॥
बैर कहै यह बैर न पावहु[22] । जिनि आपा काटै[23] उरभायहु[24] ॥
किसमस कहै अजाम अपैऊ[25] । जाके करम[26] पों[27] जीवन सेऊ[28] ॥

दोहा—गल[29] गल कहै जो[30] पिउ[31] बिरह[32], गल[33] गल गालै देह ।
सोई धन पिय[34] गल मिलै, रलै रलीने नेह ॥४३॥

दोहा ४३—१—फिरै (स०) । २—भरवारै (न०) । ३—फिर फिर (स०) । ४—लटकनयन (स०) । ५—तव डारै (स०) । ६—तिहि के (कां०) । ७—वर्ण (कां०) । ८—फिर (स०) । ९—उपदेगी (कां०) । १०—विनवह्ल (स०) । ११—दुखाइ (कां०) । १२—हियँ (स०) । १३—विनवह (स०) । १४—सेवहि (स०) । १५—जाकी (स०) । १६—सेवा (स०) । १७—निबू (कां०) । १८—कहो (सा०) । १९—सरस (कां०) । २०—ग्रिहै (कां०) २१—फिर ले कै धरी (स०) । २२—पावो (कां०) । २३—कार्टौ (स०) । २४—उरभावो (कां०) । २५—अवीयऊ (स०) । २६—कर्म (कां०) । २७—सों (स०) । २८—सेवऊ (स०) । २९—गुल गुल (स०) । ३०—जु (कां०) । ३१—पिव (कां०) । ३२—विरहै (कां०) । ३३—गुल गुल काली (स०) । ३४—पिउगुल (स०) ।

नगर निकट फूलीं फुलवारी । बन माली जिन सींच संवारी ॥
जनु[1] सब पुहप पेम अनुरागी । बैरागी[2] उपदेस[3] बिरागी[4] ॥
करना कहै अंत जो मरना । बिन हरि भजन बंध सब करना ॥
कहै सिंगार हार तन छारा । का सिंगार भर[5] आवसि हारा ॥
वेला कहै समुझि[6] हो[7] हेला । कहो[8] न अनवेले[9] इहि[10] वेला ॥
लाला कहै लाल तन सूना[11] । पेम दाग[12] उर[13] दाग बिहूना ॥
सोसन कहै अजहुं[14] घर लीये[15] । समुझि[16] सोसनी सोसन लहिए[17] ॥
कहै नेवारी सो[18] पिउ[19] प्यारी । जिन सेवा लगि नींद निवारी ॥
सोई बात सुदरसन कहै । सेवा सजग[20] सो दरसन लहै ॥

दोहा—चम्प चमेली केवड़ा, कहै[21] दूरि नहिं[22] पीउ[23] ।
ढूंढ़ि लेउ[24] हम बास ज्यों, घट घट सोई जीउ[25] ॥४८॥

दोहा ४४—१—जिन (स०) । २—बैराग (कां०) । ३—उपदेशहिं (कां०) । ४—बैरागी (कां०) । ५—पहिरावस (कां०) । ६—समझ (कां०) । ७—ही (स०) । ८—गहो (कां०) । ९—अलबेली (कां०) । १०—वह (स०) । ११—सोना (स०) । १२—दाह (म०) । १३—चोर (कां०) । १४—समझ (कां०) । १५—कई (कां०) । १६—श्याम चुरन सिर (कां०) । १७—भई (कां०) । १८—सू (कां०) । १९—पीव (कां०) । २०—सूजक सू (कां०) । २१—कहै कि (कां०) । २२—न (कां०) । २३—पीव (कां०) । २४—लेहि (कां०) । २५—पीव (कां०) ।

पुनि[1] वह[2] नगर दिस्टि महँ[3] आवा । सुवह वसा[4] औ नीक[5] सुहावा ॥
उंचे[6] ठौर जानु कैलासा । उँचें मदिर लागु[7] अकासा ॥
ईंट[8] गिलाव दिस्टि नहि आवा । सब पर उज्जल चून लगावा ॥
सेत[9] सेत दीसहि एक सारी । होइ जुन्हैया[10] निसि अंधियारी ॥
मानो[11] रूपे गिरे[12] पहारी[13] । कोर कोर सब छोल उतारी ॥
तिहि[14] ऊपर चौवार[15] अटारी । दिस्टि पसार न जाहि[16] निहारी ॥
नीक[17] झरोख वने[18] चहुं पासा । इंद्र धरे वैठन[19] की[20] आसा ॥
झलकै कनक कटाव संवारा । जनु अकास झलकै निसि तारा ॥
ते मंदिर[22] दीखें[23] इन[24] भेखा । जनु वैराग करै[25] उपदेसा ॥

दोहा—ऊंचे मदिर देखि[26] जनु जनि[27] जिउ[28] करहु[29] गुमान ।
छार होइ ढेरी करै, संऊ[30] थिर न[31] निदान ॥४५॥

भीतर जाइ नगर जो देखा । मानुस[1] सर्वहि विचित्र सो रेखा ॥
अवला[2] अति लोनी[3] उजियारी । मनो मैन साचै सव[4] ढारी ।
धरमी लोग[5] धरम[6] व्यवहारू । नाहि[7] अधरम[8] धरम अधिकारू ॥
घर घर प्रतिमा[9] सेवा पूजा । पूजा[10] प्रथम काज तव दूजा ।
सुचि सो सदा पवित्र रहाही । धरम क्रांति पाई मुख माहीं ॥
पुन्य दान वहुतै[11] पुन होई । घर घर सुखी दुखी घट कोई ॥
टोल टोल महँ[12] वनी[13] अथाइं* । चन्दन लपटी[14] रहहिं सदाई[15] ॥
पंडित वैठे[16] कथहि[17] पुरानूं । वरनहि आतम रूप[18] गियानू ॥
वैठइं[19] आइ पुरुष विज्ञानी । समझै[20] सुनै[21] उठै जस[22] वानी ॥

दोहा—हाथ सवन कै[23] सुमिरनी, सदा भजन सों काम ।
औ जो[24] मिलै[25] तासो[26] कहै, सुमिरो साधो[27] राम ॥४६॥

दोहा—४५—१—जो (स०) । २—जो (कां०) । ३—मैं (कां०) । ४—विसारो (स०) । ५—नैकु (कां०) । ६—ऊची (कां०) । ७—जान (स०) । ८—ईंट कलाई (स०) । ९—स्वेत स्वेत देपहि टंकसारी (कां०) । १०—चह्लाई (कां०) । ११—मांह (स०) । १२—कीरि (कां०) । १३—पहाड़ी (स०) । १४—तिह्न (स०) । १५—जो वार (स०) । १६—जाहं (स०) । १७—तिनहि (कां) । १८—रहे (कां०) । १९—वैंठे (कां०) । २०—कर (स०) । २१—निस छटकै (स०) । २२—मंद्र (कां०) । २३—देखन्ह (स०) । २४—इहि (कां०) । २५—करहं (स०) । २६—दिख (कां०) । २७—जिन (कां०) । २८—जीय (कां०) । २९—करो (कां०) । ३०—सो (कां०) । ३१—नाहि (कां०) ।

दोहा—४६—१—मानसवै (कां०) । २—अवमां (कां०) । ३—वोलै (कां०) । ४—जनु (कां०) । ५—लोक (का०) । ६—धर्म (कां०) । ७—नाहं (स०) । ८—अधर्म (कां०) । ९—प्रथमहि (स०) । १०—सेवा किये (स०) । ११—पुनि वहुतै (कां०) । १२—मैं (कां०) । १३—वने अठाही (सं०) । १४—लीयी (कां०) । १५—सदाई (कां०) । १६—वैठिय (स०) । १७—पढै (कां०) । १८—रूम गयानू (स०) । १९—वैठे (का०) । २०—समुझि (स०) । २१—सनेह (स०) । २२—जनु (कां०) । २३—कह (स०) । २४—जु (कां०) । २५—मिलै (का०) । २६—कासों (स०) । २७—साधूनाम (स०) । * अथाई=वैठक ।

नगर छोड़ि[1] बैठी[2] पुनि[3] वेसा । करि[4] करि रुचिर रिझावन भेपा ।।
सारी मुरग हरी रंग[5] आंगी । अति झीनी[6] जानहु[7] उर नांगी ।।
प्रगट[8] कंवल[9] कुच देहिं[10] दिखाई । निरखत[11] मन मधुकर ह्वै[12] जाई ।।
सुमन हार अरु[13] सौंधे[14] भीनी[15] । नाद[16] नृत्ति[17] गुन परम प्रवीनी ।।
आभूपन पुनि बने जड़ाऊ[18] । अंग अंग गति भाव[19] रिझाऊ ।।
माया रूप धरैं अति मीठीं । मोहन मंत्र[20] वसैं[21] तिन[22] दीठीं ।।
जो चित दे चितवैं[23] उन मांहीं । चितवत[24] चोर लेहिं[25] तिहि पाहीं ।।
तिन सो उरझि[26] घने गंठ[27] खोवा । औ[28] दे[29] सोस हाथ पुनि[30] रोवा ।।
मिले मोहि[31] माया अविकारी । हाथ झाड़ि[32] होइ[33] गए[34] भिखारी[35] ।।

दोहा—लटी वेस्वा[36] जनु यौं[37] कहहिं माया[38] बधी न कोइ ।
या बंधन[39] विध जगत तै, गयो[40] आव कहँ खोइ ।।४७।।

दोहा ४७—१—छोड़ि (स०) । २—बैठे (स०) । ३—वन (का०) । ४—कर कर (स०) । ५—उर (का०) । ६—छीनी (स०) । ७—जानो (स०) । ८—प्रघट (स०) । ९—कमल (का०) । १०—दीन्ह (स०) । ११—देखत (कां०) । १२—होइ (स०) । १३—औ (स०) । १४—सोंद (स०) । १५—हिय (स०) । १६—नांद (स०) । १७—निरत (स०) । १८—जराऊ (कां०) । १९—भया (स०) । २०—नेत्र (कां०) । २१—वसै (कां०) । २२—तन (कां०) । २३—देइ चतुर वह आंहा (स०) । २४—चित चितवत (स०) चितंवित (कां०) । २५—चोरहिं तिन्ह पाहा (स०) । २६—उरझ कीन्ह (कां०) । २७—वित (स०) २८—औ (कां०) । २९—देइ (स०) । ३०—बहु (स०) । ३१—मोघ (स०) ३२—झार (क०) । ३३—उठि (कां०) । ३४—चले (कां०) । ३५—बिखारी (कां०) ३६—तय वेसा मनु (स०) । ३७—इमि (स०) । ३८—माया बढ़ो (स०) । ३९ याही बीधै विधि जगत (स०) । ४०—कयो गये गंठ (स०) ।

आगे चलि देखी जो हाटा । दुहुँ[१] दिसि हाट बीच बड़ बाटा[२] ॥
तिहीं[३] बाट जग आवै जाईं[४] । हाटन हाट बिसाहु[५] बिकाई[६] ॥
एक बनौटा[७*] सेवा लागै । एक धर्मा पर चार सभागै ॥
जहाँ बनौटा[८] बेचैं[९] हाटा । धर्मा बैठ[१०] ऊपर कै[११] पाटा ॥
सौदा होइ सो[१२] सब लिख लेई[१३] । हाट उठै[१४] लेखा कै[१५] देई ॥
कोऊ[१६] बढ़ै लाभ फल पावै । कोऊ[१७] अभागे[१८] मूर गवाँवै ॥
जो आपहि[१९] थारे[२०] नरवारा । अपने सहज[२१] करहिं[२२] ब्योपारा[२३] ॥
तिन[२४] कहँ पूछनहार न कोई । धर्मी बनौटा आपहि[२५] सोई ॥
हाटन हेरि कहै जग[२६] बेदू । पावा ज्ञान करम[२७] गति[२८] भेदू ॥

दोहा—कर्महिं[२९] जानु बनौटा, धर्मा[३०] सु ज्ञाना मान ।
हाट[३१] जगत अरु[३२] काया, बाट सु[३३] आवन जान ॥४८॥

हाटन साज दिस्टि इमि आवैं । ज्यों[१] अविगता जगत बतावैं[२] ॥
प्रथम जो देखि[३] जौहरिन माहीं । जाति बिना एकौ नग नाहीं ॥
घर थैली जो[४] बैठि परखिया । रूपा[५] एक अनेक रुपैया ॥
तहाँ सुनारहटा[६] जो[७] देखा । कंचन एकौ[८] बिनेक[९] बिसेखा ॥
जर जर जरी[१०] आभरन[११] धरैं । एकहि[१२] कुंदन सब नग जरैं ॥
पुनि जो पसरहट जाय निहारी । हाट हाट महँ[१३] बैठ[१४] पंसारी ॥
पुनि खंडसार[१५] परो[१६] जो[१७] दीठी । एकै[१८] ऊख हाट सब मीठी ॥
आगे चलि[१९] बजाज जो हेरे[२०] । एक सूत निज बस्त्र घनेरे ॥
पुनि जो दिस्टि गंधी[२१] तिन[२२] होई । बिन सुवासना[२३] बस्तु[२४] न कोई ॥

दोहा—देखि दरीबा फुलहटी[२५], यहै[२६] ज्ञान जिउ[२७] होइ ।
प्रगटि[२८] दुरा रंग बास ज्यों[२९], घट घट एकै सोइ ॥४९॥

दोहा ४८–१—दोहुं (स०) । २—बाढा (कां०) । ३—तिर्नाह (स०) । ४—जावैं (स०) । ५—बिसाहि (कां०) । ६—बिकावैं (स०) । ७—बनौना (स०) । ८—बनौता (स०) । ९—बणजहि (का०) । १०—बैटि (स०) । ११—की बाटा (का०) । १२—सू बोह लिखि (कां०) । १३—लेऊ (स०) । १४—उठी (कां०) । १५—कहि (स०) । १६—कोई रहै (का०) । १७—कोई (कां०) । १८—अभागी (कां०) । १९—आपन (स०) । २०—धोरे (स०) । २१—सहिज (कां०) । २२—करै (कां०) । २३—ब्योहारा (कां०) । २४—तिहिं कहिं (कां०) । २५—आपहि (कां०) । २६—जस बैदू (का०) । २७—कर्म (कां०) । २८—कट (का०) । २९—करमठ (स०) । ३०—धरै सा (स०) । ३१—हाथ (स०) । ३२—उर (स०) । ३३—सू (कां०) । * बनौटा = वणिक्पुत्र

दोहा ४९–१—जनो हूँ एकता (कां०) । २—बनावै (का०) ३—देख (कां०) । ४—जु बैठ परखिया (कां०) । ५—रूप (कां०) । ६—सुनारपता (स०) । ७—तिन (स०) । ८—एक (कां०) । ९—गति (कां०) । १० जरियन (स०) । ११—अभरन (स०) । १२—एकह (स०) । १३—मैं (कां०) । १४—बैठ (कां०) । १५—खड़साढ (स०) । १६—पुरि (कां०) । १७—जो (स० की प्रति मे नही है) । १८—एकहिं (कां०) । १९—चल (स०) । २०—हेरी (स०) । २१—गाढ़ (स०) । २२—तन (कां०) । २३—सो बासना (स०) । २४—बसत (स०) । २५—फूलती (स०) । २६—इही (कां०) । २७—जीय (का०) । २८—प्रघटि (स०) । २९—जु (कां०) ।

मानिक[1] चौक जाइ[2] जो देखा । चहूँ ओर कौतुक बहु[3] पेखा ।।
कतहूँ होइ[4] वेद[5] उच्चारा । कतहुँ पँवरिया पढै[6] पवाँरा[7] ।।
कतहूँ नाद नृत्त गुन होई । कतहूँ स्वाँग बनावा[8] कोई ।।
कतहूँ बैद बनावै[9] पुड़ी[10] । कतहूँ जड़िया[11] बेचहिं[12] जड़ी[13] ।।
कतहूँ जुरे[13] गारुरू मंत्री । कतहूँ जंत्र[14] बजावहिं जंत्री ।।
कतहूँ साँप लियै सँपहेरा[15] । कतहूँ चित्र[16] लिय बैठ चितेरा ।।
कतहूँ गनकहिं[17] पत्र निकारी । कतहूँ असवैया[18] असवै डारी[19]* ।।
कतहूँ ठगनि ठगावै कोई । कतहुँ गजरहट[20] पाखँड होई ।
कतहूँ चेटक मन हर लीन्हा । कतहूँ नट[21] नाटक गुन[22] कीन्हां ।।

दोहा—ते कौतुक जन[23] इमि कहै, मन[24] तिन रंग न राँच ।
हमलौं अवही अस्त[25] रवि, उठा देखि यह[26] नाँच ।।५०।।

दोहा ५०–१—माणक (कां०) । २—जाय (स०) । ३—इहि (कां) । ४—होवे (स०) । ५—वेदा चारा (स०) । ६—पढहं (स०) । ७—पुंवारा (कां०) । ८—वनआवा (स०) । ९—वनाग्रहं (स०) । १०—वरी (कां०) । ११—जरैया (कां०) । १२ वेंचें (कां०) । १३—ज़ुड़े कार रद (स०) । १४—चित्र वनावैं चित्री (कां०) १५—सांपेरा (स०) । १६—चित्री बैठ (कां०) । १७—कंकन पुतरी (स०) । १८—असिया असवय (स०) । १९—दारी (स०) । २०—कचरहट (स०) । २१—नित (स०) । २२—गन (स०) । २३—जिमि (कां०) । २४—कि तन मन अंग न राच (कां०) । २५—अवही अदरव (कां०) । २६—इह नाच (कां०) ।

* असवैया=आसेब करने वाला, भूत प्रेत हरने वाला, आसेबिया, जिसे मखदूम भी कहते हैं । असिया=आसेब, भूत बाधा । कहीं हदस करने वाला आसेबिया भूतबाधा उतार रहा था ।

भीतर नगर राजगढ़ गाढा[१] । जनु पहाड़ चहुं दिस गढ़ि[२] काढा ॥
नेऊं[३] पर आदि नाग सों पूरा । लै[४] अकास पर धरे कंगूरा ॥
सहँसर[५] मन की[६] सिला लगाई । धौं[७] गढ़यरि[८] किंहि काढ चढ़ाई ॥
तरहर खाँव[९] खोह अस कीन्हा । धौं कथैक[१०] वर्प लवि न चीन्हा ॥
सप्त पतार सोत खनि[११] काढा । निकसि नीर ऊपर लौं वाढा ।
चहुं दिसि चारीं पंवरि दुआरा । तिन्हहिं लागि पुनि लोह किवारा ॥
कुंड सजलहि[१२] भरे गढ माही । उमड़ि[१३] नीर[१४] तहँ[१५] नदी वहाही ॥
अलग लगाव कहूँ[१६] कछु नाही । ज्यो आतम काया गढ माही ॥
जो[१७] तिन्ह लगे[१९] वज्र कर गोला । जनौं[२०] वज्र पर लाग गिलोला[२१] ॥

दोहा—जनु[२२] गढ़ कहै कि समझ[२३] नर, तू गढ़पति गढ़ नाहिं[२४] ।
ज्यों मोसों गढपति अलग[२५], जद्यपि[२६] मोही[२७] माही ॥५१॥

दोहा ५१-१—काढा (स०) । २—घड (कां०) । ३—पवन पुरा नाग सों पूरा (कां०) । ४—लेइ (स०) । ५—सहसं (स०) । ६—कै (स०) । ७—वहं (स०) । ८—गढ परि खंड गाढ (स०) । ९—......नोह खोह अस घना (स०) । १०—वहं केतक वरखन खन वना (स०) । ११—खिन (कां०) । १२—सजीवन (स०) । १३—अमद (स०) । १४—न (कां०) । १४—तिहि (कां) १६—कहौ (स०) । १७—ज्यो (स०) । १८—र्तिहि (कां०) । १९—गलै (का०) । २०—जिन (स०) । २१—कलोला (स०) । २२— जन (स०) । २३—समुझि (स०) । २४—माहिं (स०) । २५—सदा (स०) । २६—जानत (कां०) । २७—मोहिये (स०) ।

बड़ी[1] पंवरि पर ऊँच दुआरा[2]। तिहि[3] ऊपर वाजै घरियारा[4]।
चेतन पुरुष वैठ[5] घरियारी। घरी घरी तिन[6] साध[7] उतारी॥
पल छिन[8] अंतर होन न पावै। जबहिं[9] भरै तबहिं ढरकावै॥
ढार मार फिर लेकै धरै। एकहि घरी माझ पुनि भरै॥*
जब मारै घरियार[10] पुकारै। समझहि[11] घरी फिरत[12] खिन मारै॥
तौ लौ कुसल[13] जौ घरी न पूजी। जब पूजी तव वात न दूजी॥
आवै भरी[14] घरी ज्यों आऊ। मीत[15] चेत चेतो रे वटाऊ॥
जिन जानों[16] कि घरी यह टरी। यह[17] जानहु अवलौ नहिं भरी॥
का भा[18] घरी एक[19] जो टरी। पै[20] निदान डूवै जव[21] भरी[22]॥
जब वह समै आइ नियरावै। सुमिरन विन कछु काम न आवै॥*

दोहा—जग भौ[23] जल काया घरी[24], औघ[25] घरी[26] सो आव।
पूजत आवै छिनहि छिन, चेत[27] न जन्म गवाँव ॥५२॥

दोहा ५२–१—वड़े पौर (कां०)। २—दवारा (कां०)। ३—तिन्ह (स०)। ४—घरबारा (स०)। ५—वैठ घरबारी (स०)। ६—जन (स०)। ७—साधु (स०)। ८—तिल (कां०)। ९—जवै (कां०)। *यह चौपाई स० प्रति में नहीं है। १०—घरवार (स०)। ११—समुझौ (स०)। १२—भरत (स०)। १३—कुसर (स०)। १४—भरत (कां०)। १५—नोच जीत चितवु उर वताऊ (स०)। १६—जानइ कि घरे यह (स०)। १७—तेही छिन डूवै जव भरी (कां०)। १८—भय (स०)। १९—भरी (कां०)। २०—पुनि (कां०)। २१—कौं (कां०)। २२—धरी (कां०)। * कां० प्रति में यह चौपाई नहीं है। २३—वहु (स०)। २४—घड़ी (स०)। २५—अवोध (स०)। २६—घड़ी (स०)। २७—अजहूं चेतन न गंवाव (स०)।

राज दुवार[1] जाइ[2] जो देखा। वड़े भूप नाहिन[3] कछु लेखा॥
बंधे[4] गयंद मेरु हुत[5] भारे[6]। वरन[7] स्याम काजर हुत कारे॥
काया बड़ी[8] सवल बलवंता। कोउ न मत्त[9] कोऊ मदमंता॥
चारों ओर द्रिस्टि इमि आई। जानौ कारे[10] मेघ[11] उनाई॥
जो बल करहिं[12] मेरु मल डारहिं[13]। गढ़ पेलहिं[14] सैं[15] नीवं उपारहिं॥
गहि[15] तरुवरु[16] सैं[17] मूर उखारैं[18]। चूरहिं[19] डार झारि[20] मुख डारैं[21]॥
इक सादुर[22] सूधे इक[23] खोटे। माते रस[24] सी होंहि न[25] मोटे॥
जो[26] पुनि माते करहिं[27] हठाई[28]। आध कोस लौं मनुष[29] न जाई॥
आंकुस कै[30] कुछ आन[31] न मानहिं। चरखी वेल[32] फूल कर जानहिं[33]॥

दोहा—गाजहिं[34] खड़े[35] गुमान सों, भरै खेह[36] लै देह।
मनु[37] इमि कहै गुमान का, जो निदान तन खेह[38] ॥५३॥

दोहा—५३-१—द्वार (कां०)। २—जाय (स०)। ३—नाहि (स०)। ४—बढे (स०) ५—हत (स०)। ६—भारी (कां०)। ७—व्रर्ण (कां०) ८—वली (स०)। ९—मंत्त (स०)। १०—कारी (स०)। ११—घटा (स०)। १२—करै (कां०)। १३—डारहं (स०)। १४—पीलन्ह (स०)। १५-१—सैनन उवारहि (कां०)। १५—कहि (स०)। १६—तरवर (कां०)। १७—सूं (कां०)। १८—उचारहं (स०)। १९—चूरन्ह (स०)। २०—छार (कां०)। २१—डारहं (स०)। २२—सायर (स०)। २३—एक (स०)। २४—रसहं (स०)। २५—नहिं (स०)। २६—सो (स०)। २७—करैहि (कां०)। २८—हत्याई (स०)। २९—सन्मुख को जाई (स०)। ३०—की (का०)। ३१—मनैहि न आंनहि (स०)। ३२—फूल वेल छूटैं तव (कां०)। ३३—हानहं (स०)। ३४—गाजहं (स०)। ३५—खरे (कां०)। ३६—फिरन कहियलैं देह (स०)। ३७—जनु (कां०)। ३८—खेहि (कां०)।

तुरी[१] जो समुंद तिरहिं[२] इक हेला । सहपक[३] बांवे चरहिं[४] तवेला ।।
देस देस के नाना रंगा । रूपवंत पूरन सब अंगा ।।
और तहाँ[५] पर और[२] बलाने[६] । चढ़ै सुजन[७] जानहिं पहिचाने ।।
जानहु अधर रहै भुइं[८] पाऊँ । जब चंचल हो होहि चलाऊँ ।।
सांस लेत जानो[१०] उड़ि[११] जाही[१२] । चाबुक[१३] अस्थिर कहां रहाहीं ।।
बिनहिं[१४] दिखावै कौतुक आछै । छाड़ै चलै पौन देइ पाछै ।।
जहाँ चढ़ैया[१५] मन दौरावा । पहिलै[१६] तहाँ पाव पहुँचावा ।।
जो चंचल पुनि चाल चलाई । जनु जल महँ[१७] कोसा दुरि[१८] आई ।।
नैक[१९] निडोल[२०] डोल[२१] तिन्ह[२२] डोलै । मनहुं[२३] चले[२४] चढ़ि[२५] उड़न[२६] खटोलै ।।

दोहा—चपल तुरै[२७] जनु इमि[२८] कहै, मनको[२९] चपल चलान ।
भला नाहि[३०] इनहीं[३१] गुनै[३२], हम पर परा पलान ।।५४।।

दोहा ५४-१—टरैं जो (स०) । २—टरैं एक (स०) । ३—सहंसन्हि बाधी (कां०) । ४—चरहं (स०) । ५—तिहा (कां०) । ६—ग्रोर पलाने (कां०) । ७—सो निज न जाहं पहिचानैं (स०) । ८—भय (स०) । ९—होइ (कां०) । १०—चाहै (स०) । ११—उड़ (स०) । १२—जाई (स०) । १३—छीरे (स०) । १४—कहै देखावह (स०) । १५—ध्यान जो मन (स०) । १६—पहिलहं (स०) । १७—मैं (कां०) । १८—दुर (स०) । १९—नीक (स०) । २०—नडोल (का०) । २१—होइ (कां०) । २२—निहि (कां०) । २३—जनों (कां०) । २४—चलहि (कां०) । २५—चढ (का०) । २६—उडिन (कां०) । २७—तुरी (कां०) । २८—इम (कां०) । २९—कि मनको (कां०) । ३०—नांह (स०) । ३१—एहीं (कां०) । ३२—कहै (कां०) ।

नीके[1] नीति[2] बैठ जो राई। जुरी कचहरी[3] सिस्टि[4] उनाई ।।
जग कर लेख जोख[5] तंह[6] होई। रहै संजूती[7] निवहैं सोई ।।
राज[8] ग्रंस जिमि जिउ[9] कर राखा। तिन्ह[10] कौं[11] मंद न काहू[12] भाखा ।।
भा[13] निरवार[14] बंदि[15] नहि परा। खेम कुमर[17] गा[18] अपने घरा ।।
निज मूरख कछु[19] लंपट कीन्हां। बिफर[20] गर्व करि ग्रापु न चीन्हा ।।
राज त्रास जिन[21] दीन[22] विसारी। भयो भूल मन आज्ञाकारी ।।
सो पछताइ रहा सिर नाई। सत्र[23] सठ[24] आपन[25] काढ़ी[26] बंधाई ।।
बांधा[27] बदि गिरह महँ डारा। मेला गरै[28] लोह घरियारा[29] ।।
दिन[30] दिन दड होइ नहि छूटा। गुनैह कीन नीक कै कूटा ।।
दोहा—देख कचहरी को चलन, इह सिच्छा जिय होइ।
जो मन बांधै आपना, ताहि न बांधै कोइ ।।५५।।

देखी राज सभा उजियारी। इंद्र सभा जनु इंद्र संवारी ।।
रहे बसाय अगर कस्तूरी। कै सुवास इंद्रासन पूरी ।।
नीचै पाट पटंबर डारा। बैठे तहां जुहारि जुहारा ।।
ऊंचे राज पाट रजि[1] साजा। तहँ पर बैठ पुहुमपति[2] राजा ।।
औ पुनि निकटवरत जु कहावै। मन वच क्रम सेवा मन[3] लावै ।।
भीतर जाइ जुहारहिं सोई[4]। बाहर खड़े और जे[5] कोई ।।
सेवा सन्मुख सोइ[6] पियारा। वंकहं[7] तहाँ नाहिं[8] पैसारा ।।
तिन्ह कर विनती विनवै करिहै[9]। ग्रायसु होइ सो उत्तर देहै ।।
जो कुछ होइ सो ग्रायसु होई। बिन ग्रायसु कर सकै न कोई ।।
दोहा—राज सभा गति देखि कै, यहै ज्ञान जिउ होइ।
जो सेवग[10] सेवा सजग, सदा हजूरी[11] सोइ ।।५६।।

दोहा—५५—१—नेगी (कां०)। २—नीव (स०)। ३—कचैहरी (कां०)। ४—सृष्टि (कां०)। ५—जेख (कां०)। ६—तिहि (कां०)। ७—सचौंते (म०)। ८—राजा (स०)। ९—जी (कां०)। १०—तिहि (कां०)। ११—कहि (का०)। १२—किनहूं (स०)। १३—भय (स०)। १४—निरवाखा (का०)। १५—वंद (कां०)। १६—निहि (का०)। १७—कुगर (कां०)। १८—गय (स०)। १९—लंपट मन कीना (का०)। २०—हिय भर गरव का आपौ न चीन्हां (स०)। २१—जिय (स०)। २२—देह (स०)। २३—सुनि (कां०)। २४—साथ (स०)। २५—आपनु (स०)। २६—गूदी (का०)। २७—वाध वाध गर्व मे डारा (कां०)। २८—करहि लोहि (कां०)। २९—करवारा (स०)। ३०—दंडन दंड (म०)। ३१—कहे (स०)।

दोहा—५६—१—रज साजा (स०)। २—भीमपत (म०)। ३—जिउ (स०)। ४—होई (कां०)। ५—जन (कां०)। ६—वही (कां०)। ७—अटकहि (कां०)। ८—कहाँ (स०)। ९—नीव कराही (स०)। १०—ते पावह जे तय करहं (स०)। ११—राख भागे जिउ सोइ (स०)।

वने राज मन्दिर अति लोने । चित्र कटाव कीन्ह सब सोने ।।
लागे कंचन खंभ जराऊ । कहि न जाइ छातहि कर भाऊ ।।
कतहूं रतननि सुरुज संवारा । कतहूं वने चांद औ तारा ।।
तहां रैन जो दिया न होई । परगट दिवस कहै सब कोई ।।
इक मन्दिर साज दरपना । दरपन चाहि चमक चौगुना ।।
कोऊ खन कोऊ चौखना । कोऊ सतखन बहु[1] विधि बना ।।
नदी घाट[2] लै सब महँ आनी । छातहं उतर गिरै[3] भुंइ[4] पानी ।।
जो देखी तिन्ह कर अंगनाई । भरी हौद फूनी फुलवाई ।।
छिटके[5] सुमन सुरंग सुवासा । जानों विद्यमान कैलासा ।।

दोहा—ते मंदिर जनु इमि कहैं, ये[6] कैलास निवास ।
ते पावैं[7] जे तप करैं, खट ऋतु[8] बारह मास ।।५७।।

मंदिर राजमती पटरानी । रूपवंत औ मति परधानी ।।
सेज सिंगार राज गृह[1] सोई । सौत न और साल जिहिं होई ।।
कहि न जाइ तिहि[2] रूप निकाई । चंदहू ते मुख जोति सवाई ।।
छवि दधि[3] वदन कवंल चख फूले । पुतरी भंवर उड़न[3] गति भूले ।।
देख सरूप अपछरा जरहीं[4] । नर नारी सरवर कत करहीं[5] ।।
अति सुकुमार[6] हार उर भारू । पुहुपवास कै[7] पान अहारू ।।
सज्या[8] सुमन केर[9] जो परी । चह[10] चह उठी[11] अंग मह[12] अरी[13] ।।
कहलौं कहौं सुमति जस धरै । वेद गरंथ अरथ सब[14] करै ।।
औ पतिवरता पिउ महं[15] जीऊ । ताहू जीऊ[16] देइ पुनि पीऊ ।।

दोहा—देखि सुगतिता नारि की, इहि[17] मति[18] पावै जीउ ।
पतिव्रत[19] उर धारै जो बनि, तेहि उर धारै पीउ ।।५८।।

दोहा—५७—१—इहि (कां०) । २—काटि (कां०) । ३—करै (स०) ४—भम (स०) । ५—जिहि के (का०) । ६—कै (कां०) । ७—पावत जे ।त॰ करन्ह (स०) । ८—राख भूजिय आस (कां०) ।

दोहा—५८—१—घर (का०) । २—तिन्ह (म०) । ३—उडगन (कां०) ४—झुराही (कां०) । ५—कराहीं (कां०) । ६—सुकुवार (स०) । ७—(कां०) । ८—सेजा (स०) । ९—करी (कां०) । १०—चुभ चुभ (कां०) । ११ उठै (कां०) । १२—मै (कां०) । १३—अरै (कां०) । १४—बहु (स०) । १५ मै (कां०) । १६—ता तन कै जिउ को पिउ जीऊ (स०) । १७—यह (स०) । १८ हित (स०) । १९—पतिव्रता उरधार बन (कां०) ।

राजा रानी के रंग राता । कवंल[१] वास मधुकर जनु माता ।।
गाढी प्रीत प्रतीत पियारू । दिन दिन होइ नेह अधिकारू ।।
सारस कै[२] जोरी[३] ज्यों[४] दोऊ । सहि[५] न सकै छिन[६] एक विछोऊ ।।
ज्यों चकवी चकवा दिन माही । त्योई[७] रैन रहैं इक ठांही[८] ।।
सदा समीप रहैं सुख मानै[९] । जनम विछोह न कवहूँ[१०] जानै ।।
काम समुद्र मथैं मिलि दोऊ । पै[११] तिहि[१२] रतन न निकसै कोऊ ।।
वरस बीत औ बीतत[१३] जाही । राजा कै संतति[१४] कछु नाहीं ।।।
वारी बालक कछू न होई । रानी[१५] वांझ कहै सब कोई ।।
कुटुंब लोग सब मिल चरचाही[१६] । का सुख भोग पुत्र जो[१७] नाहीं ।।

दोहा—रैन जगत व्यौहार मैं[१८], कारज सरै न कोइ ।
जौं[१९] लों गृह गृहस्थ कैं, दीपक पुत्र न होइ ।।५९।।

भये सब हितू राज[१] कह लागू । सो[२] कछु करौ चलै जिहि[३] आगू ।।
करो उपाव पुत्र जिहि होई । रानी और विवाहो कोई ।।*
जनम सुफल पुत्र[४] जिहि होई । पुत्र विहून होइ न कोई ।।
ईहि जग स्थिर[५] रहै न नाऊँ । औ[६] वह जग नाहिन[७] पुनि ठाऊँ ।।
वही गृहस्थ पुत्र जिहि होई । पानि न देइ पुत्र विनु कोई ।।*
दरव औ पुत्र जगत जीवन पत । सत्त धरम सों होत मुकुत कत ।।†
आनंद कंद पुत्र घर माही । बालक विन कतहूँ सुख नाहीं ।।‡
सरवन पुत्र हुता तौ काधे । कांवर लियैं फिरा सत वांधे ।।
कीन्हेसि मात पिता कर[८] सेवा । को अस पुत्र विना सुख देवा ।।
भागीरथ गंगा लै आवा[९] । किन किन काज पुत्र नहिं[१०] आवा ।।
पुत्रहि[११] सौ पूजहिं सब स्वारथ । पुत्र न होई तो जनम अकारथ ।।

दोहा—गृह[१२] गृहस्थ कैं पुत्र सम, निधि[१३] दूसर नहिं कोइ ।
पुत्र विना पत इत न उत, अपत दोऊ[१४] जग होइ ।।६०।।

दोहा—५९—१—कमल (कां०) । २—की (कां०) । ३—जोरे (स०) । ४—जनु (कां०) । ५—सह (स०) । ६—पल (स०) । ७—त्यौते (कां०) । ८—एक थाही (स०) । ९—माहा (स०) । १०—कवबू (स०) । ११--पय (स०) । १२—तिहि (स०) । १३—वीतजु (कां०) । १४—संपति (कां०) । १५—रानीहं (स०) । १६—चरच कराहीं (स०) । १७—ज्यो (स०) । १८—महं (स०) । १९—ज्योलों (स०) ॥

दोहा—६०—१—राजहिंहि (कां०) । २—जो (स०) । ३—जिन्ह (स०) । ४—विन पुतर न होई (स०) । ५—अस्थिर (स०) । ६—ओहूं (कां०) । ७—नाहीं (कां०) । ८—की (कां०) । ९—धावा (कां०) । १०—किह कै पुत्र काज नहि आवा (कां०) । ११—सुत सत सै (स०) । १२—निधि गृहस्थ गृह पुत्र सम (कां०) । १३—दूसर और न कोइ) कां०) । १४—दूहूं (कां०) ।

*ये चौपाइयाँ केवल 'कां०' प्रति में है । † ये चौपाइयाँ 'कां०' प्रति में नहीं है ।

राजा करि विचार मन बोला । वचन सतोल[1] अडोल[2] अमोला ।।
करनहार करतार[3] जो कोई । जो कछु होइ सो तासों होई ।।
मोरे यही टेक मन आई । करे सो करता आपु न[4] भाई[5] ।।
कीन[6] न चहै तो खाक न कबहीं । दीन चहै तो देवै[7] अबही ।।
नाहित सत विचरै गति नाहीं । सत मत[8] गत तानौं (है) जाहीं ।।
यह[9] जो कहों मूढ़ मति नाहीं । लिखो पुरान गरंथै मांही ।।
जो कोउ जीन[10] आस जिय धरै । प्रभुही[11] सौंप उपाव न करै ।।
कै परतीत अस्थिर[12] मन राखै । पूरन[13] होइ वेद अस[14] भाखै ।।
औ यह[15] टेक तबही[16] थिर रहै । विघना काज कीन्ह जब[17] चहै ।।

दोहा—नातरु कठिन[18] प्रतीत यह[19], कर न सकै सब कोइ ।
जा पर क्रिपा दयाल की[20], ताही सों पै[21] होइ ।।६१।।

राजा टेक आनि[1] मन माही । काहू केर[2] कह्या[3] न अनाहीं[4] ।।
बोल सो बोल और[5] पहुँचावा । मन अडोल कै[6] फिर न डुलावा ।।
जदपि हितू लोग कह हारे । टेक अंक[7] लिख हृदै न टारै ।।
करम[8] अंक जो लिखै लिलाटां । वेइ[9] उतार धरै हिय पाटां ।।
औ पुनि करम लिखा निज[10] सोई । जस कीन्हेसि बिनु[11] लिखा न होई[12] ।।
वचन बूट[13] उर ठौर लगावा । तिहि प्रतीत पानी पहुँचावा ।।
मनसा मूर अचल ठहिराई[13] । पर्ण[14] कर पेड़ बंधा अविकाई ।।
सत साखा फैली[15] चहुँ ओरा । हरि है[16] ध्यान हरे भये डोरा ।।
भा अब[17] तरुन फूर फर आवा । कस न फरै सत विरछ लगावा ।।

दोहा—माली सत वर विरछ जड़, सींच सो[18] बहु फर लेइ ।
जो सेवै सत संग [19] तरु, कस न सो फिर फर देइ ।।६२।।

दोहा—६१—१—अस्थूल (स०) । २—अदोल (स०) । ३—कर्त्ता (कां०) । ४—अपुन (स०) । ५—विहाई (प०) । ६—कीन्ह चहै तो पांगन कीन्है (कां) । ७—दीन्ह अभीन्हे (कां०) । ८—शत्रु मित्र दोऊ पर चांही (कां०) । ९—औ पुनि इहू (कां०) । १०—आस जिय महि (का०) । ११—प्रभु पर रापि (कां०) । १२—स्थिर (कां०) । १३—पूजै आस (का०) । १४—इम (कां०) । १५—इहि (का०) । १६—बैठा (कां०) । १७—जो (कां०) । १८—कथन (स०) । १९—इहि (कां०) । २०—कह (स०) । २१—पर (का०) ।

दोहा—६२—१—कीन्ह (का०) । २—कीर (कां०) । ३—कहा (स०) । ४—नाहीं (कां०) । ५—और (स०) । ६—कियो (स०) । ७—एक (कां०) । ८—मानों कर्म अंक जु (कां०) । ९—आइ (कां०) । १०—पुनि (स०) । ११—पुनि (कां०) । १२—कोई (कां०) । १२—पू उठ उ अरथावर (कां) । १३—थिर आई (स०) । १४—अन कर पेंड बंधा नद काई (स०), पर्णकर वेद बंधा निध गाई या वर्ण कीर विध बंधा न काई (कां०) । १५—पकेरे (कां०) । १६—कै (कां०) । १७—वतरुन वौर पर (स०) । १८—सर्व फल (कां०) । १९—सजक नर (कां०) ।

एक घोस सुघरी जब आई। काहू नेगी[1] बात चलाई॥
कहा कोस चार इक ठाऊँ। बन मे जहां न मानुख नाऊँ॥
नदी तीर इक मढी बनाई। दमन रिखीसर तहाँ बसाई[2]॥
आसा नाऊँ नदी के तीरा[3]। बउर[4] भाइ बैठ्या तिहिं[5] नीरा[6]॥
ध्यान बिना तिन काज न कोई[7]। जीनेसि पाँचौं हारेसि दोई॥
ध्यानहि ध्यान देह सुधि खोई। आप हिराइ रह्या होइ सोई॥
मौनी रहै सदा घट बोलै। जो बोलै तो ग्यान निधि खोलै॥
जासहुं दया दिस्टि कर हेरै। जनम जनम के दोख[8] निवेरै॥
दरसन किए[9] पाप सब[10] जाही। पग[11] परसैं संताप बिलाही॥

दोहा—प्रगटे पाप करा करम[12], पाप करे पुनि[13] जांहि।
पाप करैं इन[14] पुरुप ते, प्रगट न होंहि बिलांहि॥६३॥

राजहि सुनि यह बात सुहाई। कहा[1] चली दरसन[2] कहं[3] जाई॥
ऐसो सिद्ध पुरुख जो सुनीजै[4]। उनहिं[5] समैं चल दरसन कीजै॥
तिनही[6] काल मन माहँ[7] जो[8] आई। चला छतरपति कीन्ह चढाई॥
चल तिहिं नदी नियर[9] जब आवा। राजा छत्र चवंर[10] बरजावा॥
कतक लोगऊ हट बैठारा। वाहन छाड़ि पाइ मग धारा॥⊙
दोउ सेवक लीन्हेसि संग लाई। सनमुख[11] मढी ठाढ़ भा[12] जाई॥
सिद्ध पुरुप तिहँ बैठ अकेला। आपहि गुरू आपहि चेला॥*
तारै लाइ रहा मन[13] माही। सुरत न कोऊ और[14] धुन नाही॥
जब ठाढे बीती दड़ि वारा। आंखि खोल तब सहज निहारा॥†

दोहा—हेरत छिन[15] राजा लपकि[16], पाइ[17] गहे सिर नाइ॥
सिद्ध पुरुप पुनि कृपा करि[18], माया लीन[19] उठाइ॥६४॥

दोहा ६३–१ नीकी (स०)। २—रहाई (कां०)। ३—नीरा (स०)। ४—पूर (कां०)। ५—होइ (का०)। ६—तीरा (स०)। ७—होई (कां०)। ८—दुष (कां०)। ९—देख (कां०)। १०—मिच (स०)। ११—पापहिं के पर पाप हिराहिं (कां०)। १२—'स०' प्रति में इस स्थान पर कोई पाठ नही। १३—बिन (कां०)। १४—अर न प्रगटैं (कां०)।

दोहा ६४–१—कह्या कि (कां०)। २—दर्श (कां०)। ३—कहि (कां०)। ४—सेजैं (स०)। ५—अवश्य तिनो (कां०)। ६—तिहिं (कां०)। ७—मैं (कां०)। ८—कछु (का०)। ९—तीर (स०)। १०—छोर परधावा (कां०)। ११—चल सन्मुख (स०)। १२—भयाई (स०)। १३—तन (का०)। १४—आवै जाहीं (कां०)। ५१—खिन (का०)। १६—लुपक (का०)। १७—पाव (स०)। १८—कैं (स०)। १९—लियें (स०)। ○—यह चौपाई कां०' मे नही है। * यह चौपाई 'स' में नहीं है। †—यह चौपाई 'स०' में नही है।

राजा कै अधीनता[1] देखे । कीन्हेसि मया[2] विसेख विसेखै ॥
कै आदर बैठक ढिग दीनीं[3] । औं मनुहार बहुत विधि कीनी[4] ॥
राजा रिखि[5] दयाल जब जानाँ । बोला विनय[6] वचन मुख आना ॥
नाथ कौन गति होइ हमारी । साईं सों नहि नैकु[7] चिन्हारी[8] ॥
धौं[9] वह कौन पुरुष करतारु । जिन जिउ दीन कीन संसारु ॥
का तिहँ रूप कहाँ तिहँ वासा । हम सों[10] दूर कि हम ही[10] पासा ॥
औ पुनि कछु अपनी सुधि नाहीं । धौं[11] हम कित आये कित जाहीं ॥
आदि[12] कहँ हुते[13] कहँ अब भये । जीरन[14] हुते कि उपजे नये ॥
कछु न समुझि परै निज बाना[15] । झूठी माया सों मन राता ॥
दोहा—हम से मूवा[16] मरजिया, कित जन्मै[17] जग माहिं ।
माया ही के मद मगन, नाच नाच[18] मर जाहिं ॥६५॥

सिद्ध कहा राजा सुन[1] मोसों । निज यह मरम कहौं हौं तोसों ॥
जो मुनि समुझि बात उर धारेसि । अगम वस्तु[2] कहँ[3] सुगम निहारेसि ॥
साईं एक[4] वहै सब ठाऊं । सुन ताके तोहि चिन्ह सुनाऊं ॥
स्थिर निर्गुण अतन[5] अभेषा । चरम दिस्टि सों जाइ न देखा ॥
मुक्त[6] न बद्ध सहज परकासा । ज्यों देखसि[7] सब ठांव अकासा ॥
घट औघट अंतर कछु[8] नाहीं । सिमट[9] समाइ रहा सब माहीं ॥
सोई सब खेलन कर खेला । और न संगी आप अकेला ॥
ये वहु खेल जो देहि दिखाई । चेतन सब महँ[10] रहा समाई ॥
ता[11] बिन करनी[12] कछू न होई । गुन औगुन तिन्ह[13] लगै न कोई ॥
दोहा—ऐसे[14] सब रंगन सुना, पै[15] वह अपने रंग ।
जो निज वाको निरंग रंग, तासों भयो न भंग ॥६६॥

दोहा ६५–१—अवस्था (कां०) । २—माया (कां०) । ३—दीही (स०) । ४—कीहीं (स०) । ५—निरख (का०) । ६—विनू (कां०) । ७—निवुक (स०) । ८—जुहारी (कां०) । ९—धुन मोहि (स०) । १०—सो (स०) । ११—धुन (स०) । १२—ग्रो (कां०) । १३—कहाहि क (स०) । १४—जियरन होतक (स०) । १५—आता (स०) । १६—मोसे मरै कै (म०) । १७—आए (म०) । १८—कोऊ (स०) ।

दोहा ६६—१—कह (स०) । २—लेत (कां०) । ३—गम (स०) । ४—वहै एक (म०) । ५—अपन (कां), अविन (स०) । ६—निकट न मध्य (कां०) । ७—दीप सो इहि सुन्न अकासा (कां०) । ८—पुनि (स०) । ९—चेतन सम समान (स०) । १०—में (का०) । ११—तिहि (कां०) । १२—करैं (कां०) । १३—वोह (का०) । १४—दोसै (स०) । १५—पय (स०) ।

[illegible]

[illegible]

[illegible] (टीका) । [illegible]

"[illegible] गीता" [illegible]

अरु[13] व्यौहार करम सुन मोसों । जानि सुपात्र कहौं[14] हौं तोसों ॥
तोहि दयाल दीन्ह वड़ राजू । तोहि[15] अस का वहुतन कर राजू ॥
चीन्हक[16] चलेसि धरम पग धारे । राज करेसि सत धर्म[17] विचारे ॥
होइ न दुखी राज[18] महँ[19] कोई । राव रंक सुख मानहि दोई ॥
राजा जव नियाव पर आवै । सील छांडि कै सत्त दिढावै ॥
राव रंक सरवर कै जानै । समुझि दूध पानी निज छानै ॥
राजहिं[20] यह बूझहिं तहिं[21] वारा । कस नियाव[22] कीन्हेसि ससारा ॥
जो रंकहि वरियार सतावै । तिहुँ[23] पलटै[24] राजा दुख पावै ॥
राव रंक जिन्ह कर उपराजा[25] । तिन्ह[26] कँ तैस रंक तस[27] राजा ॥

दोहा—राव रंक परजा सवै, राजा सव कर[28] सोइ ।
यह सपने कै राज पै[29], गरव करो जिन कोई ॥६६॥

कहे[1] अमीय[2] वचन सुखदाई । पुनि कछु सिद्ध पुरुष मन आई ॥
हुलसि हाथ झोरी में[3] डारे । चार सुपक[4] फल सरस निकारे ॥
तीन सदाफल एक जभीरे । अति सुंदर रस भरे रसीरे ॥
डारे रहसि[5] नरेस कै झोरे । कह इंछा पूरी[6] भइ तोरे ॥
भए कृपाल वै अंतरजामी । दीन दयाल जगत कर[7] स्वामी ॥*
जाही[8] तें[9] परतीत निज आनी[9] । वचन विरुद्ध सींचा पुनि[10] पानी ॥
सो तरु[11] फूल फरा फल पाके । पै[12] फर तोहि मिलैं ये ताके ॥
तीन पुत्र जोधा वलकारी । वारी एक जगत उजियारी ॥
चारौं वुद्धिवंत वड़ भागी । साधु सुसील धरम अनुरागी ॥

दोहा—परमारथ स्वारथ सहित, सिद्ध सुधार[14] सँवार ।
रहसि नरेश विदा कियो[15], चल्यौ कलेस[16] निवार ॥७०॥

१३—ओ (कां०) । १४—कहत हुं (कां०) । १५—तिहि अर (का०) । १६—जिहि (कां०) । १७—मत (स०) । १८—देश (का०) । १६—में (कां०) । २०—राजहि तोंहि पूछै (कां०) । २१—तिन्ह (स०) । २२—न न्याव कीन (का०) । २३—मुन (स०) । २४—पलटन (का०) । २५—अपरजा (स०) । २६—तिहि (का०) । २७—तिहु (का०) । २८—को (कां०) । २६—पर (स०) ।

दोहा—७०—१—कहिए (स०, का०) । २—अमी (स०, का०) । ३—मुंह (स०,) । ४—सपक (म०) । ५—रहिस (कां०) हंसि (स०) । ६—पूरण (कां०) । ७—गुर (कां०) । ८—जापर (स०) । ६—आई (कां०) । १०—वर्ण पाई (कां०) । ११—त्रिफूल (का०) । १२—ते फिर (स०)। १३—त्रिलगारी (स०) । १४—सिधार (स०) । १५—भयो (स०) । १६— लेश (कां०) ।

बाहर मढी निकसि[1] जब आवा । कटक[2] लोग सम्मुख[3] ह्वै धावा ॥
फर फर[4] बहु फरहिरा उठाये । गज तुरंग सुख आसन आये ॥
रहस तुरै पैरा[5] धर पाऊ । चढा निरंद[6] बढा चित चाऊ ॥
आनंद भरा न अंग अमाई । दूनो जग कहँ[7] कीन्ह[8] कमाई ॥
रण अस जीति नगर कहँ चला । चौगुन बढै रूप छवि कला ॥
आइ बार जब कीन्ह उतारा । तत खन जाइ मंदिर पगु धारा ॥
आवा जहाँ बैठि पटरानी । बिहँसा[9] देखि वहो बिहँसानी ॥
चारौं फर झोरे महँ[10] नाए । औ तिन[11] के[12] गुण वरन सुनाए ॥
सुनि रानी बिलसी सुख सागर । रतन मिले गुंग भेस[13] उजागर ॥
दोहा—निज निहचै बिस्वास कर, कीन्हेसि रहस बढाव[14] ।
मनो[15] पुत्र आजहिं भयो, अस बाढ़ो[16] नित चाव ॥७१॥

जब रानी भा[1] सुख अधिकारू । उठि मंजन कै[2] कीन[3] सिंगारू ॥
सजि बारह सोरह धनि बनी । सुंदर अधिक रूप रंग सनी ॥
भई निस[4] समो केलि कर भयऊ । विहँसत कंत सेज पर गयऊ ॥
भर अंकवन गह कंठ लगाई । रहस दसन धन बीज[5] दिखाई ॥
उपजी काम घटा[6] दुहुं ओरा । मिल भए एक उठै धनघोरा ॥
श्रमजल[7] बूंद झमक जहँ परी । पिक बैनी चातक रट करी ॥
नेवर मोर ऊँच कुहकाहीं । छुद्रघंट[8] झींगुर झनकाहीं ॥
पौन हिलोर उठै झकझोरा । झूलहिं दोऊ केलि हिंडोरा ॥
मानहु[10] प्रकट आव[11] चौमासा । चुंबन छत[12] भए आक जवासा ॥
दोहा—तरुनी जोवन समुद महँ, नाभि सीप जिहि भांत ।
स्वाति बूंद आवा चहै, हुलस[13] हिरदै भै सांत ॥७२॥

दोहा—७१—१—निकल (स०) । २—कतक (स०) । ३—ओहित बैठावा (स०) । ४—फिर हर नीह फिरहरा (स०) । ५—प्रान (स०) । ६—निरानंद (स०) । ७—की (का०) । ८—कियस समाई (स०) । ९—विहस (कां०) । १०—ले (कां०) । ११—तिह (कां०) । १२—कर (स०) । १३—सहिस (कां०) । १४—वधाव (कां०) । १५—जानहु (कां०) । १६—जिय वाढा (का०) ।

दोहा—७२—१—भयो (स०) । २—'का' मे नही है, कइ (स०) । ३—कीस (स०) । ४—तिस (कां०)। ५—वीज (स०) । ६—कथा (स०) । ७—अमि जल झमक झमक तिह परै (कां०) । ८—पिक चावै बैनी चात्रग रट करै (कां०), पग वेनी चातरु रति करी (स०) । ९—छदर कंठ (स०) । १०—माझ (स०) । ११—आयो (स०) । १२—जितहि जरै है (कां०), जंबत छुर भए (स०) । १३—हंस (स०) ।

सीपी स्वाति बूंद जब पावा । बिधना जल सों मोति उपावा ।।
रानी गर्भवंति जब[1] सुनी । आनंद कीन्ह हुलसि[2] सब दुनी ।।
पुनि पूरन जब भए दस मासू । पुत्र जन्म भा बढा हुलासू ।।
गावैं जुरि[3] मिलि सखी बधाई । थारहिं मोति निछावर आई ।।
गनिक[4] आइ सों[5] घरी बिचारी । त्वं[6] है राज पाट अधिकारी ।।
होइ लाग मुख रहस[7] बधावा । बरि[8] निसान भंडार लुटावा ।।
बंधु[9] हितू टीका लै आए । जे आए पहिराइ[10] बैठाए ।।
भई पुनि छठी धरावा नाऊ । तेईं[11] दिवस न्योता सब काऊ[12] ।।
कनक थार सब लोग जिमाए । पुनि सों[13] थार भंडार न आए ।।

दोहा—राव रंक बंधू हितू[14], जिन जेवां[15] ज्योंनार ।
आइसु[16] भा लै जावहीं[17], कनक[18] जगाऊ थार ।।७३।।

दुसरे बरष बहुरि[1] फिर रानी । गरभवंत भइ सबही जानी ।।
दसएँ मास पुतर भा[2] आना । भा[3] तस रहस जो पहल बखाना ।।
तिसरैं[4] पुत्र जन्म पुनि लीन्हा । तैसोइ[5] आनंद तिन्हकर[6] कीन्हा ।।
तीन पुतर हुते[6] जो होनै । तीनों सुन्दर सरस[7] सलोनै ।।
बड़ा सो बाध पैंजनी पाऊ । चलै देखि बाढै[8] चित चाऊ ।।
तुतरी बात कहै अति मीठी । हिया सराय चढै जब पीठी ।।
मंझला[9] बरन[10] घुटेनू[11] आवैं । गूं[12] गा करै सुरस उपजावैं ।।
नन्हका[13] परा पालने झूलैं । आनंद होइ देख मन फूलैं ।।
अहा जो पुत्र बिन घर अंधियारा । कृपा कीन्ह प्रभु भा उजियारा ।।

दोहा—राज गिरह सुखमय[15] भयो, गयो कलेस सब[16] दूर ।
यहै[17] खाग[18] सुख महँ[19] हुती[20], वही दीन बिधि पूर ।।७४।।

दोहा—७३—१—भा (स०) । २—देग महि (कां०) । ३—निरमल (स०) । ४—गनकहि (कां०), गनकहं (स०) । ५—सु (का०) । ६—होइह (स०) । ७—रहिम (का०) । ८—डर (स०) । ९—बबुहिजू (का०) । १०—फिर आय (स०) । ११—नीयें (स०) । १२—गांऊ (कां०) । १३—सु (कां०) । १४—हतो (स०) । १५—जीवा (का०) । १६—आइसमा (कां०) । १७—गावहीं (कां० स०) । १८—रतन (कां०) ।

दोहा—७४—१—और (कां०) । २—भै (स०) । ३—भै (स०) । ४—तैसैं (का०) । ५—तिहि (कां०) । ६—भये हुते जु (कां०) । ७—सबै (कां०) । ८—उपजै जिय (कां०) । ९—मजिला (स०) । १०—बनर (कां०) ११—घुटनियो (कां०) । १२—कांन कान कहै (स०) । १३—नन्हा परै (कां०) । १४—पुत्रहिं (कां) । १५—जो (कां०) । १६—दुख (स०) । १७—इही (का०) । १८—खानिक (स०) । १९—मैं (कां०) । २०—हुते (स०) ।

चौथे गरभवंत भइ रानी । भा[1] तन कनक दुआदस[2] बानी ॥
वस्त्र[2] ओट दीपक जनु[3] वारा । भा[4] इमि भांत गात उजियारा ॥
छीन घटा[6] ज्यो सुरज समाई । घटा सजोत देइ दिखराई ॥
तैसे[7] गरभ माझ वढ[8] वारी । भइ तिहं[9] जोति मात उजियारी ॥
ज्यों ज्यों चंद दिनहं[10] दिन बाढ़ै । त्यों त्यों अंग जोन्ह[11] दुति काढे ॥
जब दिन पूज जनम भा तासू । निस महं[12] भयो दिवस परकासू ॥
दिया जोति देखत लज गई । जनु रवि किरन प्रकासक भई ॥
भुइं[13] पर चाद उवा जनु आई । जोत अकास दीन्ह दिखराई ॥
देख जोत पून्यां ससि घटा । कत यह और चंद परगटा ॥

दोहा—वहै सोच सोचत झकत[14], परा स्याम उर अंग ।
अजहूं प्रगट सो दाग हिय, जग[15] जो कहै कलंक ॥७५॥

दोहा—७५—१—भय (स०) । २—विस्तर उवत दीप (स०) । ३—जसै वारू (का०) । ५—भय (स०) । ६—झीने पट (कां०) । ७—हेते (स०) । ८—विघ (कां०) । ९—तिन्ह (स०) । १०—दिनै (कां०) । ११—जोति दिव्य (कां०) । १२—ग्रह (कां०) । १३—भुँ (स०) । १४—भुकत (कां०) । १५—जगत जु कहित (कां०) ।

वीती रैन सूर परभातें[1] । निकसा तबहिं[2] हुता रंग रातै ॥
निरखत खिन वारी उजियारी । पीर[3] भयो तन पारत[4] पारी ॥
तिहि की खटक आज लौं मानै । जब निकसै[5] तब सो[6] गत ठानै ॥
जानौं[7] गहन कौन गुण परै[8] । रवि वह रूप सुरत[9] जब[10] करै[11] ॥
देखत[12] स्याम केस तिहि[13] सीसा । कीन्ह चहै जनु तिहि[14] की रीसा ॥
तन[15] कारोंछ[16] लगाइ दिखावै । वहै देख जग गहन बतावै[17] ॥
चंद गहन तैसों[18] पुनि होई[19] । राहू[20] दोस देहु जिन कोई ॥
भा[21] तिहि रूप सदा तन[22] राहू । एकहि दाग एक कहं दाहू ॥
रूप देह[23] धर जनु औतरा[24] । रहै[25] न अंत रूप कै करा[26] ॥
ताकी छवि कहु कौन बखानै । ओहि कहै जो दरसै सो जानै ॥*

दोहा—इहि सरूप वारी भई, रूप रूप तिहि रूप ।
रूप रूप कहैं उपम वह, वा मुख रूप अनूप ॥७६॥

दोहा—७६—१—परभाती (का०) । २—बैठ (कां०) । ३—प्रेम (कां०) । ४—परी तयारी (स०) । ५—तिनकै (स०) । ६—निकलै (स०) । ७—[illegible] (स०) । ८—जानहुं कहन (स०) । ९—परी (कां०) । १०—सरस (स०) । ११ चित (स०) । १२—फरी (स०) । १३—देखी (स०) । १४—तिन्ह (स०) । १५ तिनकै (स०) । १६—तिहि (स०) । १७—कारयो नछ (स०) । १८ [illegible] (कां०) । १९—एसै (स०) । २०—सोई (कां०) । २१—राहहिं (कां०) । २२ भै तिन्ह (स०) । २३—तिहि राहू (कां०) । २४—दंभ (कां०) । २५—[illegible] (कां०) । २६—वहै (कां०) । २७—की कारा (कां०) ।

*यह चौपाई 'कां०' प्रति में नहीं है ।

छठी रैन भा[१] छठी बधावा । नौएं[२] दिवस पुनि नावं धरावा ।।
वदन रूप दुति दामिनि करा । इन्ह[३] तैं नावं दमंती धरा[४] ।
सेवा रहैं धाइ दो चारी । सींचहिं दूध राज कीं[५] बारी ।।
ज्यौ ज्यौ बढै चांद लों बारी । त्यौ त्यौ होइ अधिक उजियारी ।।
भई जब[६] पाच बरख महँ[७] बारी । सुदिन बिचार पढ़न बैसारी[८] ।।
पंडित केतिक दिनन[९] पढावा । पुनि बिन पढा अरथ सब[१०] आवा ।।
पढ़[११] बिचित्र पंडित ह्वै आई । लागि गरंथ अपढै[१२] अरथाई ।।
पुनि पंडित जिन्ह[१३] अरथ न[१४] पावैं । खोज ज्ञान[१५] सो ताहि बतावैं ।।
पंडित चेटा[१६] भा[१७] चटसारी[१८] । गुरु[१९] हुइ उलट पढावा बारी[२०] ।।

दोहा—अब ऐसी पंडित भई, जे पंडित तिहिं देस ।
देखि बुद्धि ता नारि की, सबन[२२] कीन्ह आदेस ।।७७।।

महाराज अब सोई बारी । नारंग फरी होइ रखवारी ।।
धौं अस भाग लाग किहिं माथा[१] । ते नारंग आवैं[२] जिन्ह[३] हाथा ।।
भई संजोग तरुनि ह्वै आई । दुइज पूज पून्यो दिखराई ।।
पूरण भई[४] सोरहो करा । अंग जोन्ह दुति मुख निरमरा ।।
निरखत वदन नैंन सियराही । ससि मुख[६] अमी सु अधरन मांही ।।
पर ससि पहँ[७] सर जाय न करी । वह तो कलंकी यह निरमरी ।।
ओ ससि दिवस एक निस[९] होई । यह जस अहै सरवदा सोई ।।
पुनि जो राहु ससिकर दुखदाई । सो इन्ह[१०] कैं नित सरन रहाई ।।
जौन[११] अमावस हिय[१२] ससि डरै । सो भइ[१३] छाह पाय तर धरै ।।

दोहा—एही[१४] लाज लजाइ मनु[१५], भा[१६] पून्यो ससि छीन ।
जे ताके दुख दाय रिपु[१७], ते याके[१८] आधीन ।।७८।।

दोहा—७७-१—भैं ((स०) । २—तैई (कां०) । ३—तैसो नाम (कां०) । ४—परा (कां०) । ५—कै (स०) । ६—ज (का०) । ७—मैं (कां०) । ८—पैसारी (का०) । ९—वर्ष (कां०) । १०—सो पावा (स०) । ११—पुनि (स०) । १२—पढी (कां०) । १३—जिहि (कां०) । १४—बुतावै (कां०) १५—इहि अपनां तिह लागि सुनावै (कां०) । १६—चिता (स०) । १७—भया (स०) । १८—चितसारै (स०) । १९—करहुइ (स०) । २०—भारी (कां०) । २१—तिन्ह (स०) । २२—सर्वहिं (कां०) ।

दोहा—७८-१ हाता (स०) । २—आवहं (स०) ३—जिहि (कां०) । ४—भई सु (कां०) । ५—एक जोति मुख ससि (कां०) । ६—मनु (स०) । ७—पै (कां०) । ८—एक द्योस (कां०) । ९—तस (स०) । १०—उपाउ मिससरण (कां०) । ११—जोन (कां०) । १२—भये (का०) । १३—इहि (कां०) । १४—इनहीं (स०) । १५—जनु (का०) । १६—भयो (स०) । १७—झीन (कां०) । १८—'कां०' मे नही है । १९—ताके (कां०) ।

मेरे जान तिहूं पुर माहीं । ताके रूप और धनि नाही ॥
दुतिय नास्ति[1] एकौ जग आनू । कहि न जाय तिहि[2] रूप बखानू ॥
इन्दर[3] आदि तिनकै अपछरा । सबकों मन ताकै मन हरा ॥
नैन समुद्र[4] रतन जिन हेरा । होइ मन मीन[5] भेष तिन्ह केरा ॥
जो पुनि गौर[6] मौर सों हेरै । कटियाँ[7] बरमि छूट किन्ह[8] केरे ॥
दिस्टि बढी तो दीर[9] जन दीन्हेसि[10] । झपकत[11] पलक ठौर पुनि लीन्हेसि ॥
झापसि[12] बरुनी हरा[13] बिछाई । जियत मुए पुनि छूट न जाई[14] ॥
तरफ तरफ जिउ दीन तपाना[15] । इन्ह जारा[16] पर कहाँ छुटाना[17] ॥
को अस जौन हेरि पुनि[18] हेरा । आप हिरावा सो जिन हेरा ॥*

दोहा—जो पुनि कबहु[19] अकास तैं[20], हेरे नैन फिराइ ।
सबै देव होइ किलकिला, गिरा[21] चहैं[22] तहँ राइ ॥७९॥

दोहा—७९-१—नागत (स०) । २—तिन्ह (स०) । ३—इंद्रलोक जिहि की (कां०) । ४—तिहि को (कां०) । ५—समुद्रहि जन जिन (कां०) । ६—नैंन विहस तिहि (कां०) । ७—कूर मूर (कां०) । ८—कितना (कां०) । ९—कह केरा (कां०) । १०—दो जन (कां०) । ११—दीनस (कां०) । १२—झवकत (कां०), चमकत (स०) । १३—चाहिस (स०) । १४—जरानन छाई (कां०) । १५—पाई (कां०) । १६—निबाना (स०) । १७—चारा (कां०) । १८—छिताना (स०) । १९—फिर आवा (कां०) । *जिन हेरा सो आप हिरावा (कां०) । २०—किवौं (कां०) । २१—तिन (स०) । २२—करा (स०) । २३—अछ ठहराई (कां०) ।

मूला जगत देव मुन आपा ॥
तिहि[1] का रूप कितनहँ[2] घट व्यापा । जग विन जीउ जीउ एक सोई ॥
जग मैं जीउ न जानौ कोई । मुख मुख रहौं[4] प्रेम धुनि वानी ॥
सभा सभा महँ[3] वहै कहानी । जहाँ वदन[5] दीपक वह वरा ॥
जगत पतंग ह्वै चाहै परा । धौं[8] किहि[9] कैं पूजै[10] किहि[11] नाहीं ॥
जगत[6] आस[7] राखै मन माही । जिहि[14] कैं लगन[15] लखै पुनि सोई ॥
पै निदान पावै[12] वह[13] कोई । धौं[17] केहि देइ करै मतवाला ॥
ताके[16] हाथ प्रेम मद प्याला । धौं[18] केहिका[19] आपन कर[20] मानै ॥
वाकी रीझ वही पै जानै । सोई मिलै गहै जिन[22] वाहीं ॥
मिलवौ[21] हाथ काहु कैं नाही ।

दोहा—चरन कवँल ताकर चढ़ैं, जापर होइ दयाल ।
समौं[23] परै आपन करै, रीझ देइ जैमाल ॥८०॥

मुनि राजा मोहित होइ रहा ॥
भाटिन जव अचरज यह कहा । लागेसि पेम वान उर घाऊ ॥
औ सुनि नारि रूप कर भाऊ । नल उर[2] नारि खोंच होइ अरी ॥
इहि[1] निज अटक खटक जिय परी । तन[3] तजि जाइ रहा तिहि पासा ॥
मन पंछी उरझा ओहि लासा । मिस ही मिस फिर वात चलाई ॥
मुना चहै निज रूप निकाई । चतुर जान बूझत[4] हौं तोसों ॥
भाटिन एक वात कह मोसों । कौन कौन अंगनि[5] पहिचानी ॥
तैं सो नारि पदमिनि क्यों जानी । जिहि[7] गति जौन अंग तैं ताका ॥
कह नख सिख सिंगार सव[6] वाका । तौलौं[9] मन भरमक न पतीजै ॥
जौलौं[8] निज सरूप न मुनीजै ।

दोहा—नाथ जो मनरथ को रथौ[10], औ[11] स्वारथि पुनि सोइ ।
तऊ[12] सोच समझै विना, मन[13] परतीत न होइ ॥८१॥

दोहा—८०-१—तिन्हक (स०) । २—घट घट (कां०) । ३—मैं (कां०) । ४—वटै (स०) । ५—वल (कां०) । ६—जगत (स०) । ७—अस (कां०) । ८—धुनि (स०) । ९—किन्ह (स०) । १०—पहुंचै (कां०) । ११—किन्ह (स०) । १२—पाइहि (कां०) । १३—सो (कां०) । १४—जिन्ह की (स०) । १५—लिख लिखनी (का०) । १६—लागे (स०) । १७—धुनि (स०) । १८—धुनि (स०) । १९—किहि का (कां), का कहं (स०) । २०—कैं (कां०) । २१—मिलाय (कां०) । २२—जिह (का०) । २३—समैं (कां०) ।

दोहा ८१-१—भय (स०) । २—ओ (कां०) । ३—मन तलि (कां०) । ४—पूछौं (का०) । ५—अंकन (स०) । ६—धौ (कां०) । ७—जिन्ह (स०) । ८—जो लहि (कां०) । ९—तौलहि (कां०) । १०—रथै (कां०) । ११—जो (कां०) । १२—तौ सुनिज (कां०) । १३—जीय (का०) ।

महाराज हिय[1] संक मिटाऊँ। चारौं नारि बखान सुनाऊँ॥
एक हस्तिनी एक संखनी। एक चित्रनी एक पदमनी॥
पहले कहौं हस्तिनी नारी। जा महँ[2] हस्तिन[3] कै गति सारी।
अंग सुभर[4] ग्रीवा अति छोटी। हया सो निपट कहै[5] कटि[6] मोटी॥
आवै तन गयंद सद बासू। औ मन खोट धरै विस्वासू॥
औ अहार बहुतै पुनि खाई। अछवाई गति जाइ न पाई॥
गज गति चाल ढाल पुनि ताही। चलत पंथ चितवैं चहुं खाही[7]॥
पिउ रति[8] सुख संतोख न करै। पुरुष पराए पर चित्त[9] धरै॥
डर अरु लाज न मन महँ[10] आनै। विन आँकुस कछु संक न मानै॥

दोहा—जो हठी हठ तब तजै, जब आँकुस सर खाइ।
मोरै मुरै न मुख वचन, ए हस्तिनी सुभाइ॥८२॥

दूजैं कही संखिनी नारी। सिव सुभाइन सान उतारी[1]॥
उर कटि[2] सुभर कहै[3] चौगुनी[4]। ते दोऊ ताही गति बनी।
बल विसेस औ अलप अहारी। चलै सिव ज्यों चाल अरारी[5]॥
राखै दिस्टि नयाइ तराही[6]। रूखे बदन हँसत मुख नाही॥
भोजन मास बहुत रुचि मानै। प्रान[7] हनत[8] न संका आनै॥
मुख[9] मैं उठै बसायँध बासू। जैसे बहुत दिनन करि माँसू॥
रोआं होहि जांघ[10] उर फैली[11]। सँक[12] न करै गरब गरबीली॥
वचन न सहै रोस[13] अति घना[14]। अपनै सिर पर और न गना॥
पिउ[15] उर केलि समै नख लावै। रसहू मै रिस रोस जनावै[16]॥

दोहा—पर सिंगार देखै दुखी, सिवनि ज्यों गुरराइ।
अपने ही मुख सों[17] मगन, ए संखिनी सुभाइ॥८३॥

दोहा—८२–१—इहि (का०)। २—मै (कां०)। ३—हस्ती की (कां०)। ४—कर पग सबर गरौं (स०)। ५—खीन (कां०)। ६—कटु (स०)। ७—मांही (कां०)। ८—अति सुखहि (कां०)। ९—जिउ (स०)। १०—मै (का०)।

दोहा ८३–१—सुवांरी (कां०)। २—गति समर (स०)। ३—खीन (कां०)। ४—चोकनी (स०)। ५—धराही (कां०)। ६—ततराहीं (कां०)। ७—पराय (कां०)। ८—हंसति (कां०)। ९—मुख (स०)। १०—जा मुख (कां०)। ११ फली (कां०)। १२—संग न करै संकर भली (कां०)। १३—क्रोध (कां०)। १४—कीना (कां०)। १५—पीव उर समै नप लावै (कां०)। १६—जियावै (स०)। १७—मै (कां०)।

तीजै कहूँ चित्रनी[1] नारी। समिल[2]* अंग साँचे जनु ढारी॥
जे जे अंग जौन गत[3] गने। सर्ब[4] होंहि ताही विध सने[5]॥
बदन चंद तन जोन्ह[6] निकाई। जैसी[7] अपछर तस[8] अछवाई॥
महा विचित्र रूप रस भरी। बोलत रसनां मीठी खरी॥
देखि सो चाल मराल लजाही। लीने भार डोलै[9] दोउ बाहीं॥
छिमावंत रिस रोस न जानै। हंसत[10] सखी सबन मन मानै॥
भोजन अलप ग्रस्त दोइ चाखै। पान पुहुप सोधै रुचि राखै॥
पतिब्रत राखि करै पिउ सेवा। पिउ परमेसर[11] धरै नहि भेवा॥
पदमिनि सों दोइ गुन घटि होई। और बनाव भाव सब सोई॥
दोहा—चित्रनि[12] कुमुदिनि के बरन, अरु[13] सुबासना अंग।
पदमिनि राती[14] कवँल[क] ज्यों, तन सुबास अलि संग॥८४॥

चौथै[1] कहूँ पदमिनि नारी। पदम सुगंध सूर[2] उजियारी॥
कवँल[3] बरन अरु[4] कोमल[5] अंगा। बास लुबुध डोलहि अलि संगा॥
ना अति पातर ना[6] अति मोटी। मध्य भाव सुठि[7] लांब न छोटी॥
बदन कांति जनु पून्यों चंदा। सरबर किये[8] चंद दुति[9] मंदा॥
ससि ज्यों सोरह कला[1] संपूरी। पैं[10] ससि मांहि कलंक अपूरी॥
ससि महँ[11] सोरह कला बखानी। पदमिन सोरह अंगनि जानी॥
चार अंग दीरघ लघु[12] चारी। चार सुभर चहुँ[13] खीन[14] संवारी॥
चलै हंस ज्यों चाल सुहाई। बोलै पिक लौं लियै मिठाई॥
औ अति चतुर कंत चित चोरै। सेवा सौं मुख[15] कबहुं न मोरै॥
दोहा—मन सूधा[16] भृकुटी कुटिल, नैन चपल[17] गति मीन।
इन अगनि देखी[18] सो धनि, सो[19] पदमिनि परवीन॥८५॥

दोहा ८४–१—चतरनी (का०)। २—समल (का०)। ३—अंग (कां०)। ४—सर्वहिं (स०)। ५—वने (स०)। ६—जोति लगाई (कां०)। ७—जस (कां०)। ८—तैसैं (कां)। ९—दोलहं (स०)। १०—हस्ता (कां०)। ११—पराए (कां०)। १२—चतुर (का०)। १३—औ निवासना (स०)। १४—रानी (कां०)। क कोमल (कां०)। * समिल=सुकुमार।

दोहा ८५–१ सोरह (कां०)। २—कमल (का०)। ३—औ (कां०)। ४—कोंवल (स०)। ५—होइ न (स०)। ६—सों (कां०)। ७—कीन्ह (कां०)। ८—मुख (कां०)। ९—करान (का०)। १०—ऊ सतान हियै (स०)। ११—मैं (कां०)। १२—लखि (स०)। १३—ज्यों (कां०)। १४—कहैं (स०)। १५—मन नैक (कां०) १६—सुधा (कां०), सोधा (स०)। १७—चंचल (स०)। १८—जु (कां०)। १९—मध (स०)।

सोरह अंग कहें जे तेऊ। ब्यौरा कहौं सुनौ नर देऊ ।।
प्रथम केस दीरघ अति माथां। ओ[1] दीरघ अंगुरि[2] छवि हाथां ।।
दीरघ[3] रेख ग्रीव तर सोहै। दीरघ नैंन मैंन मन मोहै ।।
लघु लिलाट दुतिया ससि जोती। ओ लघु दसन दिपहँ जस मोती ।।
पुनि लघु कुच जंभरि[4] उनमाना। लघु नाभी मृग खोज समाना ।।
सुभर कपोल रूप रस भरे। सुभर भुजा सांचैं जनु[5] धरै ।।
सुभर नितंब देख मन लोभा। सुभर जाघ जिमि[6] कदली गोभा ।।
नासिक खीन[7] वदन पर[8] वीना। खीन[9] अवर जनु कागर पीना[10] ।।
खीन[11] पेट पातर जनु[12] पाना। खीन[13] लंक ज्यों सिंघ वखाना ।।

दोहा—पदमिनि पहिचानी सो[14] मैं, इन अंगनहू[15] भूप।
अव[16] वरनो तिहि[17] अंगवैं[18], अंग अंग के रूप ।।८६।।

प्रथम केस दीरघ घुंघरारे। ठाढ़ैं पांय[1] परैं अति कारे ।।
कोमल[2] कुटिल वरन सटकारे[3]। सकपकाहिं[4] जनु नाग विसारे ।।
जानो मलय[5] अंग पर अरे। लुर्रहिं[6] आपु महँ[7] लहरिन भरे[8] ।।
नाग[9] डसंहि तऊ प्रान[10] न लेही। इन्हें निहारि लोग[11] जी देहीं ।।
जानहु प्रेम फांद कै[12] धरे। तेहि[13] उरभि केतक[14] मन मरे ।।
अंचर टारि केस जव भारे। दिनहि अछत जग दीपक वारै ।।
दीपक वदन वार जनु धरा। सिमटि[15] अंधेरा पाछे परा ।।
धौं[16] पून्यौं देखत अंधियारी। ढके[17] वटै तो करौ पैसारी ।।
जव[18] वह अघट चंद नहिं घटा। तिह[19] दुख रोइ पुकारेसि[20] लटा[21] ।।

दोहा—किधौं[22] वदन वारिज पर, भंवर जुरे वहु[23] आइ।
उठि[24] न सकत रस विधि रहे, रहे लुभाइ लुभाइ ।।८७।।

दोहा ८६–१—औद पुरुष (स०)। २—अंभरहं (स०)। ३—दीरघ कर वृन रेख तर (स०)। ४—छत्र (कां०)। ५—जिन (स०)। ६—जनु (कां०)। ७—कहे (स०)। ८—प्रवीना (कां०)। ९—कहैं (स०)। १०—वीना (कां०)। ११—कहैं (स०)। १२—जस (स०)। १३—कहैं (स०)। १४—जु (कां०)। १५—अंगनजो (कां०)। १६—अवर (कां०)। १७—तिन (कां०)। १८—टा (कां०)। दोहा ८७–१ पाई नि परिहिं निकारे (कां०)। २—कोंवल (स०)। ३—सुठकारे (स०)। ४—सुखपकांहि (कां०)। ५—मिले (स०)। ६—अरहिं (कां०)। ७—मँ (कां०)। ८—फरे (स०)। ९—नाका (स०)। १०—परानहु कटही (स०)। ११—तक जीवन (स०)। १२—भांडकर (स०)। १३—तिनहिं (स०), तिहे (का०)। १४—कैयक (कां०)। १५—समत (स०)। १६—वोह (कां०)। १७—त्रह की घटी न किरों विसारी (कां०)। १८—जग (स०)। १९—तिन (स०)। २०—फिकारस (कां०)। २१—लुटा (स०)। २२—कदहुं (स०)। २३—है (स०)। २४—उवद निसक (स०)।

अब[1] बरनौ तिहि[2] माग निकाई । जमुना चीर गंग[3] जनु आई ॥
तिहि पर पैर जाय किन[4] पारा । अहा[5] सो मन डूबै मझधारा[6] ॥
मुख रवि कर प्रकास जनु भयऊ । तकि[7] निरि हियो दरकि अस गयऊ ॥
बदन चन्द जनु वैर[8] संभारा । कीन्हेसि खरग राहु द्वै फारा ॥
पतरी[9] धार कौंध जनु[10] कौंधा । तरा तिहि माग लाग रहे चौंधा ॥
कंचन जानु कसौटी लावा । तिहि तें अधिक भाव दिखरावा ॥
इह[11] सोभा सो लीक[12] दिखाई । जनु निसि पाति जुगनुअन[13] लाई[14] ॥
रूप सुभट जनु खरग निकारा[15] । सरवर करैं चहे तिहि[16] मारा ॥
जो[17] पुनि मोतिन लड़ि[18] बैसाई । ज्यों बग पांति घटा गधि[19] आई ॥

दोहा—नैन चोर[20] निधि[21] वदन छवि, चोर चहत जनु लीन्ह ।
सीस धरोहर[22] चहर[23] निस[24], मांग[25] सुरंग[26] मनु[27] दीन्ह ॥८८॥

निरख लिलाट भाव जग सोभा । सरगहं[1] चाद केर[2] चित लोभा ॥
मन[3] तस[4] होइ राख जिउ आसा । मरि मरि जनम लेहि हर मासा ॥
सोऊ[5] एक दिवस तस[6] होई । दुतिया बहुरि न[7] पूजत[8] कोई ॥
जान गुनिहु[9] गुन सीस नवावै । जग दुइज कर[10] दरसन आवै ॥
सुनी कि तिहि ललाट अस होई । नाहत चंद नवै नहि कोई ॥
औ पुनि ईस[11] सीस जो धरा । ममझि चंद मैं[12] भोई वरा[13] ॥
नाहत जगत जो ईस कहावहि । सो[14] का सीस कलंक चढावहि ॥
जाहि[15] गुनह[16] दिनकर दिन जरै । फिर फिर अगिन ताव महं[17] परै ॥
ताहि कनक तन वान वढावै । वरन ललाट वरन मकु[18] पावै ॥

दोहा—जउ मग[19] जोत ललाट पर, लागै तिलक जराव ।
सूक[20] उवा मनु[21] दुइज मे, अचरज भया[22] बनाव ॥८९॥

दोहा ८८—१—पुनि (कां०) । २—तिन्ह (स०) । ३—कनक (स०) । ४—तिन (कां०), तन (स०) । ५—धाऊ सुमन (का०) । ६—विचधारा (का०) । ७—मग (का०) । ८—सरह संवारा (स०) । ९—पत्री (कां०), पुतरी (स०) । १०—जस (कां०) । ११—इन्ह (स०) । १२—लवक (स०) । १३—जगतु (कां०) । १४—वौहलाई (कां०), लाई (स०) । १५—निसारा (का०) । १६—तिन (स०) । १७—ज्यो चुनि (का०) । १८—मांग भराई (कां०) । १९—मड़ (स०) । २०—जु (का०) । २१—रंध्र (का०) । २२—धरोहर (स०) । २३—छर (कां०) । २४—तिस (कां०) । २५—मागुसु (स०) । २६—रंगन (स०) । २७—मम (कां०) ।

दोहा ८९—१—निरप (का०) । २—घेर (कां०) । ३—मग (कां०) । ४—निस (कां०) । ५—सुमर (का०) । ६—मिस (कां०) । ७—मिलो (कां०) । ८—छवि (का०) । ९—किहि (कां०) । १०—उर (स०), ओ (कां०) । ११—ऐस (स०) । १२—तिंहि (कां०) । १३—करा (कां०) । १४—सोंक लिये (कां०) । १५—जानो (कां०) । १६—किहि (कां०) । १७—तन (कां०) । १८—मग (कां०) । १९—जो जग (कां०) । २०—सोक (स०) । २१—जनु (कां०) । २२—भाव (कां०) ।

भृकुटि कुटिल सो वरनि न जाहीं । परवट वीजु[१] वसै तिन माहीं ॥
उड़ नागिन सावक जिमि[२] आही । चितवन खिन उडि मनहिं[३] डसाहीं ॥*
जिहि के डसै मंत्र नहि कोऊ । ऐसै कुटिल काल वे दोऊ ॥
कोटि कटाछ करै इक घरी । जानों लहर लेहि विप भरी ॥
सहजहि भौंह तान जो हेरै । जो हेरै सो होइ अहेरै ॥
वानुक वदन धनक जनु ताना । जो ताकत मारत तिहि वाना ॥
एक कटाछ वान जो लावै । रोम रोम तन सहज गिरावै ॥
अर्जन धनक वान जनु छूटै । छूटै एक सहंस ह्वै फूटै ॥
अर्जन धनक काल कर घड़ा । रहै काल मूठी नित चढ़ा ॥

× × ×

दोहा—राम हरा रावन जिहि, कृष्ण हरा जिहि कंस ।
ते वै धनक हु जे मनों, वही धनक कर अंस ॥९०॥

नैन मीन मोहन मद भरे । पै जनु प्रेम पियाला धरे ॥
तिरछ चलत घूमत मतवारे । जिहि तन ठरहि चहैं तिहि मारैं ॥
डोरे अंग तीप अनियारे । नैन कहौं किधौं मैन कटारे ॥
सरवर रूप कमल तिहि मांही । अलि जनु वैठ वीच गुंजांही ॥
उठै समुद्र लहर अस दोऊ । तिहि पर पार न पावै कोऊ ॥
चंचल नैन छीन जनु आही । चौंक चपल भय थिर न रहाही ॥
तारा तिल कपोल पर[१] लरे । द्वै[२] पंजन जानों रिस[३] भरे ॥
भर[४] भर जोर[५] न छूटै[६] काऊ । जद्यपि सुअटा[७] करै वचाऊ ॥
वाग[८] चपल[९] हय[१०] मानत नाही । जानहु उछर सरग चढ जांही ॥

दोहा—दीरव अनियारे[११] सुवर[१२], सुन्दर विमल सुलाज ।
मुख छवि दवि वारिधि[१३] मनो, नैन सरूप जहाज ॥९१॥

दोहा ९०–१—मीच (कां०) । २—जनु (कां०) । ३—मनहु (स०) । ४—डुसाहीं (स०) । *'स०' प्रति में इसके पश्चात् की सात चौपाइयाँ, संख्या ९० का दोहा और उसके आगे की छः चौपाइयाँ नहीं है ।

दोहा ९१–१—मग (कां०) । २—मानो वजि खंजन (स०) । ३— रस (स०) । ४—फिर फिर (कां०) । ५—जुरहि (कां०) । ६—छूटहि (कां०) । ७—सूटा (कां०), सोता (स०) । ८—ताक (कां०) । ९—चल (कां०) । १०—हिय (कां०) । ११—अति भारी (कां०) । १२—भरे (कां०) । १३—कोट कटाछ समाज (कां०) । १३—ता मव (कां०) ।

का वरनौ वरुनी अनियारी । वनी घनी कारी[1] कजरारी ॥
फूले कंवल होइ रखवारी । सिर[2] चहुं ओर वार[3] भये वारी[4] ॥
काम वधिक जनु खंजन घेरे । खोंचा ठाठ कीन्ह चहुं फेरे ॥
दूनौ[5] अनी जूझ जनु जोधा[6] । साधि वान ठाढे भये कोधा[7] ।
जो मन तहाँ जाइ सो जूझै । जूझ मुसे[8] कोउ वात[9] न बूझै ॥
जाकर काल आइ नियराई । ताकर दिस्टि वरुनि पर जाई ॥
कोउ[10] न जिया वरुनी जिन्ह दीठी । अर उर[11] बान उठै[12] चलि[13] पीठी ॥
लीजै काढ लाग जो वाना । ए[14] अति अकढ[15] कढै ले प्राना ॥
तन सों निकस[16] जाहि पुनि प्राना । तऊ न[17] निकसै प्रान ते[18] वाना ॥

दोहा—देखै बीधत कथन[19] का[20], सुनि बीध्या[21] संसार ।
जौने सुनी सो विध रहा, कहि न जाइ विस्तार ॥६२॥

नासिक पीन[1] खरग कै धारा । मन तिहि परत होइ दो फारा ॥
ससि पर चंप कली जनु राखी । मलय[2] पुहुप बौंहू[3] का साखी ॥
जो पुनि पहरै फूल जराऊ । कहि न जाइ कछु तिहिकर[4] भाऊ ॥
सुअटा अधर विंव तकि छका । व्यान[5] रूप रखवारी लगा ॥
सुवा ठोर का बरनौ तासू । वह न[6] वास यह पुहुप सुवासू ॥
जदपि सुवा[7] ठोर अति लोनी । तऊ कठोर न तिहि सर होनी ॥
वह कोमल जनु पुहुप बनाई । पुहुपहुं तै अति कोमलताई ॥
वन वन सुवा फिरै तप[8] साधै । मुंदि मुंदि आँखिन अलख अराधै ॥
नासिक वरन ठौर मकु[9] होई । पीर जो[10] भयो काट दुख सोई ॥

दोहा—वनी प्रकासक वदन पर, इमि नासिक चित्त चोर ॥
अमी स्वाद मनु[11] ससि कुतुर[12], कीर[13] निकासी ठौर ॥६३॥

दोहा ६२–१—कनी (स०) । २—सुरझो (का०) । ३—तान (कां०) । ४—नारी (कां०) । ५—द्वितीये (कां०) । ६—ओडा (स०) । ७—ओघा (का०), जोधा (स०) । ८—मूये (का०) । ९—न्याव (स०) । १०—कोइ न जियाइ परी जिहि (का०) । ११—अर (का०) । १२—अपै (स०) । २३—जल (स०) । १४—(का०) । मे नही है । १५—आढ़ (स०) । १६—यह अर्धाली (का०) । मे नहीं है । १७—(का) । मे नहीं है । १८—सो (कां) । १९— कढन (कां०) । २०—गा (का०) । २१—वंधा (कां०), वेधा (स०) ।

दोहा—९३–१—कहै (स०) । २—तिलकर (का), मलिम (स०) । ३—व (स०) । ४—तिनकर (स०) । ५—हंसा मैन मारै जनु (स०) । ६—निवास तिहि (कां०) । ७—सोह (स०) । ८—तव (स०) । ९—गम (कां०) । १०—वेसर मुफर गत दिखराई (का०) । ११—जनु (का०) । १२—पिय (कां०) । १३—सूवा (कां०) ।

अधर सो अमी भरे रस[१] राते । बिन तँबोल रंग सुरंग चुचाते ॥
कुसुंभ रंग सर कीन्ह न जाई । कहाँ मजीठ ओप अस पाई ॥
बिंब लजाइ जाइ बन[२] फरे[३] । बिद्रुम सकुचि समुंद महि दुरे ॥
जस रबि उदै[४] होइ परभाता । ताहू तैं अधरन रंग राता ॥
पातर निपट पान हुते कीन्हें । फूल होंहि पानन रस भीने ॥
दुहुं बिच रेख सु जाइ न पाई । जनो[५] डाभ सों चीरि बनाई ॥
जनु बिद्रुम महं भई दरारा । औ जोरा[६] सो रही बिचधारा ॥
छीनी[७] लीक भाव अस[८] देखा । कनक[१०] पत्र पर इंगुर रेखा ॥
बोलत अधर जान दोइ जाही[११] । नाहित बिधि[१२] चीर[१३] जनु नाहीं ॥

दोहा—बदन साज बिधि[१४] देखि छबि, परयो बिरह बस जाइ ।
भूलि गयो[१५] अधरन मनो, चीर न सक्यो बनाइ ॥९४॥

बरनि न जाइ दमन दुति भाऊ । बिधि[१] जरिया जनु जरै जराऊ ॥
हीरा छोल छाल जनु गढ़े । रंगे तंबोल रतन नग चढ़े[२] ॥
जौहर[३] सुरंग स्याम रंग रेखा । बिच बिच सीप[४] सो बने बिसेखा ॥
बिद्रुम बितान[५] रतन जिमि पहरै । काम जौहरी पांतहि धरै[६] ॥
बोलत नेकु जो देहि दिखाई । त्रिबिध चमक चित लेहि चुराई ॥
बिहसत[७] जगत होइ उजियारा । जनु ससि माहं कौंध लहकारा ॥
जाकी दिस्टि परी वह कौंधा । नैनन[८] लागि रहै तिन्ह[९] चौंधा ॥
पाहन रतन होंहि सो[१०] जोती । होंहि सजोत न जोत जो मोती ॥
मेरे जान बिहंसि जब बोलै । वहै चमक चपला ह्वै[११] डोलै ॥

दोहा—देखि दमन दुति रतन दुरि, पाहन रहै समाइ ।
तिन्हहि[१२] लाज चपला मनो, निकसत[१३] औ छपि जाइ ॥९५॥

दोहा—९४-१—रंग (स०) । २—बिनु (स०) । ३—पहरे (स०) । ४—परे (कां०) । ५—गौरावै (स०) । ६—जिन्ह (म०) । ७—औ वह जुरा सो हियै बिच धारा (स०) । ८—चुन्ही (कां) । ९—इमि (म०) । १०—कलनक (स०) । ११—नाही (कां०) । १२—बिन (स०) । १३—दोइ (कां०) । १४—यहु (स०) । १५—कियो (स०) ।

दोहा—९५-१—वड़ (म०) । २—वढ़े (कां०) । ३—जोगा (स०) । ४—सेत (स०) । ५—जना पर तनु भरे (का०) । ६—नरे (कां०) । ७—भानत (स०) । ८—तिनहं (कां०) । ९—वहु (का०) । १०—ति (का०) । ११—भइ (म०) । १२—तिहि (कां०) । १३—निकस नैक (कां०) ।

रसना वेद अरथ कँ कीली । औ बोलत कत मधुर रसीली ॥
बीन तार तिहिं सुरहि न पूजा । उपमा जोग और को दूजा ॥
कहैं जो वेद अरथ अरथाई । सुरता सरवन सदा ह्वैं जाई ॥
सरवन[1] वचन अमी होइ परहीं । रोम रोम तन सीतल करही ॥
मुरझी बेल पर्‌यो जिमि[2] पानी । त्यों[3] तन पुलकि[4] उठै सुनि बानी ॥
सुनन[5] आस[6] मधुर रस बैना[7] । निकट[8] मिरग होइ उतरे नैना ॥
पिक सुनि बैन लाज[9] भइ स्यामा । लीन्ह नगर तजि वन बिसरामा ॥
बस्ती बोल न सकै लजानी । वन महँ कुहक सीख सो बानी ॥*
बकि छकि थकि हारी नही आई । तव निदान लाजहिं छपि जाई ॥
दोहा—स्वांत बूंद तिय[10] बैन[11] सुन, चातक मिटी पियास ।
स्रवन सीप ह्वैं अवतरे, वहाँ[12] पास तिहँ आस ॥६६॥
कँवल कपोल गोल अति बने । विमल[1] सुभर सोभा दुति सने ॥
चमकहि वदन[2] देइ दिखराई । चित[4] तहँ चलत रपट पै जाई ॥
दरपन ओप मांज जनु धरे । तऊ जाने[5] चमकत अति खरे ॥
जनों कंवल दल गेंद बनाई । छुए न कोउ अछूत अब ताईं[6] ॥
धौं[7] को भागवंत दुनियाही[8] । तिह कांरन अछूत अवताही ॥
सेव सुरंग प्रेम रस भरे । जनु दाडिम फलसों मिलि फरे ॥
तिल कपोल बाएँ पुनि परा । तिन तिल जगत तिलन तिन करा ॥
जिन तिल देख परा तलबेली । तिल तिल तलफत जाइ न छेली ॥
कहि न जाइ तिन रूप रिझौंना । कंवल बेधि उरझा अलि छौंना ॥
दोहा—तिल कपोल पर कोटि छवि, कहि न जाइ विस्तार ।
वदन दीप[9] छवि[10] पतंग मन, देखि[11] जरा भै छार ॥६७॥

दोहा—६६—१—सुरतन (स०), श्रवे (कां०) । २—जनु (स०) । ३—यों (स०) । ४—फल (कां०), पुलह (स०) । ५—सुन (कां०) । ६—अस (कां०) । ७—भीना (कां०) । ८—मृग अवतरे निकहुय वीना (कां०) । ९—लजाइ (स०) । * उत्तर पद 'का०' मे नही है। १०—तिह (का०) । ११—वन (कां०) । १२—दुहौं कूल तिन्ह (स०) ।

दोहा—६७—१—सभल (स०) । २—सोभित (स०) । ३—अलव अलक दुति देह दिखाई (कां०) । ४—चितवत (कां०) । ५—धून चाह तें चीकन खरे (स०) । ६—अराई (कां०) । ७—कुंह (स०) । ८—दुनिया अवताई (कां०) । ९—मुदीप (कां०) । १०—वरनन मनो (कां०) । ११—परत पतंग (कां०) ।

सरवन सीप जनु कनक बनाए । दिपहिँ दीप से वारि घराए ॥
ससि जनु दुहूँ हाथ लै दिया । शिव कुच[1] पूजन कहँ मन किया ॥
दुहुँ दिस खूँट[2] जराऊ धरे[3] । खटकहिँ हिये डीठ जहँ परे ॥
रतनन जगमगात होइ रहा । जानहु चंपक[4] चंदहिँ[5] गहा ॥
जो सुभाइ अँचर गहि डारैं[6] । ससि दुहुँ ओर काँव लहकारैं[7] ॥
मनि परकास बीरी[8] उजियारी[9] । बेनी नाग उगल मनु डारी ॥
जो मन[10] तहाँ दिस्टि मिल गयऊ । डसा सो[11] नाग काल बस भयऊ ॥
सूक[12] सनीचर स्रवन सुहाए । ससि सों वाद करन मिलि[13] आए ॥
तोहि[14] तें अधिकहिं[15] हम सुख जोती । तू निसीठ[16] हमरे गज मोती ॥

दोहा—मुक्ता[17] खूँटी नग जरी, स्रवन सीपियन्ह[18] भाय ।
नग कंचन[20] मनु[21] भेंट दै, मिले नैन[22] करैं जाय ॥६८॥

दोहा—६८—१—सेव पंज रस कहि (कां०) । २—खोट (स०) । ३—जरी (कां०) । ४—चांद (स०) । ५—चंचहि (कां०), गच—पचहं (स०) । ६—तारा (कां०), हरैं (स०) । ७—ललकारैं (स०) । ८—पुतरीं (कां०) । ९—जनु आई (स०) । १०—वल (कां०) । ११—नाग (कां०) । १२—सोक (स०) । १३—को (कां०) । १४—दुन्ह तौं (स०), वौं ताहि (कां०) । १५—अधिक कि (स०), अधिक क्रिहिं (कां०) । १६—तौ सरूप न भयो किह मोती (कां०) । १७—खोटैं (स०) । १८—स्यां जरे (कां०) । १९—सीप यह (कां०) । २०—कंजन (स०) । २१—जनु (कां०) । २२—जलन (स०) । २३—आइ (स०) ।

पुनि[१] का बरनौं चिबुक डिठौना । जिन मिल दीठ फेर नहीं ओनां ॥*
जिन[२] वह देखि सो देखि हेराना । तजि आपा तिहिं माहिं समाना ॥
सहज सुभाइ अवन[३] विनु[४] वना । ज्योइ[५] वन्या त्यो जाइ न भना[६] ॥
एक अनेक रूप होइ रह्या । वह वानिक[७] कवि[८] जाइ न कह्या ॥
जानहु वदन दीप उजियारा । तिहि तर सिमटि[९] रहा अँधियारा ॥
कैधों[९] राहु[१०] रकत[११] ससि चाखा । काढ करेज पाइ तर राखा ॥
कैधों कवँल कंदला माही । छकि अलि छीन परा सुधि नाहीं ॥
कैधों रूप कूप[१२] रस आसा । पेम दग्ध मन धसा[१३] पियासा ॥
किधों पेम पासा[१४] कर दाऊ । तिहि जग पिउ हारैं का जाऊ ॥

दोहा—चिबुक गाढ[१५] छवि निधि सदन, ससि उर तारन तोर ।
तिल[१६] ता[१७] माझ[१८] मनोज मन, धस्यो[१९] रसिक चितचोर ॥९९॥

दीरघ गिव[१] भायन[२] अस काढी । सुभर[३] पुछार भई जनु ठाढी ॥
जनु कस[४] बाग तुरी गहि लीन्हा । तमचुर चहै सवद अस कीन्हा ॥
हिया काढ जनु ठाढ परेवा । कैं मुक उचकि[५] भयो फर लेवा ॥
जनो प्रेम मद भरी सुराही । गहि[६] नवाइ रस लै सो[७] चाही ॥
सहजहिं कर्‌यी लटक जो होई । लोट परैं देखैं जो कोई ॥
जनु[८] संगीत नाच यह गरा । ग्रीव[९] मान आना अवछरा ॥
फुनि[१०] तिहि ग्रीव परी तर रेखा । घूँटत पीक प्रकट सव देखा ॥
तहा मुकत[११] लर छरा जो होई । तरक[१२] भरम राखैं सव कोई ॥
जो ढरि अलक ग्रीव पर आई । सो बनाव निज बरनि न जाई ॥

दोहा—जनु मयूर गहि अहि अलक, देख[१३] तिलक[१४] हियथार ।
परवत[१५] कुच पूजा करन, चला[१६] भेट लै हार ॥१००॥

दोहा—९९—१—फुन बरनू वह (का०) । * 'कां०' मे उत्तर पद नहीं है । २—जिहि बो (का०) । ३—अपन (कां०) । ४—फुन (कां०) । ५—ज्योंरे (स०) । ६—हना (स०) । ७—बान (कां०) । ८—जिन (स०) । ९—समत (स०) । १०—कैहन (स०), कहन (कां०) । ११—दाह (कां०) । १२—बरकत (कां०) । १३—कोप (स०) । १४—धमा (स०) । १५—वासा (कां०) । १५/१—गां (कां०) । १६—नल (स०) । १७—तिहिं (कां०) । १८—वात (कां०) । १९—विहस (स०) । २०—रस छोर (स०) ।

दोहा—१००—१—करयों (स०) । २—भांटा (कां०) । ३—संभर पछारि (कां०) । ४—कैं जनु तुरी वाग (कां०) । ५—अचक (स०) । ६—डार । ७—चाही (का०) । ८—समझहि ग्रीव (कां०) । ९—गर न्यो (स०) । १०—पुति (स०) । ११—निकट अछरा (कां०) । १२—रतन (स०) । १३—रेख (स०) । १४—मुलक (कां०) । १५—टप टप (का०) । १६—चर्चं (कां०) ।

सुभर भुजा साँचै जनु धरैं[1] । कुंदन कार[2] मीन मनु पहरैं ॥
कंचन दंड देहि अति सोभा । चौकन[3] इमि कदली[4] जस गोभा ॥
सर[5] पीनार करन जब लागी । कर कर[6] बेह मैंन हिय दागी ॥
तिहि दुख निसि दिन अजहुँ[7] पुकारैं । आपु पुकारैं आपुन हारैं ॥
सुरज कांति भुज कवन हथोरैं । रातैं जनो रुहिर सों बोरैं ॥
औ[8] अंगुरी सब रुहिर चुवाही । बरिन रुहिर न पियत अवाही ॥
पुनि पहरे ससि नखत अंगूठी । जनु[9] पावक राखसि गह मूंठी ॥
जो जिउ काढ़ हाथ पर लेई । सो तिन हाथन दिस्टि करेई[10] ॥
पहरैं बाहू टाड सलोने । डोलत बांह डुलैं गति लोने ॥

दोहा—देखि सलोनी डुलन गति, जो डोलत बाह[11] डुलाहिं ।
जो अडोल औ[12] अडिग जग, डोलहि[13] औ डग जाहिं ॥१०१

हिय सरवर कुच अंबुज करैं । संपुट बंधै करेरै खरैं ॥
निकसत किरन बदन ससि[1] दई । निपट कठोर सकुच होइ[2] गई ॥
ऊपर स्याम अधिक छवि छाई । ते अलि छौन बैठ जनु आई ॥
धरैं मैन दोउ लटू खिलौना । ऊपर स्याम लगाइ दिठौना ॥
ज्यों मनोज पिटिया[3] अब ताली । फिरी दुहाई सब तन लाली[4] ॥
जोवन जोर चढत हिय आवहिं । आपु न नवहिं जगत कहं नावहिं ॥
निपट अनीति करैं जब लागी । बांधे मैन लीन्ह बर[5] आँगी ॥
बालापनैं कीन्ह निकसाई । खोल मंजीर धरे औबाई ॥
मैन[6] जो पानिप सींचै बारी । नारंग फरैं भई निकसारी ॥

दोहा—अलख[7] पेम चौगान कों[8], हिया[9] खेल मैदान ।
कुच मनोज साजे तहाँ, मनु गति[10] गेंद निसान ॥१०२॥

दोहा—१०१—१—ढारी (कां०) । २—गरा तें मानो भारी (कां०) । ३ चटकन (का०) । ४—कदली की अस (का०) । ५—सिर सुभाइ कर (कां०) । ६—करकै पीठ नैन (का०) । ७—उरझ (कां०) । ८—उवा नगर सुठ (स०) । ९—मानो किरण चाद की छूटी (कां०) । १०—हरई (कां०) । ११—[illegible] (कां०) । १२—अस अधिक तेउ (का०) । १३—डोलि डोलि जयं ज [illegible] (कां०) ।

दोहा—१०२—१—दीन (कां०) । २—कीन (कां०) । ३—बैठहिं [illegible] (कां०) । ४—लाई (कां०) । ५—वर सागे (कां०) । ६—अभी पानी धौ [illegible] (कां०) । ७—अलक (कां०) । ८—हिय (स०) । ९—चाव (स०) । १०—[illegible] (कां०) ।

पेट पान पातर सुकुंवारू । औ[1] पानी धन करै अहारू ॥
देपत सवन सचिक्कनि सोभा । मन चल रपट परै ह्वै लोभा ॥
रपटत षिन[2] सुभुवंगम कारी । रोमावली डसी[3] हत्यारी ॥
ताके विष पुनि जिया न कोई । जो उन डसा वसा चल सोई ॥
जो कदाचि नागिन सों बांचा । तौ ठक्क[4] रूप देखि तिहिं[5] नांचा ॥
जौने[6] ठांवहिं त्रिवली वाढी[7] । ऊपर मेरु पयोधर घाटी ॥
बैठि रहै तिहि ठांहि बिसासी । लिपटै[8] वहै नागिन नगवासी[9] ॥
ततखन[10] डारि फासी कै मारे । नाभि कुवा गहिरै[11] गहि डारै ॥
बहुत हनी[12] कुछ सरह[13] न हारी । न्याव न वहां[14] होत बटपारी[15] ॥

दोहा—कालिंदी रोमावली, त्रिवली औवट घाट ।
नाभि भंवर मन पर्‌यो तहं, कहु निकसै किहि बाट ॥१०३॥

कर[1] जु[2] दीठ पीठ पुनि पाछे । वैरिन[3] उलट चली जनु काछे ॥
जाके दीठ परी वह पीठी । गिरै[4] पीठ दरसी तिन्ह दीठी ॥
जो देखे सो पीठ कै जानै । पीठ सरूप दीठ जग मानै ॥
वेनी पुनि जो पीठ पै परी । कालिंदी गिर[5] सो जनु[6] ढरी ॥
कै तन[7] मलय वास तिहि आसा । नाग आइ[8] लिपटे तिहि पासा ॥
मिले मूल[9] माया धन वाढी । सदा सो नाग रहै फन काढी ॥
सदा कंज[10] ताके मुप[11] मांही । जुगल[12] खंज तहां केलि कराही ॥
निरखि सो वेनी नाग निकाई । नाग पतार दुरै सब जाई ॥
जद्यपि फनहि काढ़ि दिखरावै । पै ते कंज खंज कहं पावै ॥

दोहा—विष अगोर[13] भौंहन लिये, मनि[14] मानहु[15] हरि लीन ।
अहि वेनी के मूर सों, राख सरन जनु दीन ॥१०४॥

दोहा—१०३—०—औपाली (स०) । २—काहन सुभूकन (स०) । ३—उसै (कां०) । ४—थकि (कां०) । ५—तिन्ह (स०) । ६—जो (का०) । ७—साही (स०) । ८—लेन (स०) । ९—वग· वासी (कां०) । १०—ते गुन दुर फांसगी डारे (कां०) । ११—घर वर कह (स०) । १२—हठी (कां०) । १३—सुध न सिभारी (कां०) । १४—देइ (कां०) । १५— वपारी (कां०) ।

दोहा—१०४—१—गीर (कां०) । २—यह जु (स०) । ३—अपछरा (कां०) । ४—करै बेठि (स०) । ५—कर (स०) । ६—मनु (स०) । ७—की तिन मिलें (स०) । ८—वसा सो वसा बिसवांसा (स०) । ९—मोद माना मन बाधे (स०) । १०—गंजत के (कां०) । ११—मन (स०) । १२—जो कुल (स०) । १३—अकूर (कां०) । १४—मन (कां०, स०) । १५—माथे (कां०) ।

केहर देखि बैठ बन[1] रहा ॥
बना लंक तस जाइ न कहा । लागेसि विरह कीन्ह[3] घर छाना ।
बसा न पूज[2] पियर भयी गाता । विख लै बचै विरह दुख दहैं[5] ॥
मसरी करि अहार नित रहै[4] । तिह अनखन[6] मानुष[7] कहं डसा ॥
सब तन रोम रोम विष बसा । जनु दुइ आध बीच[8] तिह[9] लागा ॥
चलत लंक लचकै जिमि तागा । छुद्रघंट झनकै कटि[11] लिए ॥
लचे[10] लंक भूमि पग दिए । ससि मूंठी महं रहा समाई ॥
निपट खीन[12] कछु बरनि न जाई । निज कटि की गति जाइ न पाई ॥
मन तहं जात खीन होइ जाई । चीन्हिस[13] जंमि लगन जिन्ह होई ॥
जीने देख खीन भा मोई ।

दोहा—विधि काहू दीन्हीं नहीं, चारों जुग यह लांक ।
भरी[14] साख यह[15] पांचन, लाँक चार को आंक ॥१०५॥

नाभि मो निपट लाज कै ठांऊं । हौं अबला केहि भांति बताऊं ।
पै जस काछ[1] काछ भई खरी । नाचा चहीं लाज कै परी ॥
मिरग खोज उपमा कित दीजै । जो[2] कबहूँ कहियै न कहीजै ॥
जोवन समुद सीपि तिहि मांहीं । स्वाति बूंद रस पाइसि नाहीं ॥
जिन्ह[3] हत लिये स्वाति कर बूंदा । टिकत[4] न अजहूं संपुट मूंदा ॥
कवंल कली पै सुरज न देखा । मुख बाँधे निकसी तिन्ह रेखा ॥
धौं को सुरज भाग को बली । जाके किरन खिलै सो कली ॥
धौं को भवंर बीधि रस माने । जीवन जनम सुफल कै जानै ॥
अति सुवास[5] ज्यो पुहुप न बासी । पाइ बास अलि भये कैलासी ॥

दोहा—गह[6] कैलासी कह मिटै[7], जगत भंवर होइ भूल ।
धौं[8] काके सेज्यां परै, कवंल[9] कली के फूल ॥१०६॥

दोहा—१०५-१—तव (कां०) । २—पवंज (स०) । ३—भेप (स०) । ४—लेई (स०) । ५—देई (स०) । ६—आंखन (स०) । ७—मानसहि (कां०) । ८—(स०) । ९—नहि (स०) । १०—चलै जुलंक पुहुम (कां०) । ११—गति (कां०) १२—कहें (स०) । १३—अनचीन्ह चीन्ह सकस (कां०) । १४—इही (कां०), (स०) । १५—तावचन की (कां०) ।

दोहा—१०६-१—काछ काछ (कां०) । २—जिउ को होन खेर तो कीजै (स० ३—जिहि रुति गई (कां०) । ४—निकट (का०) । ५—सुपास (स०) । ६ (का०) । ८—बहु (म०) । ९—सुकमन (कां०) ।

सुभर नितब सो कोमल परे[1] । मलियागिरि लोंदा करि धरे ॥
सोभित जाघ चलत गनि[3] छनी । ऊपर सुभर ढरारी[4] भली ॥
तिन्ह न पूजियै कदली गाभा[5] । जो सिर पाइ कीन्ह तौं का भा ॥
चाल मराल देखि परहँसे । बसनी छाड़ि सरोवर बसे ।
गज बन[7] मरहिं त्रिसूरि त्रिसूरी । धुनहिं सीस औ डारहिं धूरी ॥
चरन कँवल कोमल अति बने । राते ज्यों मेंहदी रंग सने ॥
मंजन लगि जल महं जब धरै । जान सो जल जावक अस परै ॥
रहै पटम्बर[8] पर दिन राती । कै सो ध्यान राजन[9] की छाती ॥
चमकहिं चूरा अनवट लोनी । सुन बिछियनि[10] धुनि बोलहिं मौनी ॥

दोहा—तिन्ह चरनन उरझा जगत, रहा आस जिय लाइ ।
सो पुनि धौं[11] का पर धरै, रीज न जानी[12] जाइ ॥१०७॥

सुन ससि रूप सूर मन बसा । प्रेम गहन गाढ़ै कर गसा ॥
केस सुग्रीव फांद ह्वै परै । प्रेम फंद परि बहुरि[1] न टरै ॥
बेनी नाग कोप धरि खाया । औतर[2] अमी सो अधर बनावा ॥
मुनि दुनिया ससि उआ लिलाटू । तिन्ह दरसन कारन भा लाटू ॥
वाके नैन ज्यों गहे कटारा । लागि हियै महं[3] भये[4] दुमारा ॥
नासिक खरग घात उर कीन्हा । औ मुख लोन लोन निहि दीन्हा ॥
दसन[5] भाव बरना जस कांधा । सोई लाग रहा[6] चित चौंधा ॥*
ग्रीउं लटक लोटन मन कीन्हा । भौंह[7] भवाय[8] चाक जिउ दीन्हा ॥
कुच हिय मैं डंबर[9] ह्वै परै । है जो कठोर कठिन ह्वै[10] अरे ॥

दोहा—असनि बान भृकुटी धनुक, तिन बीधे सब देह ।
त्रियमान दीसै[11] प्रगट, रोम रोम महं[12] बेह ॥१०८॥

दो०—१०७—१—धरे (स०) । २—मिले कार बूंदा कर (स०) । ३—कति (स०) । ४—धरारै (स०) । ५—सोभा (कां०) ६—नौ गोभा (का०) । ७—पुनि (का०) । पवित्र औ पर (का०) । ९—राजहि (कां०) । १०—बीछी (स०) । ११—वह (स०) । १२—जानि नहिं (कां०) ।

दो०—१०८—१—फुर ना तरै (स०) । २—अदिरवद (स०) । ३—मनु (वा०) । ४—इहै (स०) । ५—दरशन (कां०) । ६—रह्याहि हि (कां०) । *इस चौपाई के पश्चात् (स०) प्रति में १३ चौपाई और एक दोहा अधिक है । ये चौपाई और दोहा बाएँ पृष्ठ पर दिए हैं, कृपया ठीक करले । ७—भुवै (कां०) । ८—सुवाइ (कां०) । ९—दम्बर (स०) । १०—भै खरे । ११—यह दीसै (स०) । १२—तन (कां०) ।

राजा प्रबल प्रेम बस भयऊ। अस्थिर मन उदास होइ गयऊ॥
राज काज दिन चित्त न लागै। निसि निद्रा विनु[1] परै न जागै॥
तारे गिनत छिपहिं सब तारे। छिन न छिपै पुतरी के तारे॥
नींद[2] लाग तिन्हक[3] मग रोगू। छाड़ दिहेसि घर भेष वियोगू॥
जो मन राग रंग महं लावै। तिनहू न लगै पेम भरमावै॥
कल न परै व्याकुल[4] भै रहै। काहू सों मन मरम न कहै॥
सोचहं सोच जरै दिन रातो। जैसे दियो दिया कै बाती॥
पुछ्या[5] रही न दीसै आंसू[6]। दिन दिन घटै लाग तन मांसू॥
भा[7] तन पियर रात जो रहा[8]। सूरज बदन गहन मनु[9] गहा॥

दोहा—जिन्ह[10] घट[11] बासा पेम को, तिन[12] घट रकत न मांस।
अगिन तेज दोउ उफनत[13], चुइ[14] निकसै होइ आंस॥१०९॥

जद्यपि जीलौं पार बसाई। तौलों राखेसि अगिन दुराई॥
पै निदान इक दिन अनयासा[1]। दवी अगिन उर कीन्ह प्रकासा॥
भइ[2] तन ताप पर चंडा। भय संताप टूट दोइ खंडा॥
चित न चैन तरफै अतवानी। जैसे मीन तपै विनु पानी॥
कारै बिछू डांक जनु लावा। क वन[3] मिग्ग फांद मैं आवा॥
जनु गह बधिक[4] परेवा डारा। कै लोटन गहि[5] भुइं उतारा॥
अति व्याकुल छिन चैन न पावै[6]। पल पल पीर प्रबल होइ आवै॥
मुख उसांस निकसैं इमि तानी। मनमुख[7] होइ जरै तिन्ह छानी॥
असुवन परै भार उर आवै। मनौं[8] चूनगर चून बुझावै[9]॥

दोहा—तन मन अति व्याकुल विकल, छिन न[10] होइ विस्राम।
नैन[11] उसास तपन भई, मन्दिर भयो हमाम[12]॥११०॥

दो०—१०९-१—पुनि (का०)। २—पिंडहि (कां०)। ३—फीक मुख (कां०) ४—व्याकुलता रहै (कां०)। ५—कथिया (ग०)। ६—गरासू (स०)। ७—भा। मगर (स०)। ८—ग्रहा (स०)। ९—जनु (का०)। १०—जिह (कां०)। ११—त (स०)। १२ तिह (का०)। १३—उवत (स०), औटकर (कां०)। १४—कय (स०), चुवै (कां०)।

दोहा—११०-१—अवलासा (कां०)। २—भये तनु तो मनु (कां०)। ३—फु मृग फंदक फांद (कां०)। ४—तरक (कां०)। ५—कहं (स०)। ६—आवै (कां०) ७—सोहि (का०)। ८—जानों (कां०)। ९—बिछावै (स०)। १०—बिन (कां०)। ११—पलट (कां०)। १२—दमाम (स०)।

लखि यह परम बैद उठि आवा । पंच जनन कहं[1] आन सुनावा ॥
राजा अंग रोग कछु नाहीं । विरह बान सालहि उर माहीं ॥
तिहि के पीर चैन हरि लीन्हा । औसर[2] देख मन बावर कीन्हा ॥
काके अरुनि बान धौं छूटे । रोम रोम सगरे तन फूटे ॥
करहु उपाइ बिलंब न लावहु । राजा कह वह मीत मिलावहु ॥
नाहित कठिन पेम कै पीरा । दिन दोइ मे अति करै अधीरा ॥
पेम अगिन जौने घट परै । तन मन जार जीव[3] सौ अरै ॥
जौलौं[4] जीउ कहं पिउ[5] त मिलावे । पिउ मुख पानिप पान न पावै ॥
तौलौं[6] जरत रहै न सिराई । औ न घटै नित होइ सवाई ॥

दोहा—बेगि संभारहु सुधि करहु, राजा तन मन देहु ।
पल छिन अंजुरी[7] नीर ज्यों, छीजत है तन नेहु[8] ॥११५॥

ततखन प्रहत[1] सेन परधानू । आवा[2] तपत हुता जहं भानू ॥
आइ नवाइ सीस भा ठाढा । समै विचार बचन मुख काढा ॥
बड़ परताप अखंडित राजू । मन वांछित[3] पुरवै विधि काजू ॥
तुम्हरै पीरा लगौ[4] हमारै । चप[5] जोती तुम्हरे[6] उजियारै ॥
जो[7] तै प्रथिमीपति दुप पावा । औ[8] चल चाल नगर[9] महं आवा ॥
तुम्हरी बिथा नगर कहं[10] व्यापी । नगर कि मनु[11] सब दिवस संतापी ॥
जो देखे ताको मन गहा । काहू के मुख रकत न रहा ॥
जैसे गहन[12] सूरुज जब होई । जगत[13] पियर[14] देपै सब कोई ॥
काहू के तन मह जीउ नाहीं । जिउ सबको तुम्ह जिव माहीं ॥

दोहा—ज्यों जसुधा[15] सुत सुरति कहं, गोपी[16] भई अचैन ।
त्यों तुम सुख सुध स्वाति लगि, सीप भए जग[17] नैन ॥११६॥

दोहा—११५–१—कहि (कां०) । २—ओसु रेष (कां०) । ३—पेम (स०) । ४—जौलहि (का०), जो लहं (स०) । ५—पीन (कां०), पउ (स०) । ६—तौलहि (का०) तौ लहं (स०) । ७—अंचल (स०) । ८—मेहि (कां०) ।

दोहा—११६–१—परहत (का०), परघट (स०) । २—आव (कां०), ऊबा (स०) । ३—आछत (स०) । ४—आ लगो (स०) । ५—जगह (कां०) । ६—तुम राख (स०) । ७—जगतै (स०) । ८—उचला (कां०), ऊचला (स०) । ९—जगत मे (का०) । १०—मे (का०) । ११—मग (कां०) । १२—सेरजघन (स०) । १३—प्रघट जगत (स०) । १४—पीरो (स०) । १५—जसुधा सु सुरति कहि (कां०), चंदा सत सरप कहं (स०) । १६—कांपे भये (स०) । १७—नग हीन (स०) ।

बिथा होइ सो परघट कीजे । दुरैं रोग बाढ़ै तन छीजै ॥
श्रौ पुनि रोग जो मनहि समाना । कहैं बिना कछु जाइ न जाना ॥
कहौ मरम आपन जस आही । सेवक सों न दुराया चाही ॥
जो कौन्यों कामनि चित परी । कहो मंगाइ द्यौंहु[1] इहि घरी ॥
महाराज आयसु जग आगैं । कहं अस जीव जो राखै[2] मांगैं ॥
जो काहू राजा कै बारी । औरैं[3] देस सुनी उजियारी ॥
ताको रूप सुनत चित गहा । इहो सुगम कुछ चपरि न रहा ॥
पाती लिखि अब[4] बेगि पठाऊं । ज्यों के त्यों सुधि[5] सोधि मंगाऊं ॥
जो अपछरा दिष्टि महं आई । मंतर सक्ति सों देऊं मंगाई ॥

दोहा—आज राज परताप अस, इन्द्र नवावा माथ ।
जो चाहे सोई करौं, जगत तुम्हारे हाथ ॥११७॥

तिहिं उत्तर राजा तब बोला । बिरह मरम पोथा गर खोला ॥
सुन परधान कहौं तो पाहां । जैसी कछु बीती जिउ[1] माहां ॥
वह जु एक भाटिन तब[2] आई । जिन पदमिनि कै कथा सुनाई ॥
सोई कथा अगिन होइ[3] परी । तबसों सुलग सुलग सब जरी ॥
जब लौं धीरज संग पहुंचावा । तौलों तन यह बोझ उठावा[4] ॥
अब वह धीरज टूटि भुइं परा । तन निरास निरबल[5] होइ उरा[6] ॥
तातें अब हौं कहौ हंकारी[7] । बढा बिरह डारत मोहि मारी ॥
जो अब[8] बेगि होइ नहि मेला । तो जीवन अति[9] निपट दुहेला ॥
यहै निदान आइ नियरावा । देह जाइ कै होई मिलावा ॥

दोहा—प्रान बसैं चलि मीत पहं, मिलन आस तन प्रान ।
सो[10] आसा जिहि छिन छुटै, तिहि छिन मरन निदान ॥११८॥

दोहा—११७-१—लेउ (स०) । २—राखस (स०) । ३—उदै (कां०) । ४—तिहिं (कां०) । ५—उहावा (कां०) ।

दोहा—११८-१—मांहि (कां०) । २—जब (स०) । ३—उर (कां०) । ४—उहावा (कां०) । ५—निर्मल (कां०) । ६—उरा (स०) । ७—हुकारी (स०) । ८—इहि (कां०) । ९—पुनि (का०) । १०—स्वांसा (स०) ।

मो सों विनती पै वन आवैं । होइ सो वहै जो पिउ कौं भावैं ॥
हौं अधीन धनि दीनता[1] करूं । जिउ ले हाथ पाइ तर धरूं ॥
पूंजी यहै प्रान हा मोरैं । सो कीनो न्योंछावर तोरैं ॥
तोरैं पेम प्रान जो जाई । तो यासों पुनि कहा भलाई ॥
मैं आपा[2] हारा तै जीता । अब तोहिं[3] वनै गो तू कर मीता ॥
जो कोंऊ जा लगि जिउ देई । ताकी सुधि सोऊ[4] पुन लेई ॥
ओ पुनि यही वात कछु नाहीं । सब जग जीव देइ तू[5] माहीं ॥
जाकों कृपा दृष्टि कर हेरसि । ताही के दुख दाह निवेरसि ॥
तोरैं हाथ वात सब वाला । चहै[6] सो जाहि देइ जैमाला ॥

दोहा—जग जानै बाउर भयो, आप आप वतराउ ।
ए वाते सब मीत सों, कहा सुरति अति नाइ ॥१२३॥*

जब इहि भाति विकल भयो राजा । वोलै लाग[1] वचन तजि लाजा ॥
लोग कुटव मीत अनुरागे[2] । चहूं पास समझावन लागे ॥
राजा तुम सजान[3] सयाने । वुद्धिवान पंडित जग जाने ॥
कौने मति तुम कहं सिख दीजै । पै जब[4] जीव जरै का कीजै ॥
पेम पंथ जानहु न सुहेला । और निवारत निपट दुहेला ॥
जिन पचि मरो राज सुख मानो । कांने काज देह दुख सानो ॥
जहां पेम तहं भूख न प्यासा । जगत भोग सो करै उदासा[5] ॥
चलै देस महं हास कहानी । राजन महं होइ हौ अपमानी ॥
धीज धरो मन जिन भरमावो । जन पठाइ पिउ[6] सोध मंगावो ॥

दोहा—विरह घाव[7] उर भूप कै, ताको मिलन उपाव ।
धीज वचन ज्यों ज्यों सुनै, लागै घाव पर घाव ॥१२४॥

दोहा—१२३—१—तीया (स०) । २—आयो (स०) । ३—ताहि (कां०) । ४—सोइ पै (कां०) । ५—तव (कां०) । ६—जियै (स०) । * इस दोहे की नीचे की पंक्ति 'कां०' प्रति में पहले है ।

दोहा—१२४—१—लोग (कां०) । २—सर आगे (कां०) । ३—सुजान (कां०) । ४—अस कहै सोई पै (का०) । ५—निरासा (कां०) । ६—तिहि (कां०) । ७—गहाव (स०) ।

सुनि राजा सिय वचन दुखारी । प्रेम अगिन चिनगी[1] मुख झारी ॥
का मोहि सिख्य सीख[2] सिखरावहि । जरत अगिन तेल जिन नावहि[3] ॥
पेम समुद्र अथाह अपारा । तहां परैं को काढन हारा ॥
नदी समाइ जाइ इक ओरा । का सिख बूंद करैं तिहिं[4] जोरा ॥
जब उर पेम अनल दौं लाई । अंजलि जल छिरकैं न सिराई ॥
पेम पहार अकास उचाहीं । सिख दोना[5] ना ऊपर ताहीं ॥
औ[6] तुम पेम खेल नहि खेला । भए न अजहुं पेम कर चेला ॥
पेम खेल कर मरम न जानो । झूठे सीखैं कहिर[7] न छानो[8] ॥
पेमी सीप[9] दग्ध जिन लाई । अगिन जरा मेकें न सिराई ॥

दोहा—मोरे मन[10] अरु जिउ दोऊ, मीत[11] सुरत कर गेह ।
नैक[12] स्वांस तन पेम लग, सो तुम काढे देहु ॥१२५॥

जे तुम सबै सीख मोहि देहू । वचन वचन कर ऊतर लेहू ॥ *
यहे तुम प्रथम कहे हो हेला । पेम पंथ जानहु न सुहेला ॥
सो तो सूझत तुमहि दुहेला । जिनहुं न भयो पेम कर मेला[1] ॥
उपज न हियै विरह वैरागू । भयो न अगवहुं[2] कै पिछलागू ॥
तिन यह पंथ सुगम करि जाना । जिन्ह कर पेम पंथ मन[3] आना ॥
हौ सिख सीस चरन कर धाऊं । पैग[4] पैग चल चाव बढ़ाऊं ॥
बसौं न बीच रैन दिन चलूं । तौ लगि जौ लगि मीनहि मिलूं ॥
ज्यों ज्यों चलूं उमंग त्यों होई । पेम[5] पंथ पर थकै न कोई ॥
जो तन हार रहै तजि जाऊं । मन पग पिउ मग सों न डिगाऊं[6] ॥

दोहा—पेम पंथ मोहि अति सुगम, भूख प्यास डर नाहि ।
कसक[7] करेजै काटहीं[8], नीर[9] सु नैनन[10] माहि ॥१२६॥

दोहा—१२५—१—जगा (स०) । २—सिखहि (कां०), सीखो (स०) । ३—पावो (कां०) । ४—तौ (स०) । ५—सिपरहि देपन उपराहि नांई (का०) । ६—उत्तम (स०) । ७—रहर (कां०) । ८—चानहं (स०) । ९—सिपहि (कां०) । १०—मन उरझा औ मीत कै (कां०) । ११—सुरति रही कर (कां०) । १२—निवग (स०) ।

दोहा—१२६—*जयपुर की प्रति में इस चौपाई के आगे छटवीं चौपाई है:—"हौं सिख सीस……" । १—चेला (कां०) । २—अबैहि कौ (कां०) । ३—महं (स०) । ४—वेग वेग कर (कां०) । ५—पेक नाव चढ़ि (स०) । ६—निधि गाऊं (स०) । ७—सकै (स०) । ८—काखहीं (स०) । ९—हीन सों (स०) । १०—नयने तिन (स०) ।

पुनि तुम कहा पेम पथ हेला । ओर निबाहत निपट दुहेला ॥
पेम पंथ महं ओर न कोई । उर पिउ[1] ओर छोर सब सोई ॥
पेमी पेमहि ओर न चाहै । यहै नेम[2] गहि ओर निबाहै ॥
पेम समुद्र मांझ जो परै । ओर छोर[3] कर आस न धरै ॥
चाहै[4] ओर सो[5] आपन ओरा । ओर आस तजि भजैं[6] पिउ ओरां ॥
जाकहं नेह देह सों होई । जनम अकारथ खोवै सोई ॥ *
सीसै[7] एक ओर कै डारै । तब इहं ओर आइ पग धारै ॥ *
पेम खेल महं माथे बाजी । सो खेलै जो इह पर राजी ॥
यह देखो[8] पुनि अचरज[9] रीता । जो हारै जानहु[10] तिन जीता ॥

दोहा—पेम समुद्र अपार अति, नाहिं[11] ओर नहि छोर ।
जे बूड़े[12] सोई तिरै, यहै पेम दवि[13] ओर ॥१२७॥

पुनि मोहि इह[1] सिच्छा गह आनहुं । जनि पचि मरो राज सुख मानहुं ॥
किहि बिधि होइ राज सुख भाई । जो न मिलै पीतम सुखदाई ॥
तुम्हरे दिस्टि राज जो[2] आवा । सो न राज यह[3] छरे छरावा ॥
दुख समूह तुम सुख कै माना[4] । देखो का यह जगत भुलाना ॥
यह सम्मति जो सपन समाजू । तिन्ह कहं[5] भूल कहौ[6] जिन राजू ॥
छूछे बाजहि राज निसाना । का तिहिं पर जिउ धरौ गुमाना ॥
हौं अस राज न मन मैं लाऊं । जिहिं सुख उरझि मीत बिसराऊं ॥
जो जिउ[7] मांझ मिले पिउ सोई । तौ यह राज कुसल पै होई ॥
नाहित पेम अगिन तन जारौ । झूठे राज जनम का हारौं ॥

दोहा—हार जनम राजा घने[8], गए उधांइ निसान ।
ते जीते जेई[9] परै, जूझ पेम मैदान ॥१२८॥

दोहा—१२७–१—प्रेमी ओर छूर पुनि (का०), उर पिउ छोर सब (स०) । २—प्रेम कहि (कां०) । ३—ओर छउ की आस न (का०) । ४—जाही (स०) । ५—ओर सही ओरा (कां०) ६—पहुँचै छोरा (कां०) ।* (कां०) । प्रति में यह चौपाई नहीं है । ७—सबही (कां०) ।* (कां०) । प्रति मे इस चौपाई के पश्चात् यह चौपाई है:—प्रेम ही ओर न मागो कोई । मौसी का घर प्रेम न होई । ८—दुखो (स०), दुष (कां०) । ९—अचरज है (कां०) । १०—जावैं तन (कां०) । ११—नातिहि (कां) । १२—डूबे (स०) । १३—विधि (स०) ।

दोहा—१२८–१—आंह (स०) । २—इहि (कां०) । ३—ह्वं (कां०) । ४—जाना (का०) । ५—गहि (कां०) । ६—गहो (कां०) । ७—जिहि (कां०) । ८—बने (कां०) । ९—जेवर (कां०) ।

पुनि तुम यह सिप[1] वचन वखानीं । कौने काज[2] देहं दुख सानीं ॥
का यह देह अमर तुम जानी । जा लगि भयो[3] पेम अपमानी ॥
देह निदान जा[4] कहं आई । भलै जो पेम पंथ महं[5] जाई ॥
का जीवन जग[6] पेम विहूना । अछत प्रान तन पंजर सूना ॥
इहिं[7] के सुख तुम कहं का लाहा । कोटिक[8] जनम तुमहिं इन दाहा ॥
बार बार मर मर औतरई । याही देह मोह कैं वरई ॥
अपनी जात देह तुम जानी । अजहूं समझौ रे अज्ञानी ॥
जैसे घट पट भीतर न्यारा । तैसें तुम यह[9] घट मंझारा ॥
अपना भूले मोहि भुलावहु । पेम छुड़ाइ देह महं[10] लावहु ॥

दोहा—जो पीतम के पेम सों, मीठी[11] होती देह ।
सती[12] पेम लगि देह कौं, जार न करती खेह ॥१२९॥

पुनि तुम मोहि भास यह[1] भासा । जहां पेम तहां भूख न प्यासा ॥
मोरे पेमहिं[2] भूख पियासा । पेम छाड़ि दूजी नहिं आसा ॥
भोजन भूख पियासहु पानी । ए नहिं भुक्ति[3] पेम रुचि मानी ॥
इहै भूख मोहिं और न कोई । पेम भूख इहं भूख न होई ॥
खाएं मैं जो वढ़ा तन मांसू । सो तन अंत होइ पुनि नासू ॥
मैं मन[4] अपना सत कैं वरा । तन सों निकस पेम जिउ परा ॥
एहीं भूख जगत सर[5] नावा । पेम नेम सब कर विसरावा ॥
का सुख होइ जो भूख न होई । भूख समान सत्रु नहिं कोई ॥
सो तुम भूख मीर[6] कै जानी । पेम कथा कछु मनहि न आनी ॥

दोहा—जो यह पेम विलास सो, भूख भली निवि होइ ।
पौन रोक अध्यातमी, भूख न[7] डारें खोइ ॥१३०॥

दोहा—१२९–१—मुख (स०) । २—राज (स०) । ३—वहै (स०) । ४—जाको (स०) । ५—पर (कां०) । ६—वग (स०) । ७—नेह केह (स०) । ८—कौतुक (स०) । ९—भया (कां०) । १०—मन (कां०) । ११—नीकी (स०) । १२—सवंते (स०) ।

दोहा—१३०–१—बहु (का०) । २—प्रेम न भूख न प्यास (कां०) । ३—भगति (स०) । ४—वह इहि नासत (कां०), मन अब नासत (म०) । ५—सब (कां०) । ६—मूर (का०) । ७—निदारहं (स०) ।

पुनि तुम मोहि उपदेस बतावहु । जन पठाइ पिउ[१] सोध मंगावहु ॥
वड़ी रजाई ऊंच दुवारा । सब कर तहां कहां पैसारा ॥
करहिं द्वार पालक कठिनाई । आयसु[२] बिना पवन न ढुराई[३] ॥
कै सो जाहि जो ग्याता होई । जिहि[४] ओ राजहिं भेद न होई ॥
ग्यातहि[५] जात[६] अटक कछु नाही । को बरजै आने घर जाहीं ॥
कै सो जाहि जिहिं आप बुलावै । पेम बसीठ होइ[७] पहुंचावै ॥
जो जद्यपि पहुंचै उत कोई । तौ आवन पुनि उलटि न होई ॥
हेरि रूप वह[८] जाइ हिराई । तिहिं मिल आगा देइ गवांई ॥
इहै[९] कठिन सोध[१०] पिउ केरा । कोउ न फिरा जिनहिं मुख हेरा[११] ॥

दोहा—काहि पठाऊं पीऊ पहं, को[१२] दो जिउ को होइ ।
एक[१३] जीउ के देइ बिनु, पीउ[१४] न पावै कोइ ॥१३५॥

जद्यपि राजा कहं[१] समझावहिं । पेम समुद्र थाह नहिं पावहिं ॥
एक सुनै राजा दस कहै । अमनक[२] लहर न राखे रहै ॥
बाढा विरह उपज वैरागा । मन भा भंवर कंवल अनुरागा ॥
राजा पेम गरंथ सुनावै । का कोउ बारापड़ी पढावै ॥
जे सब सीख सिखावन गए । पेम कथा सुनि पेमी भए ॥
सुन पेमी मुख वचन दुखारे । सबही पेम आंसु चख ढारे ॥
अपनी सीख बिसर सब गई । उलटी पेम सीख उन लई ॥
ज्यों ज्यों राजा करै बखानू । रोवहिं सुनहिं लाइ मन ध्यानू ॥
पेम समूह सभा होइ रही । अस्तु[३] प्रवाह नदी जल वही ॥

दोहा—राजहं समुझावन गए, आए समुझ गवांइ ।
आग बुझावहिं तेल सों, पुनि[४] तेलहि जरि जाइ ॥१३६॥

दोहा—१३५–१—कै (कां०) । २—अयस (स०) । ३—धराई (स०) । ४—जिन्ह उर अजहु (स०) । ५—ज्ञानहि (कां०) । ६—ज्ञात अतक (स०) । ७—विनू (कां०) । ८—मन (स०) । ९—इतही कथन (स०) । १०—सुध (स०), सुद्ध (कां०) । ११—घेरा (का०) । १२—गुडी (कां०) । १३—जों एकै सुद्ध देइ पुनि (कां०) । १४—पंथ (कां०) ।

दोहा—१३६–१—कसि (का०) । २—लहरै ऊडि न राखी (कां०) । ३—ऐसो (स०), अंश्रु (कां०) । ४—विना घेउ (स०) ।

राजहिं पवन अगिन भा पेमू । भूला सबै देह कृत नेमूं ॥
रातहिं दिवस रहै बैरागा । गइ तन सुरत पेम मन लागा ॥
राज काज सब दीन्ह बिसारी । लीन्ह पेम कहं[1] आज्ञाकारी ॥
जित देखै तित पीउ पियारा । ताही रूप तकै संसारा ॥
आपा बिसर वही[2] होइ रहा । ऐसे गहन[3] पेम मन गहा ॥
सोई[4] जाप जपै हर स्वासा । और छाड़ि दीन्हेसि सब आसा ॥
जो कछु बात रहा[5] मुख चाहा । बात कहत वह सुरत निवाहा ॥
बांधी गुड़ी[6] डोर जनु[7] लाई । एकौ स्वांस अचेत न जाई ॥*
का भा कथै[8] जो पेम कहानी । ऐकौ पेम पगे[9] तब जानी[10] ॥

दोहा—मिला जो चाहै पीऊ सों, तो[11] पेम करो गह[12] नेम ।
प्रेमी[13] प्रीतम[14] मिलन कौं, बीच बसीठ सो पेम ॥१३७॥

जो कोऊ जाके रंग राते । सोऊ पुनि ताके मद माते ॥
जो जिहिं चहै चहै तिहिं सोऊ । एकहिं ताप तपै मिलि दोऊ ॥
पेम बसीठ एक दुहुं ओरा । वहै सुरत डोरी कर जोरा ॥
साची प्रीत न रहै दुरानी । जिन जामें लाई तिन जानी ॥
तन यह दिस्टि मात्र लौं[1] न्यारा । सो एकइ जो जानन[2] हारा ॥
औ[3] पुनि अचल प्रीत जब होई । तब तिनहूं महं भेद न कोई ॥
लैलै[4] उहां जो[5] रकत कढावा । वहां मजनू कै[6] नैनहि आवा ॥
अंतर[7] तौलौं देइ दिखाई । जौलौं मैं तू बीच कचाई ॥
तनमै भए[8] न अन्तर कोई । तन औ प्रान सो एकै होई[9] ॥

दोहा—तन[10] सब ताहि[11] अतन महं, अतन सबै तन माहं ।
वही अतन तब मैं[12] भयो, अतन दुतिय पुनि[13] नाहं ॥१३८॥

दोहा—१३७-१—की (कां०) । २—वैह (स०) । ३—कहन (स०) । ४—जोई (स०) । ५—कह्या (कां०) । ६—कड़ी (स०) । ७—जिन (स०) । *'कां०' प्रति में नीचे की चौपाई पहले है । ८—भायें जो प्रेम (कां०) । ९—चकें (कां०) १०—ज्ञानी (स०) । ११—सु (कां०) । १२—कहिं (कां०) । १३—प्रेमै (स०) । १४—प्रेम (कां०) ।

दोहा—१३८-१—तौ (कां०) । २—जाबिन (स०) । ३—और (स०) । ४—उहां लैलैं (कां०) । ५—पै (कां०) । ६—ही के वहि (कां०) । ७—अन्त (स०) । ८—नहीं (कां०) । ९—सोई (स०) । १०—तब (कां०) । ११—नाए (स०) । १२—मन (कां०) । १३—दुतिय तब नाहं (स०) ।

जद्यपि धाइ चतुर अति खरी । वारी पुनि पटरस[1] फर फरी ॥
बोली सुनौं धाइ हौं वारी । मीठे दूध सीचि तुम पारी ॥
किहिं कारन मोसौं मन मैली । काहे बातें करी[2] कमैली ॥
अनखातेइ[3] जानत[4] हौं डरौं[5] । नागन्ह भरी मौन होइ गरौं ॥
कही न कौन चूक मैं करी । जातें कहौ आन चरपरी ॥
हौं तो खाइ खेल हौं जानौं । और बात मन[6] कछू न आनौं ॥
धौं पून्यौ[7] ससि किहिं घुमराई । औ कस धरहर पवन डुराई ॥
किरन रोकि कारौं[8] कग दीया । जिहिं महं बरई जोवन घीया ॥
ना चौमास न चातक जानौं । ना खंजन न मेघ पहिचानौं ॥

दोहा—धाइ मिली तिहिं फून ह्वै, काढा चहै फुनेल ।
वह सुखरी रुखी भई, जनु इन तिलन न तेल ॥१४३॥

जद्यपि वारी वात[1] बनाई । पै उत[2] ऐसी खोर खिलाई ।
तिन जाना कारन भा कोई । बिन कारन यह रुदन न होई ॥
ततखन गई जहां पटरानी । बैठी राजमती[3] परधानी ॥
जाइ जुहार नियर भइ ठाढी । समौ[4] विचार[5] वात मुख काढी ॥
रानी कुछ वारी अनभली । रूखे वदन रहै कस[6] मली ॥
दीपक अछत तेल अरु वातीं । ज्यों घुमराये[7] भौंरे[8] राती[9] ॥
जैसे कवंल कली संभवारैं । औ कुमुदनि रवि किरन निकारैं ॥
औ अहार पुनि[10] सूछम करई । पान पुहुप पर चित्त न धरई ॥
औ मन[11] पुनि तन मैं[12] घट रहै । बूझ रही कछु मरम न कहै ॥

दोहा—कै निस सपने मैं डरी, कै[13] दिन सांपर ताई ॥
कै तन बिथा प्रवट भई, निज कछु जान न जाई ॥१४४॥

दोहा—१४३–१—घट (स०) । २—कहो (कां०) । ३—इन पाटी (कां०) । ४—बातें (का०) । ५—जरूं (कां०) । ६—कछु मनहि (कां०) । ७—पूज्यौ (स०) । ८—का उगस (स०) । ९—जिन (स०) ।

दोहा—१४४–१—कीन्स दुराई (का०) । २—ऐसी इन क्यूं (स०) । ३—राजपती (कां०) । ४—औसर (कां०) । ५—देपि (कां०) । ६—गत (स०) । ७—धमगई (स०) । ८—फरहर (स०) । ९—हिय राती (स०) । १०—सूछम अति (कां०) । ११—सुनि (कां०) । १२—मन (स०) । १३—की कई (स०) ।

माता सुनतहिं खिन[1] जर गई । चकमक रुई झार जनु दई ॥
इत वालक पग[2] गड़े जो कांटा । सो मां कै आंखिन में आंटा ॥
मात मोह अस मन[3] नहिं धरै । पसुइ[3] जाय जाम कै करै[4] ॥
जो माता कर[5] मोह न होई । पसु पंछी जग जिवै[6] न कोई ॥
मोह बंधी ततखन उठि धाई । वारी हुती[7] जहां तहं आई ॥
देखि तो पिरी[8] अंब ज्यों भई । पिचक[9] हीय नारंग होइ रही ॥*
हुती जो गल गल ज्यों रस भरी । सो अब सूक भई खर[10] हरी ॥
हुते कपोल जो सेव ललाई । ते अंजीर भए मुरझाई ॥
देख जंभीरी ज्यों मन खाटा । मां[11] का हिय दारिम ज्यों[12] फाटा ॥

दोहा—बूझसि[13] वारी नित अमी, सीचौं करौं संभार ।
जोवन नवल वसंत महं, किहि कारन पतझार ॥१४५॥

कौन विथा कांटा होइ परी । जिहि के खुटक फूल भा करी[1] ॥
मुख दरपन कौने गुन झांई । कै धौं[2] देख छरी परछांई ॥
मन[3] सरेख कैस होइ रहा । किन[4] ससि वदन गहन होइ गहा ॥
कौनह ताप तई[5] तुम छौंने । कहो उपाइ करौं हौं[6] टोने[7] ॥
जो कछु देखि छरावा छरी । कहु सो जतन करौं इहि घरी ॥*
जो निसि सपन देखि भरमानी । सपना सांच न जानहिं ग्यानी ॥
इही भरम जगत[8] सब भूले । फिर फिर दुख पलना पर झूले ॥
नातर सबै राज अधिकारी । सपनै महं होइ रहै[9] भिखारी ॥
सपन भरम मिथ्या कै मानहुं । भूल अभाव भाव जिन जानहुं ॥

दोहा—सांच न समझहु वह[10] समझ, जो[11] सपना समझै सांच ।
साँच[12] होइ तो छिनक[13] महं, उठ न जाइ पुन[14] नाच[15] ॥१४६॥

दोहा—१४५—१—थन (स०) । २—गडै जु (का०) । ३—मोहन धरती (स०) । ३—वस होइ काम जाम की (कां०) । ४—करतीं (स०) । ५—करमो (कां०) । ६—चहैं (कां०) । ७—वैठी (कां०) । ८—प्रेम अंब (कां०) । ९—तचक (स०) । * कां० प्रति में नीचे की चौपाई पहले है । १०—थर (स०) । ११—कामर (कां०) । १२—ह्वै (का०) । १३—पूछसि (कां०) ।

दोहा—१४६—१—गरी (स०) । २—दिन (स०) । ३—राह की सरन (कां०) । ४—पिन (कां०) । ५—नैन (कां०) । ६—इहि (कां०) । ७—स० प्रति मे खंडित है । * का० प्रति मे नीचे की चौपाई है । ८—जीवन पट (कां०) । ९—गई (कां०) । १०—सो (कां०) । ११—कां० प्रति में यह शब्द नही है । १२—साच न होइ (कां०) । १३—स० प्रति में नही है । १४—तन (कां०) । १५—मांझ (का०) ।

[illegible]

दोहा—जिनि [illegible] ॥१५१॥

[illegible]

दोहा—[illegible]
जानो [illegible] आपकों, जो [illegible] ॥१५२॥

दोहा—१५१—१—गानी (कां०) । २—जो पुनि (स०) । ३—अन देखि (कां०) । ४—आउ (कां०) । ५—तो (कां०) । ६—मन (स०) । ७—जिहि (कां०) । * स० प्रति में तीन की चौपाई है । ८—हट (स०) । ९—दुख (कां०) । १०—वर्न की (कां०) । ११—रही (कां०) । १२—मति (स०) । १३—तासों (कां०) । १४—आगना कहि (कां०) । * इस चौपाई के पश्चात् 'स०' प्रति में निम्नलिखित चौपाई है जो 'कां' प्रति में नही है :—

दोहा—१५२–१—गनि छितहि (कां०) । २—बूझा (स०) । ३—जो (स०) । ४—पीऊ (कां०) । ५—पाप वोह (कां०) । ६—इन (कां०), उन (स०) । ७—जब वह (कां०) । ८—रही (स०) । ९—नही (स०) । १०—अनजाना (स०) । ११—तव माना (कां०) । १२—तब (कां०) । १३ मातै रही (स०) । १४—मधु (कां०) । १५—मधु (कां०) । १६—वोह (कां०) । १७—तिन (स०) ।

अब अति विकल भई दुख पावै । बढ़ा विरह छिन चैन न आवै ।।
छिन छिन बरख बरख पर जाई । दिन बीतै तो निसि न बिहाई ।।
जो निसि घटै तो दिन पुनि आगैं । कांटा भई सूख नित जागै ।।
दिनहूं लिखैं चित्र अब रहै । धाइ मआँ बूझहिं[1] तब कहै ।।
बहुतैं गुन या मूरत मांहीं । चिंता रोग रहै कछु नाहीं ।।
मोरे देह सूख[2] अस चली । सो कछु बानन देखी भली ।।
धौं कछु रोग देह महं आवा । तिहि कारन मूरत मन लावा ।।
इहि मिस[3] कह मूरति गह[4] रही । मूरत भई[5] एक टक छई[6] ।।
पलक लगत लागहि मनु[7] बाना । भौंहं धनुख राखी तिहि ताना ।।

दोहा—पलक न लागत पलक सों[8], ते बरुनी[9] इन भाइ ।
मनो[10] डोर[11] मखतूल कै, टागी[12] मोहन लाइ ।।१५३।।

काया विरह[1] अगिन मइ भई । जरहिं हाड़ भाठा होइ तई ।।
माथै हाथ पेम कर[2] धरा । लगन सांकरन कस कस परा ।।
नल हिय[3] लाग रहिस[4] रस[5] जोई[6] । भई विकल[7] लाहन जनु बोई[8] ।।
रही न नेक रूप घट जोती । खरी खोर फेरी जनु पोती ।।
पेमी[9] पेम मद मन मतवाला । चला करहि दो नैन पियाला ।।
चाखै कांख करेजै धरै । पिउ मुख लोन लाइ वह तरै ।।
पेम दाह फुलका[10] उर परे । बेई दाख दाना उर धरे ।।
निसि दिन रहै पेम[11] मदमाती[12] । कंत पियारे के रंग राती ।।
नेक न निमत[13] होइ मतवारी । सह न सकै खिन अधिक[14] खुमारी ।।

दोहा—छूंछी[15] बातैं मुख कहै, मिलै न प्रीतम पीव ।
जौ लगि[16] साची प्रीति सौं, जरै न पिउ लगि जीव ।।१५४।।

दोहा-–१५३–१—पूछै (कां०) । २—मूक (कां०), एक (स०) । ३—मूरत मिसकै (कां०) । ४—इहि कही (कां०) । ५—इहि (कां०) । ६—चही (कां०) । ७—जु (कां०) । ८—जे (कां०) । ९—तिहिं बर्नी इहि (कां०) । १०—जनु (कां०) । ११—डोरा (कां०) १२—ताके (कां०) ।

दोहा—१५४–१—अग्नि विरहै (कां०) । २—गुर (कां०) । ३—इहि (कां०) । ४—भई (कां०) । ५—हिय (स०) । ६—जोसी (कां०) । ७—नगुनन (स०) । ८—बोसी (कां०) । ९—पीय (कां०) । १०—फंका (कां०) । ११—अहै (कां०) । १२—अनुरागी (स०) । १३—ममत्त (कां०), निमित (स०) । १४—अवह (कां०) । १५—छूंछी (स०) । १६—जब लागे प्रेम सों (स०) ।

इक दिन बिरह गाह उर[1] गही । बैठ इकंत सोंचतो[2] कही ॥
आपहिं आप और नहिं कोई । जिमि जनु दूजा दूजा[3] संग होई[4] ॥
हियरा[5] कुवा उमग होइ रहा । मन बैराग लहिर[6] होइ बहा[7] ॥
सुरत मात[8] अंखिया नैन[9] गारी । कोटिक बार भरी[10] भर ढरी ॥
हता जो नीर नैन सो भरा । फिर हर नीर निगारिन परा ॥ *
सुरत ध्यान पिउ सों अनुरागी । जानै फिरै बिरह बैरागी ॥
पीतम सुरत करनि कहों[11] न थोरी । तब जग छांड़ि बहै जो तोरी ॥
अब लगि बिरह बान से रहे । रोमहिं रोम बेहि[12] तन[13] रहे ॥
अब लागै सो घाव पर लागै । जिउ अकुलाइ गहै तन त्यागै ॥

दोहा—जदपि जीउ तन त्यागि कै, चैन[14] मिलै मोहि जाउ[15] ।
पै मन लाव[16] कि तन प्रदल, जीउ सो चाहि समाइ ॥१५५॥

पिउ जिउ तू सों[1] नूतन कर[2] गाहीं । मोहि जिउ को संसा[3] रहु नाहीं ॥
यह जब तब तोसों मिल रहा । सबहूं अनमिल जाइ न कहा ॥
निज जिय थाम अनत तन गौरा । यह[4] मन भूल गहै[5] जिउ[6] मोरा ॥
तिन कारन बिनती हौं करौं । हा हा खाइ शीश भुइं धरौं ॥
तन होहि लगि बहुत दुख पावा । रूप रंग रस सबहिं गवांवा ॥
बिरह अगिन तरनी तन बारा[7] । नूरन नूरन रहा होइ छारा[8] ॥
रहा न रकत न मास न गनको । हाड़ करार रहे होइ तिनको ॥
नसें सो ऐंठ तांत होइ गईं । तेऊ[9] अब टूटै पर[10] भईं ॥
बिरह राग सर बहुत चढ़ावा । ताहूं पै नित[11] करै सवाना ॥

दोहा—प्रीतम जिउ[12] तू[13] तन अलग, सदा रहे तुव पास ।
बिरह त्रास[14] दुख तन रहे, मोइ जाइ निरास ॥१५६॥

दोहा—१५५—१—दुख (का०) । २—एक ठां (कां०) । ३—दूजा (स०) । ४—सोई (स०) । ५—हिय को इन उमंग भर (स०) । ६—रहत (ग०) । ७—भया (कां०) । ८—माल (कां०) । ९—ले घरी (कां०) । १०—पड़ी (स०) ।* जयपुर की प्रति मे यह चौपाई ऊपर की चौपाई (सुरतमात अंखिया···) के पहले भी लिखी गई है और वहाँ इसका उत्तर पद इस प्रकार है:—'भर भर नीर गयाधर परा' । ११—किन (स०) । १२—वहै (स०) । १३—होइ (स०) । १४—नैक (का०) । १५—आइ (स०) । १६—जाऊ (कां) ।

दोहा—१५६—१—तोसों (कां०, स०) । २—लगवांही (कां०) । ३—सांसा (स०) । ४—तिहि (कां०) । ५—गहै (स०) । ६—मन (स०) । ७—गारा (कां०) । ८—यारा (स०) । ९—तै सोऊ (स०) । १०—नर (कां०) । ११—प्रीति करै सो आवा (का०) । १२—जी (का०), ज्यों (स०) । १३—जो (कां०) । १४—निरास (स०) ।

पिउ दे स्रवन विनी सुन थोरी । तो विन वनति[1] मुकति कत मोरी ।।
तन[2] भुइं पर मन फिरै[3] अकासा । चँग ज्यों सुरत डोरि कै आसा ।।
अति व्याकुल तन तरफै परा । ज्यों पंछी उड़कै[4] जनु गिरा ।।
ना जिउ निकस जाइ न रहै । खींचा खींची महं तन दहै ।।
जदपि तोर चित्र मो पाहां । रात दिवस चितवों तिहि माहां ।।
अंखियां तो तासों[5] विरमाऊं । मन चंचल आवै न उहाऊं ।।
सो तोरे निज मूरत चाहै । आप दहै औ तन कै[8] दाहै ।।
जिय[9] निज तत्त[10] रूप कर भूखा । तिहि कर चित्र दिखावन रूखा ।।
वह जानै यह चित्र न[11] जीऊ । जिय[12] को जीउ प्रान मो पीऊ ।।

दोहा—जिउ[13] व्याकुल प्रीतम बिनां, तन[14] दुख मन[15] अकुलाइ ।
सो[16] इन दुख दोनों तजै, पीउ मिलै फिर[17] जाइ ।।१५७।।

प्रीतम दधि अपार दुख नोरा । उठै लहर पर लहर हिलोरा ।।
तन बोहित भा जज्जर आना । रोम रोम दुख नीर समाना ।।
जद्यपि द्रिग[1] उलिचहिं होइ मीना । तऊ मो नीर[2] होइ नहिं रीना ।।
डग मगाइ टूबन[3] पर आवा । नहिं तोहि विन कोउ तीर लगावा ।।
जो अब वेगि पौन होइ आवसि । गहि अकाग लै तीर लगावसि ।।
तो बांचै नाहिन तिहिं[4] आगा । और जतन उकसै न उकागा ।।
प्रीतम गाढ परे सुध कीजै[5] । काढि काल मुख मों मोहि लीजै ।।
पिउ तन मन जोवन जिय तोरा । या धन मे कछू नाहिन मोरा ।।*
अपनी वस्तु आप किन लेहू । काल पठाउ कीन्ह कस देऊ ।। †

दोहा—प्रीतम तू मिल तरनि लगि, परी प्रेम दधि माहि ।
अब उलटैं डूबन लगी, तरी[7] होइ हीं नाहि ।।१५८।।

दोहा—१५७-१—निपट निकट गति (कां०) । २—तिन्ह मे (स०) । ३—भवै (स०) । ४—अधिगुत (म०) । ५—यागों (का०) । ६—मरमाऊं (स०) । ७—कहाऊं (कां०) । ८—मन (स०) । ९—जो (का०) । १०—नित्त (का०) । ११—विछोऊ (का०) । १२—जी कर जीवन (का०) । १३—मन (का०) । १४—मन (कां०) । १५—तन (कां०) । १६—जिहि पहि (कां०) । १७—तब (स०) ।

दोहा—१५८-१—द्रिग (स०) । २—नेक (कां०) । ३—बूडन (कां०) । ४—मोहि (कां०) । ५—तोहि (स०) । ६—लीजै (स०) । *यह चौपाई 'स०' प्रति में नहीं है । † इसके पश्चात् 'स०' प्रति में यह चौपाई है:—"पिव विन कौन पार पहुंचावै । आवा जीन सो कौन मिटावै ।" ७—सो तेरी हो (कां०) ।

प्रीतम काज लाज मैं खोई । रोउ रोइ अंसुवन मल धोई ॥
संग सखी सबही[1] यह जानी । पेम पीर[2] कत रहै दुरानी ॥
जद्यपि हौं बहु भाँति दुराऊं । अंसुवन पै न दुरावन पाऊं ॥
आठों[3] पहर सलिल ज्यों बहै । सलिल प्रवाह छिपै[4] कत रहै ॥
जो[5] पिउ लागि लाज पै[6] जाई । आहु निलज मोरे प्रभुताई ॥
मैं तब[7] लाज न लजिया जानी । बड़े भली[8] जो पिउ[9] मग मानी ॥
निलज भएं मन पेम जो रहै । तौ झूठी[10] लाजहिं को चहै ॥
यहै[11] निलजिनाई मोहिं मीठी । जा[12] लग रहै पेम सों ईठी ॥
प्रीतम तोहि लाज पत मोरैं । निलज भई[13] जोहूं मग[14] तोरैं ॥*

दोहा—लाज राखि पेमहिं तजूं, कहौ लाज किहि काज ।
जगत निलज कहै[15] डर नहीं, जो रहै पेम मग[16] लाज ॥१५९॥

लाज रहै जो पिउ मुख देखौं । जीवन जनम सुफल कै लेखौं ॥
कब देखौं कब नैन सिराऊं । स्रवन मीठे बैन सुनाऊं ॥
नासा तन मलयागिर बासा । कब पावै पूजै कब आसा ॥
पाइन सीस लाइ गहि रहौं । ये[2] सब दुख मिटाइ सुख लहौं ॥
बीन[3] कुसुम दल सेज बिछाऊं । पिउ सुख करै पाइ सहराऊं ॥
जे जे ध्यान धरूं[4] मन माहीं । कब आइ[5] विद्यमान होइ जाहीं ॥
पीतम पंख होहि जो मोरैं । अबही उड़ि आऊं ढिग तोरैं ॥
कुटुब लोग सों छूट न पाऊं[6] । नाहित जोगिन होइ कर[7] आऊं ॥
पेम पंथ कोटिक रखवारा । पग[8] न धरन[9] देइं पिउ बारा ॥

दोहा—पिउ मो में यह बल नहीं, जो आप मिलूं तुम आइ ।
जौ लग तुमहि क्रिपा करौ, लेहु न मोहि मिलाइ[10] ॥१६०॥

दोहा—१५९–१—पहलै (का०) । २—रीति (म०) । ३—आनें (स०) । ४—चहै (का०) । ५—मो (का०) । ६—पुनि (का०) । ७—पत (स०) । ८—उतम (स०) । ९—पेम (म०) । १०—झूठी (का०) । ११—भई (का०) । १२—जिन (स०) । १३—भली (स) । १४—सुप (का०) । १५—को (कां०) । १६—सुख (स०) ।

दोहा—१६०–१—कर (का०) । २—इहि (कां०) । ३—प्रेम नैत (कां०) । ४—करौ (स०) । ५—ये (का०) । ६—पावौं । ७—पुनि (स०) । ८—पै गन (स०) । ९—धरै देहि तिहिंवारा (कां०) । १०—बुलाइ (कां०) ।

हौ तौ जकड़ जंजीरन रही । पराधीन कछु जाइ न कही ॥
पेम पंथ महं[1] हितू न कोई । सब बटपार हितू पिउ[2] सोई ॥
संग सखी जो सदा तन संगी । हौं अब[3] तिनहुं सों चित्त[4] भंगी ॥
ए[5] मोहि अपनी चाल चलावहिं । पेम उरझि मन सों मुरझावहिं ॥
हौं चाहौं गाढी होइ उरझौं । जिन उरझन सौं बहुरि न सुरझौं ॥
जो सुरझन इन्ह उरझन[6] माही । तिन्ह बाउर जग जानत नाहीं ॥
पिउ के पेम उरझ जो सुरझै । यों[7] सुरझै ज्यों फिर[8] ना उरझै ॥
तिहिं उरझन सों मोहिं सुरझावहिं । जग सुरझन[9] अस[10] छिन उरझावहिं ॥

दोहा—पंच सत्रु हौ एकली, जूझत हौं इन[11] माहं ।
गाढ़ परै पिउ तोहि[12] भजूं, जो राखो[13] गहि बाहं ॥१६१॥

हौं अनाथ कछु होय न मोसों । जो कछु होइ नाथ सब तोसों ।
मोसों यहै पेम दुख भरना । नाउं तिहारो सुमिरन करना ॥
यह बल नाहिं कि तुम पहं आऊं । मिलि कै तन की तपत बुझाऊं ॥
तुमहीं प्रघट होहु जो आई । आपा आन देहु दिखराई ॥
तब ही पिउ दरसन हौं पाऊं । इन सत्रुन सों आप छुड़ाऊं ॥
महाराज तुमसों सब होई । तुम कहं बरजनहार न कोई ॥
तुम अपने सत्रुन कै बरता । सब करि सके[1] आप जो करता ॥
जो तुम आइ करहु बट[2] फेरा । कहो तुम्हें[3] कौनै धौ घेरा ॥
यातै[4] बिनी करौं हौ नाहां । गहर[5] न करउ गहो मम[6] बांहां ॥

दोहा—जद्यपि धन पिउ कै भई, तन मन धन सब खोइ ।
पै जौ लौं पिउ ना मिलै, अचल सुहाग न होइ ॥१६२॥

दोहा—१६१-१—कोटिक महं हुतो (स०) । २—न (का०) । ३—तिनहूं सौं मो सौ (कां०) । ४—चुप (स०) । ५—मोलाई (स०) । ६—आपन उरझाही (कां०) । ७—पुनि (कां०) । ८—बहुर (कां०) । ९—निसुरझ (स०) । १०—उरझन (कां०) । ११—ऊन (कां०) । १२—तो बचौं (स०) । १३—राषि लेहि (कां०) ।

दोहा—१६२-१—सुख (स०) । २—अति (स०) । ३—तो मोहि कौन (स०) । ४—तातै (कां०) । ५—कहर (स०), गोह (का०) । ६—मोहि (कां०) ।

तब वह सखी मरम जिन्ह[1] मिती[2] (?मूठी)। ताकर सुरत लेन[3] लग ऊती[4] (?ऊठी)।।
देखी आंसु बहै ह्वै नदी। जनु[5] अन्हाइ बैठी द्रोपदी।।
बिरह दुसासन[6] कै बस[7] आई। भजन करै हरि होहु सहाई।।
सलिल आंसु रोवत जब देखी। देइ लागि सिख सखी सरेखी।।
धन तू निपट पेम मग काची। रचि अजहूँ इन रंग[8] न राची।।
पेमी सो जिन्ह आह[9] न आंसू। सुबुक सुबुक[10] भूंजा जस मांसू।।
जौ लग मांस कचाई भरा। तौलौं भूंजत पानी धरा[11] (?ढरा)।।
सिकै[12] न सबद न पानी ढुरा[13]। फिर फिर अगिन आंच पर[14] धरा[15]।।
प्रेम दाह मलयागिर[16] जानै। सो प्रेमी प्रीतम पहिचानै।।*

दोहा—जो[17] जिउ सांचा प्रेम सों, पेम अगिन सियराइ।
ज्यों ज्यो उपजै तन तपन, त्यों त्यों ताहि सुहाइ[18] ।।१६३।।

सखी न जान पेम दुख रोवौं। पीर पाइ दृग नीर[1] भिजोवौं[2]।।
केतो[3] अरथ[4] यह रोनौं माही। सुन चित लाइ[5] कहों तो पाहीं।
लग्यो जो पेम पौध उर थारौं। सीचौं ताहि[6] सदा[7] जलवारौं।।
हिया कुवा मन रहिट फिराऊं। नैंन बडे भरभर ढुरकाऊं।।
बिरह अगिन उर कीन्ह प्रकासा। आँखिन निकट कंत कर वासा।।
तिहिं कारन राखूं जल बूड़ी[8]। अरु जिन होय ठौर इन्ह[9] जूड़ी।।
औ कबहूँ पुनि नीद सतावै। आइ जाय जब[10] औसर पावै।।
तिहिं आखिन अधिको ही रोऊं। रोइ रोइ ताको जर धोऊं।।
इह[11] बैरिन मोहिं नीक न भावै। जब आवै पिउ सुरत भुलावै।।

दोहा—निज स्वारथ नहिं[12] रुदन मोहि[13], सुन सखि दोंहु सुनाइ।
डरौं कि[14] मकु हिय जल घटै, सो पेम अगिन घट जाइ।।१६४।।

दोहा—१६३-१—तब (कां०)। २—मिवती (कां०)। ३—लिये (कां०)। ४—जिवती (का०)। ५—मनो (स०)। ६—उसासन (स०)। ७—निस (कां०)। ८—अंग (स०)। ९—बहै (कां०)। १०—सीक (स०)। ११—भरा (कां०)। १२—सपिनन (का०)। १३—बहै (स०)। १४—सुख। (स०)। १५—सहै (स०)। १६—जो मलैकर (का०)। *इस चौपाई के पश्चात् 'स०' प्रति में यह चौपाई और है:—जरबर सिमिर सिमिर सुख पावै। पिउ जिउ दहै हियै सियरावै।' प्रस्तुत संपादन में प्रत्येक दोहे के साथ नौ चौपाइयो का क्रम रखा गया है। जो चौपाई अधिक समझ कर अलग कर दी गई है, वह अधिकतर अंत की (दसवी) ही चौपाई है। उसको अलग कर देने से न तो अर्थ का अनर्थ होता है और न कथा प्रवाह मे ही कोई वाधा पड़ती है, वरन कही-कहीं वह ऊपर से लादी हुई सी जान पड़ती है। १७—जिहि (कां०)। १८—सहाइ (स०)।

दोहा—१६४-१—नैन (कां०)। २—बिछोऊं (कां०)। ३—काऊ (स०)। ४—ऊठि रोऊ तोह माँहा (कां०)। ५—जो सो निस मह जु बांहा (कां०)। ६—सदा (कां०)। ७—अंगु (कां०)। ८—बूढे (स०)। ९—अन (कां०)। १०—तव (कां०)। ११—विप (स०)। १२—इन (स०)। १३—कै (स०)। १४—कि मग (कां०)।

जद्यपि सखी[1] ताहि सिख[2] दई । पै दुख देखि दुखित अति[3] भई ।।
सो दुख सहि न सकी अकुलानी । आई जहं[4] बैठी पटरानी ।।
विनीं कहेसि तब बैठि अगोसैं । रानी करहु सिंगार सचोसैं ।।
वारी कँ[5] जो बिथा मैं पाई । वह[6] निज बिनी करन कों आई ।।
नल उजैन राजा जो कहावा । इन[7] वारी तासों चित लावा ।।
सुनियत अनल बरन उजियारा । तिहिं कर झरप[8] लगी उर झारा ।।
वहै दाह हियरै महं परा । सैंका चहै[9] आग कर जरा ।।
तिहिं[10] कै रूप चित्र एक[11] चीता[12] । वहै राम कै जानै सीता ।।
निसि दिन रहै पेम[13] अनुरागी । ओट होइ तबही[14] बैरागी ।।

दोहा—रोवै मन देइ मित्र महं, देखि देखि वह[15] चित्र ।
जिहिं[16] को ऐसो चित्र यह[17], कैसो धौं सो मित्र ।।१६५।।

है रानी आगे जिउ[1] जरी । अब यह बात तेल होइ परी ।।
कै जनु[2] हेम सुहागा डरै । परै[3] जो ओट करै[4] तिहं खरै ।।
ठक[5] अस रही मरम जब सुना । बोल न सकी सीस पै धुना ।।
साँप छछूंदर बात नचीलै[6] । उगलैं बनै न जात[7] सो लीलै ।।
मनही मन बिसूरि पछिताई । जैसै झुरै चोर कै माई ।।
रोवत हाथ मलत उठि चली । आप अकेली संग सो अली ।।
आई जहाँ दमावत वारी । भइ झुराइ पात भुंइ डारी ।।
हुती जो फूल काँट है रही । तिहि देखत अधिको हिय[8] दही ।।
यह[10] जानै[11] वारी मैं सीचीं । वारी निसि दिन रहै उलीची ।।

दोहा—ज्यो ज्यों वारी सीचिये, त्यों त्यों सूखत जाइ ।
नैन पनारे[12] खुल रहे, बूंद न जल ठहराइ ।।१६६।।

दोहा—१६५–१—सपिन (कां०) । २—सुख (स०), सिपाई (का०) । ३—अप (कां०) । ४—जहीं हुती (कां०) । ५—कीर व्यथा (कां०) । ६—सो (कां०) । ७—'कां०' में नहीं है । ८—हरै (कां०) । ९—मुलागा चहै आरिग कर (कां०) । १०—ताकैं (कां०) । ११—अति (कां०) । १२—जीता (स०) । १३—भये (कां०) । १४—बैठे (कां०) । १५—को (कां०) । १६—जाको (कां०) । १७—है (कां०) ।

दोहा—१६६–१—हिय (कां०) । २—कंचन पेम (स०) । ३—परी (स०, कां०) । ४—गरी नहिं (कां०) । ५—थक (कां०) । ६—लजीली (कां०) । ७—जाइ न लीली (का०) । ८—छरै (स०) । ९—दुप (कां०) । १०—इह (कां०) । ११—जानी (स०) । १२—चियारे (कां०) ।

देस देस कहं बांभन चले । जहां छत्रपति राजा भले ॥
जहाँ तहां यह मरम सुनावहिं । दावी अगिन खखोर जगावहिं ॥
चली वात होइ पवन उड़ानी । भौवरहिं मिली कवंल अरघानी ॥
खंड खंड महं खल वल परा । सूता चाव जाग भा खरा ॥
जानौ स्वाति वूंद नियराई । मेघ पपीहा गरज जगाई ॥
आगैं जगत थका सुनि शोभा । कौतुक कहं सव कर चित लोभा ॥
वनै लाग सव राजा राऊ । जो जिह जोग तैस[1] तिहि चाऊ ॥
कोऊ[2] धरै मिलन मन आसा । कोऊ देखा चहै तमासा ॥
जग उरझा यह[3] धंधा माहीं । चाहै[4] घर व्याह कमाहीं ॥

दोहा—पाय कवंल अरघान अलि, रसिक[5] भए सुचेत[6] ।
वनहिं[7] वनावन[8] पांख जनु, उड़ा चहै तिहि हेत ॥१७१॥

नल यह मरम वात सुधि[1] पाई । चाहै पंख लाइ उड़ि जाई ॥
आइस कीन्ह विलंव न लावहु । साज पाट सव कसहु कसावहु ॥
अव[2] ततकाल चलावहु डेरा । वीस कोस चलि करौ वसेरा ॥
राजा अति[3] आतुर जव जाना । नेगी[4] विनौ वचन मुख आनां ॥
वड़ो प्रताप अखंडित राजू । मन[5] वाँछत विघ पुरवै[6] काजू ॥
महाराज जव गवन करीजै । सिद्ध जोग सम्मुख कै लीजै ॥
सुदिन विचार गनेस मनावहु । जो इच्छया जिउ धरहु सो पावहु ॥
विन दिन देखै चलै जो कोई । जोगी जती ग्रहस्थ न होई ॥
जिन इच्छा आसा कछु नाही । करै जो लहर उठै मन माही ॥

दोहा—जो ग्रहस्थ व्यवहार मग[7], चलै राखि जिउ आस ।
ता कहं जग व्यवहार सों, वनै न भयें उदास ॥१७२॥

दोहा—१७१—१—तैसें (कां०), तीस (स०) । २—कोई (कां०) । ३—तिहि (कां०) । ४—जानो (कां०) । ५—सोऊ (स०) । ६—अचेत (स०) । ७—वनै (का०) । ८—वनावै का०) ।

दोहा—१७२—१—सुनि (कां०) । २—अति (कां०) । ३—तव (कां०) । ४—नीकहं (स०) । ५—सिघ करो (कां०) । ६—वाछत (कां०) । ७—मख (स०) ।

सिद्ध गौन[1] कै[2] दिवस[3] बरावा। सिद्ध जोग चौथे दिन पावा ॥
आयसु कीन्ह[4] सभा महं जाना। संग चलें जे रावत राना ॥
चटक[5] बनाइ बनौ सब कोई। देख लेहु जिन्ह गांठ न होई ॥
भंडारी कै आयसु कीन्हा। जिन्ह जेतक मांगा तिन्ह दीन्हां ॥
लागे[7] लोग सब बनैं बनावैं। गौन दिवस नियरै भा[8] आवैं ॥
राज साज पुन सजें[9] सवाँरहिं। हीरा रतन ओप चटकारहिं ॥
जीरन साज सो नौतम कीन्हाँ। और जु निरंग[10] रंग तिन्ह[11] दीन्हा ॥
गज तुरंग पुनि[12] होंहि जो खरे। चमकहिं साज हेम नग जरे ॥
रथै साज ऐसे पुनि बना। निज ब्योरा कर जाइ न गिना ॥

दोहा—जौन साज नग[13] पाट[14], कंचन बिना न कोइ।
चितये[15] चौंधा लगि रहैं, जगमगाट अस होइ ॥१७३॥

अब वह सिद्ध गौन दिन आवा। चल चल कह निसान बहरावा ॥
उठे[1] लोग जब सुना दमामा। सबही कीन[2] चलै कर सामां ॥
साज बाँध अपनै कर[3] धरे। चला चहै ततखन[4] तिहिं[5] घरे[6] ॥
पुनि दूजें निसान जब बाजा। दरबादर उमड़ा घन गाजा ॥
जुरै फेरि[7] लोग दरबारा। जाँवत नेगी[8] संगि जुझारा ॥
दुइज चाँद लौं बाढ़ि निहारें। कब निकसै कब दरस जुहारें ॥
वाहन बन बनाइ सब[9] आए। हाथिन हौद पलान बनाए ॥
चलत सिंघासन औ सुख आसन। लिएं कहांर डसायें[10] डासन[11] ॥
तीखे तुरन[12] जुते[13] रथ आए। रबि वाहन ज्यों चलहिं चलाए ॥

दोह—तीखै तुरै[14] जो बन खरै, तिनखौं कहौ सुभाव।
चलहिं[15] राखि तन पवन पर, चढ़ियत[16] मन[17] परि पाव ॥१७४॥

दोहा—१७३—१—गवन (कां०)। २—कहिं (कां०)। ३—द्योस (कां०)। ४—भा (कां०)। ५—तिलक (कां०)। ६—देखान्ह (स०)। ७—लाख (स०)। ८—भौ (स)। ९—पचहं (स०)। १०—तुरंग (कां०)। ११—तिहिं (कां०)। १२—बन (कां०)। १३—सब (कां०)। १४—लग (कां०)। १५—चित्त (कां)।

दोहा—१७४—१—ऊभे (कां)। २—लेन (स०)। ३—कै (स०)। ४—अब (कां०)। ५—इहं (स०)। ६—धरी (स०)। ७—लोग भरा (कां०)। ८—जानौ नित संगी औ जुझारा (स०), जामत नेगी ओझे झारा (कां०)। ९—पुनि (स०)। १०—दिसायन (का०)। ११—दरसन (कां०)। १२—तरन (का०), बरन (स०)। १३—चलते (कां०), जेते (स०)। १४—तरन (का०)। १५—चढहुं चलहुं राख मन (स०)। १६—चढि हती (कां०), चढ़ा हुता (स०)। १७—जिउ चाव (स०)।

रैन गई दिन भा उजियारा । सबही आपन साज सम्हारा ॥
भयो बिहान[1] चला नल डेरा । और ठौर गहे[2] नारा बसेरा ॥
चहुं दिसि चर्चा चली होइ रही । नाना भांति[3] सोर भनि गई ॥
कोई[4] आगे कोई[5] पाछे । कोउ निकसन सोई[6] काछे ॥
चलै जाहि सब रहै न कोई । रहे कौन जो सबै ढहोई ॥
जे घर अपने जान न पाए । दिवस कुछ मंह भए पराए ॥
लोगन आइ[7] जुराए ठाढ़ा । जर होइ ध्यान गई[8] मिन्नो माढ़ी ॥
घर आंगन सुधि रही न कोई । नाम रहा सपना भा सोई ॥
ना घर रहे न ते घर बारा । सो[9] आन रहा[10] सब अधियारा ॥
दोहा—जो आवा सो जान लग, रहन[11] न आवा कोइ ।
आवन जानै जगत महं, रहन पावै सो होइ ॥१७९॥
राजहिं बहुत चाव जिय माहा । का उठि आप होउं उन छाहा ॥
उपजहिं उपज चाव पर चाऊ । चाह भई सो चाहै[1] चलाऊ ॥
चाव फरहरा आगे[2] जाही । निसि तें[3] मनहु दग सैल समाही ॥
पंथ चलत प्रथमै सब आवे । चाह सो अमित भये नलकारे[4] ॥
ज्यों ज्यो पैग पैग भुइं घटै । त्यों त्यों चाहहुं चल परगटै ॥
नल तिहि चाव चला होइ बाऊ । चाह न परत देह भुइं पाऊ ॥
जिन्ह पिउ अपनी ओर बुलावै । तिन्ह पै चाह आइ[5] तिय लावै ॥ *
प्रेम पंथ सोई पग धरै । जासों चाह सो पीतम करै ॥ *
ताके हाथ डोर[6] ये[7] गहो । ज्यों ज्यों खेंचै त्यों त्यों ढहो ॥⊙
दोहा—जदपि पीउ के चाह बिन, पिउ सों चहै न कोइ ।
पीउ[8] पियारा तिहि चहै, जाहि[9] चाह पिउ होइ ॥१८०॥

दोहा—१७९—१—भयान (का०) । २—मिल (स०) । ३—कोऊ (का०) । ५—कोई (स०) । ६—आह (स०) । ७—तानै (स०) । ८—कीनै (स०) । ९—मातै (स०) । १०—घर (स०) । ११—रहै (का०) ।

दोहा—१८०—१—चलो (का०) । २—लागै (स०) । ३—नैनहं तें यह दसन बिछाहीं (स०) । ४—नलकारी (का०) । ५—छतिया (स०) । * ये चौपाइयाँ (का०) प्रति में एक दूसरे के आगे पीछे हैं तथा इनके आगे उनके और 'स०' प्रति के चार दोहों (१८० से १८३) तक के पीठों का क्रम भंग है । उक्त चौपाइयों के पश्चात् 'का०' में शेष अंश निम्नलिखित है—

प्रेम वेस तन व्याकुलताई । औ मन आस निरास दुखदाई ॥
तन मैं और ठौर जिव नाहीं । सात पांच आवै मन माहीं ॥
('स०' प्रति में × १८३ दोहे की ये क्रमशः तीसरी और अंतिम चौपाइयाँ हैं)
दोहा—तन सूना जिव मित्र पै, मन भा मोहि उदास ।
पिन इति पिन ऊति पिन उधर, पिन भोई पिन आकास ॥१७९॥
('स०' प्रति में इस दोहे की संख्या १८३ है)

† 'का०' में यह चौपाई १८० संख्या दोहे की आठवीं संख्या पर है । ⊙ यह 'का०' में ५८२ दोहे की अंतिम चौपाई है । ६—डारे (स०) । ७—तिहि (का०) । ८—पै प्रीतम (का०) । ९—जिहि (का०) ।

राजा निपट उतावल चला। पहुंचा तहां जाइ कै ढला[1] ॥*
कुंडनपुर सीवां जब आई। अदभुत लीला दीन्ह दिखाई ॥
जो[2] कछु भाटिन कीन्ह बखानूं। देखि भया बखान उनमानूं ॥
उतरे आइ भूप चहुं पासा। एक भयो मिलि पुहुमि[3] अकासा ॥
बरन बरन डेरा भये खड़े। ऊंचे जनु अकास सों अड़े ॥
चमकहिं सब जरकसे तनाए[4]। जिमि अकास निसि नखत दिखाए ॥
सोने के सुमेर ज्यों खड़े। तिहिं पर रतन पदारथ जड़े ॥
सावन मास साँझ जनु फूली। चारों ओर नगर छवि भूली ॥
सबही दंभ बढ़ाइ देखावा[5]। दंभ दिखाइ चहैं तिहिं पावा ॥

दोहा—दंभ कियें वह[6] ना मिलै, जौ लग लगन न होइ।
दंभ मिलै तो इन्द्र सों, दम्भी और न कोइ ॥१८१॥

देख सुठौर सरोवर तीरा। निरमल जल औ भरा गंभीरा ॥
आयसु कीन्ह ठाढ भा डेरा। उतरि तहां नल कीन्ह[1] बसेरा ॥⊙
पेम[2] बिवस पुनि[3] व्याकुलताई। औ मन आस[4] निरास[5] दिखाई[6] ॥†

दोहा—१८१—* (कां०) प्रति में इसके पहले "सुना दमावत प्रीतम आवा......" चौपाई से लेकर "जद्यपि पिय की चाह बिन......॥१८०॥" दोहे तक का अंश है। यहाँ 'स०' प्रति का पाठ लिया गया है। इसका कारण यह है कि 'स०' प्रति मे यह अंश उचित स्थान पर है। जब नल कुंडनपुर पहुँच गया तो दमावत को उसका डेरा अच्छी तरह दिखाई दे रहा था। अतः उसकी दशा का वर्णन 'स०' प्रति में प्रसंगानुसार है। 'कां०' में प्रसंगानुसार नहीं, नल के रास्ते में ही रहने पर उसमें यह वर्णन आजाता है।

१—हला (स०)। २—जस (स०)। ३—भुंई (स०)। ४—बनाई (कां)। ५—दिखावौ (कां०)। ६—वोह (का०)।

दोहा १८२–१—लीन (कां०)। ○ 'कां' प्रति में इसके पश्चात् यह चौपाई है:— दुहुं देश दोऊ लेहि मरोरा। चकवी चकवा कर असि जोरा। 'स०' प्रति में यह १८३वें दोहे की अंतिम चौपाई है। प्रस्तुत संपादन में देखिए। १८३वें दोहे की अंतिम चौपाई। २—प्रेमायस (कां०, स०)। ३—मन (स०), तन (कां०)। ४—अस (स०)। ५—तरास (स०)। ६—दुखदाई (स०), दुखधाई (कां०)। † यह चौपाई 'कां०' प्रति में १७९ संख्यक दोहे की आठवीं चौपाई है।

[illegible]

दोहा—[illegible] ॥१९०॥

[illegible]

दोहा—जो पुनि [illegible], [illegible] ॥१९१॥
[illegible]

दोहा—१९०–१—वारै (कां०), बारह (न०)। २—नीन तीन (न०)। ३—ताकी (कां०)। ४—वाकी (का०)। ५—कनी (कां०)। ६—मरी (कां०)। ७—तरकसी (कां०)। ८—कर (कां०)। ९—भाग (कां०)। १०—तुपरे (न०)। ११—भये सहिज (कां०)।

दोहा—१९१–१—किउ (कां०)। २—हूं (कां०)। ३—नेह (कां०)। ४—हीन (स०)। ५—विरहै (का०), वरन (स०)। ६—चरना (स०)। ७—अनु दूर हुते तुम (कां०)। ८—जिय (स०)।

नल बोला तुम दरसन[1] प्यासा। बैठ हुता हौं मिलन उदासा ॥
तब तिहि ठाउं इन्द्र अनियासा। आवा उतर बैठि मम[2] पासा ॥
तिन दीठिबंध मो[3] मंत्र सिखावा। कहु संदेस तुम तोर पठावा ॥
जद्यपि कहिं[4] सो दुखावन[5] बाता। पै मोहि भइ कुबजा कै लाता ॥
जिहि कारन तुम लौं हौं आवा। पाइ दरस उर दाह गिरावा ॥
इन्दर कहा सोऊ अब कहौं। कहत न बनै कहा पै[6] चहौं ॥
राखि न जाइ संदेस परावा। दोख[7] न होइ चहै. पहुंचावा ॥
कहसि[8] कहो तुम[9] हम कहं बरऊ। सब सुख इन्द्रलोक कै करऊ ॥
सहजहिं[10] तुमहिं[11] मिलै सब[12] भोगू। जिहि लग[13] जग साधै तप जोगू ॥

दोहा—बड़ो महातम बडो सुख, बड़े ठौर कर राज।
राग रंग रस निरत गुन, विद्या सबै समाज ॥१६२॥

सुनि यह बात दमावत बोली। जर बर[1] उठी भभक जिमि होली ॥
मैं[2] पिय तुव[3] दरसन की प्यासी। तीन[4] लोक सों भई[5] उदासी ॥
जेहिं[6] ठाउ पिउ[7] संग[8] मिलि रहूं। सोई इन्द्रलोक हौं कहूं ॥
मोहिं[9] किहि काज इन्द्र जो बड़ा। तोर चित्र मोरे हिय गड़ा ॥
इन्द्र लोक चाहै सो[10] कोई। जो पिउ के रंग रंगी न होई ॥
तोरे बिरह बान लगि नाहां। मोरै बेह[11] भई उर[12] माहां ॥
तू[13] अस निठुर करी उपदेसा। लोगन कै मोहि कहत संदेसा ॥
तो मिलाप कारन रे बिगासी। ए सब ठठ हौं ठठौं[14] निरासी ॥
जो हौं बरौं तो तोही बरौं। नाहित अबहिं खाइ बिख मरौं ॥

दो०—हौं[15] तोहि[16] अरपन कै रही, तन मन जोबन[17] पीउ[18]।
चाहसि[19] तन मन सहत[20] लै, चाहे एकौ[21] जीउ[22] ॥१६३॥

दोहा—१६२-१—दर्स (कां०)। २—मोहि (कां०)। ३—एक (स०)। ४—गहन (स०)। ५—देखानी (स०)। ६—पुनि (कां०)। ७—दोछन (कां०), दोछिन (स०)। ८—कहिस कि (कां०)। ९—हमें तुम (कां०)। १०—समुझहं (स०)। ११—माहि (कां०)। १२—सो (कां०)। १३—कारन साधैं (कां)।

दोहा—१६३-१—बिरहै कथा पोथी उर पोली (कां०)। २—पीये हौं (कां०)। ३—तों (स०)। ४—तिहूं (कां०)। ५—सदा (स०)। ६—जो (कां०), जिहै (स०)। ७—तो (कां०)। ८—सौं (कां०)। ९—मो (कां०)। १०—वह (स०)। ११—पीर (कां०)। १२—हिये (कां)। १३—तो काहि निठर करूं (कां०)। १४—सहौं (कां०)। १५—हों (स०)। १६—तू (स०)। १७—जियरे (कां०)। १८—पीय (कां०), जीउ (स०)। १९—चाहत (स०)। २०—भेट (कां०)। २१—एकै (कां०)। २२—जीये (कां०)।

नल इह बात सुनत फिर[1] रोवा । रोएं रकत बरन भए कोवा ॥
रोवै अरु बोलै दुख[2] बैनां । बैन कहै अरु पोछै नैनां ॥
प्यारी अब केहि भांति बखानूं । जो जिउ[3] पर बीती हौं जानूं ॥
जे जे दुख तो लगि मैं सहे । ते छिनहीं महं[4] जाइ[5] न कहे ॥
पहले मैंहि जरा इहि[6] आगी । मोरै अगिन आंच[7] तोहि लागी ॥
हौं ऐसे कब चहौं निदाना[8] । तो जिउ[9] मोर नेह को आना ॥
जो तूं अनख संदेसौ मानसि । यह[10] मोरे कछु चूक न जानसि ॥
वह सुर पुर राजा हौं चांटी । ताके पाइं तरै की माटी ॥
कहाँ[11] न करौं[12] कोध महं[13] आवै । देउ[14] सराप तन छार मिलावै ॥

दो०—नाहिन[15] डरौं[16] सराप सो[17], तन अबहीं छिन जाय[18] ।
हौं जो[19] सदेसी होइ चला, तुव[20] दरसन कै चाय ॥१९४॥

ता कर उत्तर कहा दमावत । जो तोहि सकुच इन्द्र कै आवत ॥
काल्ह सोयंबर कर ठठ होई । जुरै सभा आवै सब कोई ॥
हौं तोहि[1] ढूंढ लेउ[2] तिन[3] माहीं । देखौं त्रिस्टि[4] गहौं तौ[5] बाहीं ॥
इन्दर पुनि[6] देखै तिहि ठाऊं । लै उर जैमाला पहनाऊं ॥
तब तेरी कछु चूक न जानै । सकल[7] चूक मोरी पै मानै ॥
जो मोहि इन्द्र सरापहु देई । अबला कै[8] हत्या सिर लेई ॥
अबहीं[9] मोहि मारौ किन कोऊ । सहु[10] न सकौं छिन तोर बिछोहू ॥
सुनि इह[11] बनकहाव[12] नल फिरा[13] । छूटा तब जो औल[14] मन थिरा[15] ॥
जैसे समाचार उत पाए । आइ इन्द्र पहं[16] बरनि सुनाए ॥

दो०—इन्द्र न उत्तर दीन्ह सुनि, उत्तर चले बिचार ।
चढा हुता जिउ चाव जो, उत्तर[17] दीन्ह उतार ॥१९५॥

दोहा—१९४-१—बहुत (स०) । २—मुख (कां०) । ३—मोपर (कां०) । ४—मैं (कां०) । ५—जाहं (स०) । ६—इन (स०) । ७—उपज (कां०) । ८—न आनां (कां०) । ९—तू चहैये मो ले पा मानां (कां०) । १०—तू (कां०) । ११—कहा (कां०) । १२—कहूं (कां०) । १३—मोहि (का०) । १४—वोह (कां०) । १५—ओ पुनि (कां०) । १६—डरन (का०) । १७—तै (कां०) । १८—जाहु (स०) । १९—सु (कां०) । २०—सो तो (स०) ।

दोहा—१९५-१—तू (स०) । २—ल्योंहुं (कां०) । ३—तिहिं (कां०) । ४—पंच (का०) । ५—तोहि (कां०) । ६—सोऊ (स०) । ७—मानै चूक तु मोरी (कां०) । ८—को (कां०) । ९—मोहि अबही (कां०) । १०—पैन सकूं सहु (कां०) । ११—ए (स०) । १२—कहाव (कां०) । १३—भरा (स०) । १४—उन (कां०) । १५—घरा (कां०) । १६—कहि (कां०) । १७—सो उत्तर (स०) ।

चीस सोयंवर कर अव आवा । वरनी सभा जो[1] ठौर बनावा ।।
ऊंचा जाकर[2] चौंतरा[3] चिना । बहु विस्तार घेर[4] पुनि[5] बना ।।
अति ऊंचे चंदवा पुनि तने । तिन[6] महं[7] कनक नखत ससि बने ।।
जनु पेमी[8] पिउ मद मतवारे । तिन्हहुं[9] लोक सों अधर निरारे ।।
तने तनाव हाथ पग डरे । तन बिसराइ ध्यान महं परे ।।*
ऊपर रहा रूख[10] होइ गाता । अंतह करन पेम रंग राता ।।
कनक चित्र चमकहिं छवि लिएं । पेम[11] अगिन अंगार जनु हिएं ।।
पाटंबर सब तरें बिछाए । मनु[12] फूलन कह[13] पथ[14] बनाए[15] ।।
का जु भया[16] देह रंग लोना । अनय[17] निदान खेह[18] पर सोना ।।
दो०—यहै समुझि उन[19] देह जनु, दीन्ह[20] पेम मग[21] डार ।
नेक न आनों[22] अनख[23] जिय, चहु सों[24] चाहु बिसतार[25] ।।१९६।।
राजा राव जुरे सब आई । सब[1] मिल सुंदर सभा बनाई ।।
कियी सभा सो[2] बहुत छवि[3] सनी । तब वह एक सभा अति[4] बनी ।।
इन्द्र सभा बरनी जग माही । दूजी और न ता उपराहीं[5] ।।
सोई[6] इन्द्र बैठो[7] इक ओरा । तब पैइयं जब फिरै ढिंढोरा ।।
सोंधे लपट उठे चहुं पासा । ज्यों[8] बागा सब भुई[9] अकासा ।।
कंचन रतन चमक चित चोरै । सोभा सरवर सभा हिलोरै ।।
राजा कनक कवंल से फूले । मन सबर्क[10] मधुकर होइ भूले ।।
एकै कवंल वास सब वासे । सकल[11] एक पानिप के प्यासे ।।
एकी मीत सबन के हियें । मांते सबै[12] एक मद पिएं ।।
दो०—जा छवि लगि यह छवि लगी, सभा जुरी सब आई ।
दिस्टि न आवै सबन के, हिये मांझ मंडराई ।।१९७।।*

दोहा—१९६–१—ठोर जु (कां०) । २—चाकर (स०) । ३—जोरा (स०) । ४—करि ओ (का०) । ५—अनबना (स०) । ६—तिहि (कां०) । ७—मैं (कां०) । ८—पीये (कां०), पेमिहि (स०) । ९—तिहि (कां०) ।* 'कां०' में यह चौपाई नहीं है । १०—रूखो (स०) । ११—प्रेम अंगार अग्नि जनु (कां०) । १२—चुन (कां०) । १३—जनु (कां०) । १४—गीद (कां०) । १५—बिछाई (स०) । १६—बनां (कां०) । १७—अति (कां०), अनिय (स०) । १८—गेह (स०) । १९—इन (कां०) । २०—दिए (स०) । २१—मग (का०) । २२—आनहुं (स०) । २३—आंख (स०) । २४—चहो सु चाव (का०) । २५—बिटार (स०) ।

दोहा—१९७–१—सबहीं (कां०) । २—पुहुप (कां०) । ३—जब (स०) । ४—उत (स०) । ५—ऊपर आंही (स०) । ६—सो वह (स०) । ७—बैठि (का०) । ८—जनु (कां०) । ९—पोहम (कां०) । १०—संगी (का०) । ११—तिहि पानिप के सभै (कां०) । १२—सबही (स०) । *इस दोहे के पश्चात् ५ दोहों का निम्नलिखित अंश 'कां०' प्रति में नहीं है ।

जौलों जुरी सभा उजियारी । तौलों बनी चांद ज्यों नारी ।।

सोरह औ वारह सब साजे । ससि छिपि सूर छिपा दोउ लाजे ॥
अब व्यौरा कह वरनि सुनाऊं । सुनिहि जो वारह अभरन नाऊं ॥
प्रथम जो अभरन मंजन कीन्हा । दूजो सेंदुर मांग जो दीन्हा ॥
अभरन माथें तिलक जो लावा । अभरन[1] अंजन दिरगन्ह लावा ॥
अभरन नासिक फूल अमोलू । औ अभरन मुख लीन्ह तँवोलू ॥
अभरन स्रवनन[2] कुंडल वने । मिले चोर तन अभरन गने ॥
अभरन[3] गिएं[4] कीन्हें तिन्ह ताने । औ अभरन कर कनक गलानैं ॥
छुद्रघंटिका अभरन मांही । औ अभरन नेउर झनकाही ॥

दोहा—ए वारह उरधार अरु[5], सोरौं[6] कहौं विचार ।
लघु[7] दीरघ हीं चार सब, सुभर[8] खीन[9] हीं चार ॥१॥

निज वरनौ जिन्ह विध धनि वनी । औ पुनि जौन रूप रंग सनी ॥
कै मंजन धनि प्रथम अन्हाई । रतन जोति तन दिपत देखाई ॥
पहरा चीर रूप दधि वाढ़ा । वदन चंद जनु अव मथि[1] काढ़ा ॥
केस नाग देह तेल चुचारे । चमकहि कंचुल डार विसारे ॥
रचि पत्रावलि मांग वनाई । कंचन रेख कसौटी लाई ॥
जिन करवट वेनी पर धरा । निसि अकास गज मारग परा ॥
जमना मांझ गंग कै धारा । खिन महं सूर किरन उजियारा ॥
मन्दर महं रवि भोर देखाई । वदरे[2] धार कौंध चमकाई ॥
वेनी सुमिल[3] गुही गह दौरैं । क्रोध नाग मनो खाइ मरोरैं ॥

दोहा—इहि वेनी ता पीठ पर, सुनहु नेक अन्हहाइ ।
मलयागिर तन तरु मनौ, तार रहा लपटाइ ॥२॥

दोहा—१-१—अभरैं । २—सुवनन । ३—अभ । ४—किएं । ५—अन । ६—सोनों । ७—लिख । ८—सवर । ९—काहै ।

दोहा—२-१—कथि । २—अतरैं । ३—समल ।

साज मांग जब्र सेंदुर भरा। रैन बार दीपक जनु धरा ॥
भयो भोर रवि किरन निकामी। उदय लाग मनु किरन बिकासी ॥
तापर पूरि धरै पुनि मोती। मोती रतन भये तिन्ह जोती ॥
राखा सीसफूल दुति बाढ़ी। मानों रैन मांग मनु काढ़ी ॥
पुनि ललाट मधि तिलक संवारा। मनां उवा ससि महं धुव तारा ॥
तापर टीक जड़ाऊ लावा। सब सिंगार राज[1] जनु आवा ॥
कटक[2] सिंगार रूप सों राजा। कोर मैन जीतन कहं साजा ॥
बने कान कुंडल इन्ह भाऊ। बदन चंद रथ कै जनु पाऊ ॥
ऊपर खूंट जड़ाऊ धरे। ससि दोहुं ओर दिया जनु बरे ॥

दोहा—जो चितवह स्रवनन चमक, चितै रहै सो चौंध[3]।
टारत[4] चीर दही दिसा, उठै कौंध अस कौंध ॥३॥

नैन चपल औ अंबर लागा। कछी तुरंग लगी जनु बागा ॥
कंजोउ खंज भए उन्ह बरे। कंजन रेख प्रान होइ परे ॥
नैन बाण मनो सांन लगाई। भौहं धनुक धरि चहत चलाई ॥
नासा सुमन फूल पहरावा। मानों नलिनि धर सुवा फंदावा ॥
बिद्रुम अधर पान जो खाई। राते रतन रूप दिखराई ॥
चह चहाइ अंम्रित रस भरे। कुसुम रंग ते राते खरे ॥
तिलक कपोल अंबुज पर परा। मधुकर छौन बिबिध रस अरा ॥
देखि बदन दीपक उजियारा। पर पतंग वर भग्र मनु छारा ॥
अलक जो ढुरि कपोल पर रही। सो उपमा कछु जाय न कही ॥

दोहा—अलक बिराजै बदन पर, सो बरनी इन्ह भाइ।
मानो उड़ नागिन उड़ी, लगी चंद कहं जाइ ॥४॥

दोहा—३-१—राजा। २—कतक। ३—चौन्ह। ४—तारत।

बन ठन जब निकसै कहं भई। बाहर नगर अवाई गई॥
चौके लोग सबै सुधि पाई। सुना कि[1] अब भा चहै अवाई॥
चाव[2] नीक[3] घटही घट बरे[4]। राजा राव[5] आइ सब गरे॥
खरे भये मिलि पाति लगाई। बहु बनान कै सभा बनाई॥
जो जस[6] तैस ठौर तिन[7] पावा। ऊंच नीच अन्तर दिखरावा॥
कहिबे[8] कहं[9] अन्तर तो परा। चोरा[10] एकै सब जग हरा॥
एकै अरथ जुरै सब आई। सब महं एकै जोत समाई॥
बन बनाव[11] राजा भये ठाढे। मानहु[12] सबै चित्र कर[13] काढे॥
जद्यपि चित्र कोटि विधि बनें। पै हिय सबै एक रंग सनें॥

दोहा—सभा बनाई चित्र सम[14], कियो[15] बरन नहं चित्र।
पै निज हिये सवन[16] कहं, सो वह एकौ मित्र ॥१६८॥

कै पहरी मुक्ताहल माला। तै जनु नखत चाद मों बाला॥
कंठसिरी पहिरै अति सोभी। तिन सोभा कहं जग सब लोभी॥
पुनि हिय चंदन चित्र बनाई। कंचन पर मनो मुकत जड़ाई॥
कुच नल फेट गेंद मनो कूदै[1]। धर हिय थार कंचुकी मूंदै॥
चोली चित्र पुहुप जनु खिली। नल गल चहन हार होइ मिली॥
पहिरे बाहुन टाड सलोनी। किंकिनि मुंदरी भइ छवि लोनी॥
रोमावलि नागिन विख भरी। मिलै सुगंधि मांत होइ करी॥
नीवी चंपकली सी छोटी। अति सुन्दर छवि भरी अनौठी॥
छुद्रघंट कत बना जड़ाऊ। बाजत हियै धरत भुइं पाऊ॥

दोहा—जेहर ढिग नेवर बने, अनवट बिछुवन मांहि।
मनो सिंगार गज गवनित, झलकहं औ झलकांहि ॥५॥

दो० ५—१—कौदै।

दोहा—१६८—१—आप चाहत अब आई (स०)। २—चावन (कां०)। ३—कीव (कां०)। ४—फिरे (कां०)। ५—राइ (कां०)। ६— जन (स०)। ७—तिस (कां०)। ८—खुबी (स०)। ९—कौन (स०)। १०—जोरा सब जग एकै परा (कां०)। ११—बनाई (स०)। १२—जानों (कां०)। १३—कह (स०)। १४—जनु कां०)। १५—कै वर्ण लगि (कां०)। १६—जु सवन के (कां०)।

इन्द्र कुबेर बरुन जम देऊ । और देव आए जे[1] तेऊ ॥
सबही मरम बात इह जानी । सुना कि[2] धनि नल रूप लुभानी ॥
नल कहं दीन चहै जैमाला । ताके रंग राती मो[3] बाला ॥
माया रूप सबै नल भये । ताही की मूरति होइ गये ॥
नल अरु तिन्ह[4] महं भेद न[5] कोई । जो देखै जानै नल सोई ॥
नल कै निकट आइ भये ठाढे । नल मिलिगा[6] झलकै नल पाढे ॥*
भेष धारि कै §भगल बनावहि । चहै[7] न भगल[8] काछ तिहि पावहि ॥
भगल[9] किएं वह हाथ न आवै । सो[10] निज[11] मरम हियै काउ[12] पावै ॥
ताके लगन लगा जो कोई । ताही कै[13] चाहै पुनि सोई[14] ॥

दोहा—नल को भेष बनाइ नल, भेख धरै[15] नल नाहि[16] ।
वाकी रीझ न भेख सों, निज नल ता हिय माहि ॥१६६॥

दोहा—१६६—१—ते (स०) । २—सो (स०) । ३—यह (स०) । ४—तिन्हैं (कां०) । ५—नहि (कां०) । ६—मिल गा छल न पाढे (कां०) । ७—चाहै (कां०), जाहन (स०) । ८—फकल (स०) । ९—फकल (स०) । १०—सोच (स०) । ११—मरम (स०) । १२—कर (कां०) । १३—कहि (कां०) । १४—सब सोई (कां०) । १५—भये (कां०) । १६—माहि (कां०), नाह (स०) ।

* पाढे=समूह । सं० पाटक <पाडय <पाड-पाढ (पाइअसद्द महण्णव, पृ० ७२२, ७२३) । नल रूपधारी उन देवों के नल के साथ मिल जाने से नलों का समूह सा दिखाई देने लगा । § भगल=इन्द्र के जैसा सहस्र भग युक्त रूप ।

मिली दमावत कीन्ह अवाई। बाजन बाजे भई चढ़ाई॥
पहलै आई सखीं सहेली। फूली[1] रतन कनक कीं[2] बेलीं॥
सबके हाथ कनक फुलवारी। नग कंचन मिलि जरी[3] सवांरी॥
जौने भाइन फूल[4] जो होई। तैसो[5] बना भेद नहि कोई॥
एकै कनक फूल सब बनी। नांव मात्र न्यारी[6] कै गनी[7]॥
जोति प्रकास एक सब माहीं। दिस्टि भेद निज अन्तर नाहीं॥
एकै अगिनि ताप सब गढ़ी। एकै कुंदन सब नग जड़ी[8]॥
औरे पाति आई ता पाछे। मानों[9] सबै अपछरा काछे॥
इक गावैं इक साज बजावहि[10]। इक नाचैं अरु भाव बतावहि॥

दोहा—साज सबद सुर पाइ कर, तार मिले गति एक।
तिन्हहि[11] एक महं कोटि रस, उपजहि उपज अनेक॥२००॥

पुनि आपुन अब दीन्ह देखाई। बरनौं जौन[÷] भाव बनि आई॥
पहिरे राता चीर सुहावा। तिहि[1] प्रकास रबि दिस्टि न आवा॥
चिहुर रैन मुख ससि होइ ऊवा। नैक कलंक⊙ भौंह मनु जोवा॥
कुंडल स्रवन देखि मन थाका। झमक रहे जानहुं रथ चाका॥
बना जो सीसफूल उजियारा। छत्र झिलमिले नखत संवारा॥
सुंदर तिलक सारथी[2] छाजै। ताकर ओकै अलग बिराजै॥
सोहे दृगन जो अंजन लागा। मानहु लागि म्रिगन मुख बागा॥
मांग सो जनु गज पंथ संवारा। चंदन चित्र कचपचै तारा॥
मुक्ता लर जो मांग बैसाई। मनु बग पांति घटा मंडराई॥

दोहा—दिन महं[3] रैन समाज दुति, रीझि[4] छका[5] सब कोइ।
बहु जन कहा कि ससि उवा, निस भई द्यौस न होइ॥२०१॥*

दोहा—२००–१—फूलन (कां०)। २—जनु (कां०); ३—जुरी (स०)। ४—भूल (स०)। ५—तैसै (कां०)। ६—अनियारे (स०)। ७—कह (स०)। ८—चढ़ी (कां०)। ९—जानों (कां०)। १०—बनावै (कां०)। ११—तिहि (कां०)।

दोहा—२०१–१—जौह (स०)। ⊙'स०' मे 'करंक' है। २—स्वारथी (स०)। ३—अरु (स०)। ४—देपि (कां०)। ५—थका (कां०)। *यह दोहा दोनों प्रतियों ('कां०' और 'स०') मे है, पर इसकी चौपाइयाँ केवल 'स०' प्रति में है। जान पड़ता है, 'कां०' मे प्रमाद वश छूट गए।

÷ प्रकार (स०)।

इहिं बनान[1] जब दीन्ह दिखाई । लोकहिं तनकी[2] सुरति भुलाई ॥
एक अचेत डरे भुइं परे । जिउ तिहिं[3] सौपि जियत जनु मरे ॥
एक खरे पै तन सुधि नाहीं । मन तन सुधि करता ता माहीं ॥
टकै[4] लगाइ चित्र होइ रहे । एकै चित्र सबै चित गहे ॥
एकहि मद प्रथमै[5] सब[6] माते । एकहि रंग सभा सब राते ॥
घट घट एकौ रूप समाना । जो देखहि सो तिन्हहिं[7] लुभाना ॥
जौन अंग[8] अटका[9] मन जाका । सो अतिही थाका भा ताका ॥
और अंग तिन उलट न हेरा । मन एकौ सो एकै घेरा ॥
ऐसै अंग अंग लिपटाने । सब ताकी छवि माहि समाने ॥

दोहा—घट घट भीतर जीउ वह[10], सबको जिउ ता माहि ।
सभा एक मैं होइ रही, दुतिय भेद कछु नाहि ॥२०२॥

आइ सभा भीतर पग धारी । दिस्टि फेरि चहुं ओर निहारी ॥
नल की ओर[1] दिस्टि जब[2] परी । चलि तिहिं ओर जाइ भइ खरी ॥
जो देखै तौ कइ नल ठाढ़े । नल बिन ज्यों नल ह्वै छल बाढे ॥
ओ पुनि नल ता हिय जो समाना । जो देखा सो नल कै जाना ॥
दुविधै पड़ी सोच जिय करै । विधि किहिं भांति जानि पिउ परै ॥
जो अब चूकु जनम भर रोऊं । पावा[3] पीउ हाथ[4] सों खोऊं ॥
एहिं सभा महं पीउ जो पावा । तो पावा पुनि हाथ[5] न आवा ॥
कौतुक दुखन सभा यह पाई । औ अब छिनक माहि उठि जाई ॥
अबकै चूके[6] आस न कोई । फिर पिउ[7] को दरसन कत होई ॥

दोहा—पीतम के ढिग ही खरी, मरै[8] विसूर विसूर ।
जौ लगि लखा न निज मरम, निकट रहा होइ दूर ॥२०३॥

दोहा—२०२-१—बनाव (कां०) । २—ताकी (स०) । ३—जीवत ही सुजीत (का०) । ४—तकै (स०) । ५—प्रिथमी (कां०) । ६—भई (का०) । ७—भये (कां०) । ८—रंग (कां०), नैनन (स०) । ९—रंगा (का०) । १०—सो (कां०) ।

दोहा—२०३—१—ओट (का०), ओठ (स०) । २—सब (कां०), चित (स०) । ३—काया (स०) । ४—निकट (स०) । ५—नहिं जनम गवांवा (स०) । ६—भूलै (का०) । ७—पुनि प्रीतम सौं भेट न (कां०) । ८—मरी (स०) ।

जब[1] नहिं निम्रित होइ वहु बाधा । तब तिन परभु[2] अँचित अरावा ।।
दीन बंधु बड़[3] अंतरजामी । घट औघट समान बिसरामी ।।
भूलै पंथ बतावन हारे । संकट परें छुड़ावन हारे ।।
तुम जानौ जिहि मद ही माती । जाके पेम रंग उर राती ।।
कृपा करहु मोहि वहै मिलावहु । छरहिं[4] जो छर तिन पाहिं[5] छुड़ावहु[6] ।।
असरन सरन सरन जब गई । तब अकास बानी तिहिं भई ।।
समुझि सम्हारि बार उर सिछ्या । जे छर तिनकैं तीन परिछ्या ।।
इक तिनकै नाही परिछाहीं । आंख पलक लागत पुनि नाहीं ।।
औ तीसर तिन्हकर इह भाऊ । अधर रहै भुइं लगै न पाऊ ।।६।।

दोहा—पुरुख जो तिरगुन रहित सखि, सोई तेरो पीउ ।
सो तू समुझि निवार भ्रम, मत मैला कर जीउ ।।२०४।।

सुनि अकास बानी उर धारी । तब अच्छर छर निरखि निहारी ।।
देखै त्रिगुन अलग तिन[1] माही । एक पुरुख दूजा[2] कोउ नाही ।।
वहै अचल राखै थिर पाऊं । और अधर ह्वै रहै[3] चलाऊ ।।
एक सो पुरख निरखि पहिचाना । मिटा भरम मन निहचै आना ।।
चीन्हेसि कहसि यहै सो पीऊ । जिहि लै थापा[4] आपन जीऊ ।।
गह भेटा पीतम अपनावा । लै उर जैमाला पहिरावा ।।
छरैं छरैं वह छरी न गई । जाकी अहै ताहि कै भई ।।
सरवर सभा सूर ससि मिले । कोंई कवंल दुहुन मन खिले ।।
आनंद अंग अमाहिं न दोऊ । तीर लगे तरि समुंद बिछोऊ ।।

दोहा—जनु सुखदाई दिन उवा, दुख निसि गई बिलाइ[5] ।
चकई चकवा सों मिली, बिछुरन दाह सिराइ[6] ।।२०५।।

दोहा—२०४—१—जब (कां०) । २—ग्रभ (स०) । ३—विधि (कां) ४—फरनहं (स०), छर (कां०) । ५—पहं (स०), पीऊ (कां०) । ६—बिछरावो (कां०) ।

दोहा—२०५—१—सब (कां०) । २—और (स०) । ३—देखै (स०) । ४—ठाह पाइ पै (कां०) । ५—बिहाह (स०) । ६—सिराह (स०) ।

बाला दइ नल कहं जैमाला । चली और लोगन उर साला ॥
अपने उर सों माल उतारा । सोई दुरजन[1] जन हिय डारा ॥
दामिनि कौंध दमंती गई । लोगन घटा रंध्र हिय[2] भई ॥
सगरी सभा झुरै[3] जनु नागी । विसुख[4] भये विरही वैरागी ॥
चातक[5] ज्यों जिय हुती जो आसा । मिटी सो पिक लों भई निरासा[6] ॥
औ[7] पुनि इन्द्रादिक[8] जे देऊ । इहि चरित्र[9] थकित[10] भए तेऊ ॥
इन अबला कैसें नल जाना । कौने चिह्न पुरख[11] पहिचाना ॥
पुनि प्रसन्न मन ह्वै सब बोले । अंत होय[12] जो जिन्ह कै सो ले ॥
भली भई नारी नल पावा । बिधना बरनहि बरन मिलावा ॥

दोहा—पुनि मन में आई जो कछु, लै सुर संग सुरेस ।
तहां गयो बैठो जहां, नल नरपती नरेस ॥२०६॥

कै अति कृपा इन्द्र नल तोखा । धोखा मेटि प्रीति रस पोखा ॥
प्रीत जनाइ भयो गुन दाई । साल्होतर* विद्या सिखराई ॥
जासों तुरै मरम सब जानै । रोम रोम लच्छन पहिचानै ॥
पुनि जमहू अति प्रीति जनाई । कियो बचन बोला बरदाई ॥
कहेसि देव देवन कै[1] देऊ । सो मो बरख[2] आउ[3] तोहि देऊ ॥
अगिन होइ तुव आज्ञाकारी । तोरे बचन बरै बिन बारी ॥
बिनु तिन कास्ट प्रगट होइ आवै । जो तूं कहसि सो कर दिखरावै ॥
बरुन देव अज्ञा[4] पुनि मानै । जब चाहसि तबही जल आनै ॥
हेरसि छूंछे कलसन माही । हेरत छिन पानी भरि जाही ॥

दोहा—कहि ये बचन बढ़ाय[5] हित[6], छिनक बैठि नल पास ।
पुनि सब देव बिदा भये, चले गये कैलास ॥२०७॥

दोहा—२०६—१—जनु लोग नगींव डारा (का०) । २—जिय (कां०) । ३—छरै (स०) । ४—रोवहि (कां०) । ५—चित चातक (स०) । ६—उदासा (कां०) । ७—रोवै (कां०) । ८—इंद्र अब काजे (कां०) । ९—अचरज (कां०) । १०—पतघट (स०) । ११—जिहि कर (कां०) । १२—नैकु गुढी जोही जिय पोले (कां०) ।

दोहा—२०७—१—गुर (कां०) । २—पुरप (कां०) । ३—आद (कां०) ।

* शालिहोत्र विद्या, अश्व शास्त्र । ४—अकहा (स०) । ५—पढाइ (कां०) । ६—चित (स०) ।

और भूप सब लाग[1] सिधाए । दूलहि जनवासे लै आए ॥
इत[2] जेंवन[3] के सामां भए । तब लगि उहां परछन[4] कै गए ॥
गरी छुहारा दाख चिरौंजी । तरी सलोनी पिस्ता न्यौजी ॥
औ बदाम मींगी[5] भल[6] पागी[7] । लौंग कपूर मिरिच तिहि लागी ॥
टाटक खरबूजा पुनि आनें । पाल परे जे अंब बखाने ॥
पौडा औ मीठे हिंदुवाना । जिनहि खात हियरा सियराना ॥
औ अनवन पकवान मिठाई । बहुत सवादनि सानि बनाई ॥
दही बरा खाजा औ बूंदी । अति स्योनार पराकइ गूंदी ॥
सुतलड़ मोतिलड़ कंद गिदवरा । पीठि[9] जलेबी औ गोसवरा[10]* ॥

दोहा—बनी मिठाई बहु बरन, आवत[11] सो[12] उदभास[13] ।
जो निज देखी सबन में, एकै ऊख[14] मिठास ॥२०८॥

सिद्ध[1] भई अब सीझ[2] रसोई । जुरा लोक आवा सब कोई ॥
जेंवन चले पहिरि सब धोती । चमकहि देह कनक जनु पोती ॥
कनक खराऊँ औ नग लागे । आनि धरी सबहीं के आगे ॥
ताते पानी हौद भराई । नाऊ बारिन पाउं धोआई ॥
पाउं पखारि रसोई आए । कंचन पटा सबै बैठाए ॥
सिरै जड़ाऊ पटा धरावा । तिहिं ऊपर दूलह बैठावा ॥
कनक थार नग कुंदन जरे । दोइ दोइ सबके आगैं धरे ॥
सियरे नीर धरी भरि झारी । जगमगाइं जनु[3] हेम सवांरी ॥
औ पुनि धरे जराउ कटोरा । जन जन आगैं दस दस जोरा ॥

दोहा—जगमगाट भा रतनन, छिपे दीप मसियार ।
मानहु जामिन बीत गई, भयो घोस उजियार ॥२०९॥

दोहा—२०८–१—लाद (कां०) । २— आवत (स०) । ३—ज्यों (स०) । ४—पूछन (कां०), पवन छकि (स०) । ५—को (कां०) । ६—फल (कां०) । ७—पावो (कां०) । ८—लाइ (स०) । ९—सभ (कां०) । १०—कोसनिवारा (कां०), गोसवारा (स०) । ११—औ वोह (कां०) । १२—स्वाद (कां०) । १३—सुवास (कां०) । १४—अधिक (स०) । * गोसवारा=कान के कुंडल जैसी मिठाई, मुरुक्कि या इमरती ।

दोहा—२०९–१—सीभू (स०) । २—सिद्ध (स०) । ३—नग (स०) ।

परसा प्रथम भात लै आए। ते चाउर जनु पुहुप बसाए॥
पुनि फुलका आए अति झीने। उज्जल कोंवल घीउ सों भीने॥
पुरी कचौरी कोमल तातीं। मुख मेलत खिन कंठ बिलाती॥
पुनि परसीं जहं लौं तरकारी। मिरचन नोंग मिलाइ संवारी॥
बरन बरन तेवन पुनि आए। त्योनारिन्ह ज्योनार बनाए॥
गौंछ मुगौंछि और फलवारी। मकरा खंडरा खंडरि बोबारी॥*
पतवर औ गुरवरी मुंगारा। सालन सूख[1] अनवनव[2] संवारा[3]॥
जनु नैनूं[4] अस कोंवर बरा। बीघे[5] दहीकार[6] मांठा परा॥
सब सँवान बहु बिन्त[7] मिठाई। जाउरि पछियाउरि पुनि आई॥

दोहा—जो कुछ जेवन सब अमी[8], बहु[9] रस बनी[10] रसोइ॥
अति रुचि सों ज्योनार भइ, रीझ उठा सब कोइ॥२१०॥

ब्याह चहै जो सुयंबर कीन्हां। सभा मांहि जैमाला दीन्हां॥
पहले रीत भई[1] जनु[2] अही। बरनी जस भारत में कही॥
कथा आदि होई जो जैसी। कहा चहै जैसी की तैसी॥
जद्यपि कविता बात बनावै। नेक कथा विस्तार सुनावै॥
पै अस बात न जाइ बनाई। सो लावै जो लगै लगाई॥
बातन्ह मिलै बात पुनि सोई। अनमिल बात हंसै सब कोई॥
बातहि मीठी बातहि करुई। बातहि बोझल बातहि हरुई॥
बातै सब बातन महं जीऊ। बातन्ह मांहि दुरा[3] सो पीऊ॥
बातै जिन जानी तिन जाना। बातन महं निज मरम दुराना॥

दोहा—बात भेद जाने बिना, भूल रह्या[4] नर जीउ।
जो[5] पिउ सो जिउ[6] जीऊसों, ढूंढत[7] डोलहिं पीउ॥२११॥

दोहा—२१०—*यह चौपाई (कां०) प्रति में है। (स०) प्रति में इसके स्थान पर यह चौपाई है :—रिकवंच मिकवंच ऊद झकोरें। सालन सोग्व नांव कहं थारें॥ इसका उत्तर पद ७ वीं चौपाई का उत्तर पद है, इसलिये प्रस्तुत संपादन में इसको ग्रहण नहीं किया गया। वास्तव में इसका पूर्व पद और (कां०) प्रति का पूर्व पद एक ही है। उर्दू प्रति से नकल होने के कारण पाठ भेद हो गया। इसके 'रिकवंच' 'मिकवंच' (कां०) प्रति में 'गौंछ मुंगौछ' है। ऐसे ही 'और' का 'ऊद' और 'फलवारी' का 'झकोरें' होगया, समझना चाहिए। १—सवक (कां०), सोक (स०)। २—नांव कहं (स०)। ३—थोरा (स०)। ४—पैले (कां०)। ५—वंचे (स०)। ६—वोकार (स०)। ७—करव (कां०)। ८—अहे (कां०)। ९—भर (कां०)। १०—मवै (कां०)।

दोहा—२११—१—यहै (स०)। २—जस (कां०)। ३—हरा (स०)। ४—मई (स०)। ५—खोजै (कां०)। ६—जोगी (कां०)। ७—पिउ ढूंढत (स०)।

जब अति छकन चखी मतवारी । चखी मिली मिल भई धरारी ॥
जनु दोउ कनक बेलि लपटानी । उर सों उर भुज सों भुज तानी ॥
प्रथम अधर सों अधर मिलाई । मातों अहै खेल पर आई ॥
पुनि धन केवल फूल ज्यों वेली । कन्त नवाइ हार कै मेली ॥
खिली कली रायन मन मानां । तव मधुकर पुनि कली लुभानां ॥
आइ रसिक वीधी सो कली । अति निरमल अभोग रस भरी ॥
अरजुन वान राहु जन मारा । वरमां मोती वेध उतारा ॥
अब निज भा तन मन संजोगू । केलि वान मनु हना वियोगू ॥
सुख वाढ़ा वैरी जनु मारा । रतन काढ़ि तिन्ह सुख पर डारा ॥

दोहा—आंगूठी (आगुंठन) अम्बुज करी, जब खोली रवि नाहं ।
खुलत समै धन हार होइ, गेद भई छिन माहं ॥

सम्पुट वँधी कली खिल गई । सिज्या पर वसंत रितु भई ॥
हनि वियोग होरी कर जारा । कीन्ह वखान जौन विधि मारा ॥
चोली दरक दरक झकझोरा । फूलै लाग फूल चहुं ओरां ॥
प्रीतम केलि धमार लगाई । धन कुहकी होइ निरत मचाई ॥
पीउ रहसि डफ सवद सुनावै । धन चाचर महं चंग वजावै ॥
छुद्रघंट चंगै सुर छीने । जनु वसंत गावहिं रस भीने ॥
नेवर और विछीं धुन राजै । वीन मृदंग चंग जनु वाजै ॥
छूट छूट तनु चंदन चीरू । उदय (उड़ै) सो सेत सुवास अवीरू ॥
सेंदुर फैल दुहुन कै लागा । रँगा गुलाल चीर औ वागा ॥

दोहा—धन वसेभु (पसेउ) तन मन मगन, खेलत हुते खिलार ।
पिउ पिचका छाडां जवहिं, अवछर लीन्ह सम्हार ॥

त्योऊं[1] बरनौं बात[2] रसीली । कहौं जो रस महं[3] छैल छबीली ॥
पिउ बोला प्यारी सुन मोसौं । निज मन मरम कहौं हौं तोसौं ॥
मैं जबसों तो महं जिउ डारा । तबसौं आध घरी न बिसारा ॥
छिन छिन सुरत लैन लग तोरी । मन तूही मैं राखौं गोरी ॥
जैसैं मिरग नाद मन लावै । औ अलि कवंल बास ज्यौं पावै ॥
चातक स्वाति बूंद कै आसा । निस दिन चित दै रहै अकासा ॥
त्यों तोसों मै लगन लगाई । गुडी डोर ज्यों सुरति मिलाई ॥
निस दिन सोच रहा मोहि तोरा । मुरत मूत छिन जोर न तोरा ॥
रहसि अखंड लगी मन मोरें । औ जिउ मोर रहै तनु तोरें ॥

दोहा—हौं अपनौ सत भाव कहि, अब बूझत हौं तोहि ।
तैं[4] धौं पेम बैस मुखी, किमि दीन्यौ मन मोहि ॥२१८॥

जो तुम पुनि पूछौ मो पाहां । बिनौं[1] सुनौ सरवन दै नांहां ॥
मै जब सौं पिउ मो जिउ लावा । तब ही सौं आपा बिसरावा ॥
तन आपन सो निरापन कीन्हां । जिउ लै काढ़ि पीउ महं दीन्हां ॥
जिउ पुनि जब पिउ सौं मिल गयऊ । जिय कै ठौर जीउ पिउ भयऊ ॥
जिउ पिउ अन्तर भेद भुलाना । मन निज जीउ पीउ कर जाना ॥
रोमहि रोम रहा रम पीऊ । जीउ पीउ भा हौं[2] निरजीऊ[3] ॥
हुता जो मन में मै अभिमाना । सो चलि प्रीतम माहिं समाना ॥
मन पुनि पीउ मिला ज्यौं जीऊ । सो अब कहन लागि हौं पीऊ ॥
मन जिउ मेटि पीउ भा सहीं । हौं हौं कहै औ मांत्र न रही ॥

दोहा—जैसे दिनकर किरन मिलि, तम असत होइ जाइ ।
तैसे प्रेम प्रकाम महं, हौं[4] हौ गई हिराइ ॥२१९॥

कह कर बरा जागत मिल सोए । अँग अँग कै पिछले दुख खोए ॥
मिल लपटाइ एक होइ गए । दोनों फूल कली ज्यों भए ॥
हियैं हार अंतर न सहाई । दीन्ह डार लै तार बिछाई ॥
गाढै खिन भोजन कहलावहि । हुलसि हुलसि दोउ हिया मिलावहि ॥

दोहा २१८–१—त्यो (कां०) । २—अब बात (कां०) । ३—मैं (कां०) ।
४—तव (कां०) ।

दोहा २१९–१—स्योंहि (कां०) । २—ही (कां०), हौन (स०) । ३—पीऊ
(कां०) । ४—सबही (स०) । ५—सो (कां०) ।

रैन गई अब भयो बिहानूं । सोवा चांद उठा जब भानूं ॥
पलक एक लौं पलक लगानीं । ततखन आइ सखीं बतरानी ॥
धन सुकुवांर कंत रति मानी । तब हुलास मद मनहिं न आनी ॥
अब तिहिं स्रम[1] अचेत होइ सोई । सखी जुरी तिन्ह सुरत न कोई ॥
वदन कवंल कुमदन[2] होइ रहा । अति निरंग कछु जाइ न कहा ॥
कंचुकि दरक दरक ह्वै[3] गई । सिव पूजा पुहुपन जनु भई ॥
नागिन अलक ढरकि कुच अरीं[4] । जनु हर ग्रीउं हार होइ परी ॥
भाल जो तिलक रचा मिट गयऊ । अहा जो ठाढ़ आड़[5] अब[6] भयऊ ॥
वेनी नाग उलटि कै परा । गयो सो ऐंठ मार जनु धरा ॥

दोहा—मुकुतमाल जो उलटि कै, परी मांग पै जाइ ।
जनु[7] वेनी करवत धरा, रुहिर रहा लिपटाइ ॥२२०॥

जैसै[1] सखी आय मुंह बोली । सुना सो सबद आंख तब खोली ॥
सुरज प्रकास कवँल जनु खूटी । पुतरी भवंर बंधी तेहि छूटी ॥
ढरके जाहि रैन मधु पीये । आरस भरी[2] खुमारी लीयैं ॥
राजहिं नैन कवंल छबि धरहीं । मानों[3] रूप भार झुक परही ।
पुनि उठ भुजा जोर अंगड़ानी[4] । सुभर[5] कमान मैन जनु तानी ॥
सोहै वदन जो लेत जंभाई । ज्यों फिर[6] कवंल खिले मुंदजाई ॥
बिथुरे केस वदन चहुं पासा । पून्यो चन्द राहु जनु ग्रासा ॥
पुनि जो सुधार धरे गहिवारा । छुटा ग्रहन जनु भा उजियारा ॥
मोती बिथुर सेज पर परैं । मनु[7] ससि पास नखत निरमरैं ॥

दोहा—चीर चीर तन चीर भा, गै अभरन सब टूट[8] ।
अँग अँग सब निरँग भए, रंग लीन्ह पिउ लूट ॥२२१॥

दोहा २२०–१—सरन (कां०) । २—कोई (कां०) । ३—जो (कां०) । ४—धरी (स०) । ५—ओट (कां०) । ६—अत (कां०) । ७—मानो (स०) ।

दोहा २२१–१—जब पुनि (कां०) । २—किये (कां०) । ३—जानों (कां०) । ४—इंद्र आनी (कां०) । ५—सुध न (कां०) । ६—कर (स०) । ७—जनु (कां०) । ८—छूट (कां०) ।

देखि सरूप सखीं विहंसानी । रति अजान पिउ दीन्ह सयानी ।।
बूझा चहैं चाव मन माहीं । औ पुनि बूझ न सकैं लजाहीं ।।
पै सब एक सरोवर बेलीं । मन मिल रहे एक मग खेलीं ।।
बूझा लाज छाड़ि कहु[1] रानी । तुम तो आज निपट[2] कुम्हलानी ।।
देख तुम्हार रूप विकरारा । धरक धरक जिउ करै हमारा ।।
कंत मिलै जो यह गत होई । तो जानहुं[3] पुनि सुख नहिं कोई ।।
तुम तो[4] निपट खीन भइ[5] गोरी । लचकी लाक तोर जनु जोरी ।।
वदन ज्योति इम देइ देखाई । ज्योंकर कंवल सांझ मुरझाई ।।
कुसुम वरन तन मनु[6] अस भयऊ । जनु[7] रवि किरन[8] रंग उड़ि गयऊ ।।

दोहा—तुम ज्यों कंत मिलाप कौं, चहन[9] हुता[10] जिउ चाव ।
अब डरपै कांपै हियो, देखि तुम्हारो भाव ।।२२२।।

आली तुम तेहि मुख ना जानों । तब जानहु जब सो रस मानों ।।
यह सुख और न जानै कोई । सो जानें जो पिउ संग सोई ।।
ही हूं डरत हुती मन माहीं । जौलौं लाल गही नहिं वाहीं ।।
जब प्रीतम गह कंठ लगाई । मिटी संक सुख माहं समाई ।।
तन कै सुरत भूल सब गई । मिलि प्रीतम सो सुखमइ[1] भई[2] ।।
आली जब यह[3] सुख मन पावे । तन हित[4] सहज विसर तब जावै ।।
तन कहं जो कछु होई सो होऊ । जिउ न सहै[5] छिन पीउ विछोऊ ।।
तन की दुख तौ लौं मन आवै । जौलौं जिउ[6] पिउ[7] सुख नहिं पावै ।।
सुरत न धौ तन पीत कि राता । मन प्रीतम[8] सुख[9] सो[10] जो[11] माता[12] ।।*

दोहा—जब सों सो पीतम मिला, तब सों मों मन माहिं[13] ।
वह मिलाप सुख रमि रहा, अब तन की सुधि नाहिं ।।२२३।।

दोहा २२२–१—कै (कां०) । २—वोहत (कां०) । ३—जानीं (का०) । ४—सब (कां०) । ५—मैं (कां०) । ६—तिन (स०) । ७—मानो (स०) । ८—तेज (कां०) । ९—हम हूं (का०) । १०—ना (कां०) ।

दोहा २२३—१—पिय कै (स०) । २—गई (स०) । ३—सो (कां०) । ४—तप मन तन पुनि नैक न आवै (कां०) । ५—चहै (कां०) । ६—मुख (स०) । ७—समीप (स०) । ८—आतम (स०) । ९—पीय के (कां०) । १०—के (कां०) । ११—रंग (कां०) । १२—राता (कां०) । १३—नाहिं (कां०) ।

* 'कां०' में यह चौपाई पाँचवीं चौपाई है ।

देखि सुहाग धाइ पुनि धाई । राजमती रानी पहं आई ॥
रानी चलि देखी किन बारी । करहु संभार निपट अरसारी ॥
जगी जो रैन मिलन होइ रही । ससि मुख जोति गहन जनु गही ॥
सुनि सो बात रानी मन जानी । भा सुहाग दूलह रति मानी ॥
बिहँसत उठि बारी पहँ आई । कै पियार गहि कंठ लगाई ॥
नग मुकता भरि थार मँगाए । वार फेर कै वार लुटाए ॥
अरगज घोरि अंग उबटावा । दै अन्हान सब अग्ग मिटावा ॥
आरस राह उतर जब गयऊ । पून्यो ससि निरमल[1] पुनि[2] भयऊ ॥
पुनि सिंगार अभरन सब बनी । बारी भई रूप चौगुनी ॥

दोहा—जो बारी रति[3] सिसिर[4] सम, स्वेत[5] करी इमि[6] कंत ।
सो फिर फुलवारी भई, सकल[7] सिंगार बसंत ॥२२४॥

भइ जौनार बरात जिवांई । दायज राखा होइ बिदाई ॥
भरि भरि थार हीर नग धरे । मोती तोलि कुरौना करे ॥
मुहरन चहुं दिसि रास लगाई । गिनी न जाहिं तुला न तुलाई ॥
कापर साज न जाइ गिनाई । सोने साजे सब[1] हिंदुवाई[2] ॥
सै अभरन दासी उजियारी । बनी काम सांचे जनु ढारी ॥
पांत पांत काछे है[3] खरी । सेत सुरंग दुरंग[4] औ[5] हरी ॥*
इक दिस ठाढ़े हस्ति सिंगारे । झलकैं औ झूलें मतवारे ॥
इक दिस पांति अरथ की लाई । वृषभ सिंगोटी कनक मढ़ाई ॥
राजा राइ संग जे आए । सब पहिराइ तुरंग चढ़ाए ॥

दोहा—पुनि पहिरावा कटक सब, इहि बिधि आदर कीन्ह ।
जौन भया जिहिं जोग जस, तस बागा तिहिं दीन्ह ॥२२५॥

दोहा २२४–१—तहिं (कां०) । २—वोहूं (कां०) । ३—अति (स०) । ४—रति (स०), रवि (कां) । ५—सरी (स०), ससिर (कां०) । ६—निपट (स०) । ७—रति (स०) । ८—भई (कां०) ।

दोहा २२५–१—सहिं (कां०) । २—डवाये (कां०) । ३—भई (कां०) । ४—डोर (कां०) । ५—नग (कां०) । * इस चौपाई के पश्चात् २२८वें दोहे की चौपाइयों तक का अंश (स०) प्रति मे नहीं है । प्रसंग खंडित हो जाने से यह स्पष्ट विदित होता है कि उसमे यह अंश असावधानी से छूट गया । प्रस्तुत संपादन मे यह 'कां' प्रति से लिया गया है ।

राजा नल जब कीन्ह पयाना । आनंद भरा न अंग समाना[1] ।।
पूजी आस भई मन भाई । गा दुख सुख निदान निधि पाई ।।
जिहिं धन लागि पेम दधि[2] बूड़ा । सो लै तिरा बिहंसि हिय जूड़ा ।।
बाढ़ा सुख हुलास जिउ[3] कीन्हां । तिहिं सुख मगन दान बहु दीन्हां ।।
दायज मिला सो बांट न आंटा । आपन दरब काढ़ पुनि बांटा ।।
भूखा दुखी मिलै जो कोई । जेतक देह भूख धरि खोई ।।*
जौन जौन ठां भयो[4] उतारा । तहां छोर बैठो भंडारा ।।
दरब हीन नर[5] ढूंढ़ मंगाए । करै धनाढ्य दरिद्र मिटाए ।।
जौलौं चला देस मैं[6] आवा । तौलौं अनगिन दरब लुटावा ।।

दोहा—जुवा[7] दावं[8] ज्यों लच्छमी, खिन आवै खिन जाइ ।
धनी नाउं[9] जो दीजिए, सोइ[10] रहै ठहराइ ।।२३०।।

राजा खेम कुसल सौं आवा । जब[1] उज्जैन नगर नियरावा ।।
नेगी तै सो सुनी अवाई । नगर पटम्बर[2] कीन्ह छवाई ।।
हाट बजार कीन्ह सब राता । बना नगर जानहु छवि[3] छाता ।।
सगरे देस बात[4] यह सुनी । भा अनन्द हुलसी सब दुनी ।।
घर घर लोगन कीन बधावा । सुखमैं सरवर देस दिखावा ।।
मिटा देस दुख निसि अंधियारा । उवा सूर सुख[5] भा उजियारा ।।
हितू लोग अम्बुज होइ खिले । मन हुलास मधुकर होइ मिले ।।
सकुचि सत्रु कुमुदनि से भए । कारे पीत सेत होइ गए ।।
सीस नवाय रहे चहुं ओरां । डूबहिं उछरहिं डाह[6] हिलोरां ।।

दोहा—हुलस हितू बांधव कुटुंब, रावत राना राइ ।
सबै जाइ आगै मिले, टीका भेंट चढ़ाइ ।।२३१।।

दोहा २३०—१—अमानां (कां०) । २—दुख (स०) । ३—मन (स०) । * 'स०' प्रति में यह चौपाई नहीं है इसलिये उसमें आठही चौपाइयाँ हैं । ४—होत (का०) । ५—सब (का०) । ६—कौं (स०) । ७—ज्यौं (कां०) । ८—आवा (कां०) । ९—अर्थ (कां०) । १०—वही (कां०) ।

दोहा २३१—१—आइ (कां०) । २—नेर (कां०) । ३—सब (कां०) । ४—अवाई (का०) । ५—भूप (कां०) । ६—दाह (कां०) ।

राजा आइ नगर पगु धारा। सूने पिंड प्रान जनु डारा॥
है जो लोग राजा दुख दुखी। अब ताके सुख भए सब सुखी॥
कौतुक देखन कैं सब नारीं। चढ़ि चहुं दिसि चौवार अटारी॥
ते अबला यह रूप दिखाईं। मनु अवछरा देखनै आईं॥
दरब लुटाय नगर भरमारा। आय पवँरि अब कीन्ह उतारा॥
उतरा भीतर पवँरि बिवांनू। निकसा चांद गयो छिपि भानू॥
मंदिर सों[१] नारी सब आईं। बीच चाद चहुं ओर तराईं॥*
गावत मंगलचार बधाई। दुलहिन कहं[२] मंदिर महं[३] लाई॥
मोतिन थार निछावर कीन्हीं। लै[४] नाउंन[५] बारिन कहं दीन्हीं॥

दोहा—सब निसि कीन्हा रतजगा, भा कुल कर[६] व्योहार[७]।
आनँद मगन बधाई, गाए मंगलचार॥२३२॥

होइ लाग पुनि सदा बधावा। बिधिना सुख संजोग बनावा॥
भोग बिलास करे मिलि दोऊ। रातहिं द्यौस न होइ[१] बिछोऊ॥
दोऊ एक पेम मद माते। अन्तहकरन एक रँग राते॥
दोउ मन मिलि जो होहिं इक ठाऊं। तिहिं सुख का उपमा जो बताऊं॥
औ घर राज भोग कर साजू। खाँग[२] न कौनौं[३] सबै समाजू॥
दोऊ रहै फूल से बने। फूलन कों सुबास रंग[४] सने॥
दिन दोइ फूल कन्त औ अली। रैन होहिं मिलि एकै कली॥
मिला कवंल मधुकर कर जोरा। सेज सरोवर लेहिं हिलोरा॥
भंवर समाइ कवंल महं रहै। कवंल सो सिमटि भवँर कहँ गहै॥

दोहा—दोऊ पागे पेम रस, हियै मिलाप हुलास[५]।
रात द्यौस संगहि रहैं, षट रितु बारह मास॥२३३॥

दोहा—२३२—१—सोंना (कां०)।* 'स०' प्रति में यह चौपाई नहीं है। २—नवल (स०)। ३—ले (कां०)। ४—तेई (कां०)। ५—त्यों (का०)। ६—गल (स०)। ७—पिउ हार (स०)।

दोहा—२३३—१—रहै (कां०)। २—गहा (स०)। ३—कोई (कां०)। ४—रस (स०)। ५—विलास (स०)।

रितु बसंत फुलि[1] है बन बेली। सुरितु चैन बैसाख नवेली ॥
सब दिन सुख तैसै फुलवारी। चांचर जुरैं होंहि धमारी ॥
वाजहि साज राग धुनि होई। इंद्र अखाड़ कहा जस सोई ॥
नवल फूल फूले चहुं ओरा। आवहि पवन सुबास हिलोरा ॥
सुमन हार कों दाऊ डारी। औ अभरन सब सुमन सवाँरी ॥
सारे पुहुप वेलि जनु फूले। इहि मनु गति मधुकर होइ भूले ॥
अँग अँग भवँर पुहुप रस लेई। रदन कवँल कंजन सुख देई ॥
रैन होइ मंदिर सुखवासी। सज्या बीनि कुसुम दल डासी ॥
हँसि हँसि मिलहि पुरख अरु नारी। मगन केलि रस प्रीतम प्यारी ॥

दोहा—पीतम प्यारी एक संग, रितु बसंत पुनि होइ।
या सुख सम संसार महँ, दूजा[2] और न कोइ ॥२३८॥

रितु ग्रीसम अति चैन विहाई। जेठ असाढ़ अधिक सुखदाई ॥
तपन[1] तहां संगम जहं नाही[2]। ये मिलाप सुख अति सियराही ॥
मिलहि नैन हिय सीरक होई। अंग मिलाप मिलै जनु सोई ॥
रहैं सदा सौंधै तन भीनें। सीरे[3] बसन[4] पहिर अति झीनें ॥
दिन बैठक भुइंहरा बनावा। चहुं दिस गांडर[5] सूर[6] जो छावा[7] ॥
घोरि अरगजा अधिक सुबासा। दिन दोऊ छिरकैं[8] चहुं पासा ॥
छिन छिन करैं नीर छिरकाई। पनिया[9] ढरैं होइ सियराई ॥
सीत रैन ज्यों दिन लिपटाही। ज्यों ज्यों मिलहि अधिक सियराहीं ॥
निसि सतखन लै सेज बिछाई। मिले मिला तन पौन डुराई ॥

दोहा—बरनी[11] जिन विधि छओं रितु, करहि केलि रस भोग।
ऐसो मगन सँजोग सुख, लाए बात बियोग ॥२३९॥

दोहा—२३८-१—फल (कां०)। २—आतम (स०)।

दोहा—२३९-१—नैन (कां०)। २—माही (कां०)। ३—चर (कां०)। ४—बसतर (कां०)। ५—कांडर (स०), कांदर (कां०)। ६—मोर (स०)। ७—हावा (स०)। ८—बानछरहि (स०)। ९—नैना (कां०)। १०—सेती (स०)। ११—विरहन (कां०)।

जेहि दिन सोइ[१] सुयंवर भयऊ । उलटि लोक घर अपने गयऊ ॥
इंद्रदेव अपने पुर चले । मारग द्वापर कलिजुग मिले ॥
बूझा इंद्र कहो कत[२] आए । कौन काज कौ कहाँ सिधाए ॥
कहै चले कुंदनपुर ओरां । गुना कि भा राजन्ह कर जोरां ॥
अम्बुज कली दमावत रानी । सूरज देखि चहै विहंसानी ॥
रचा सुयंवर भइ अति सोभा । तिहि कौतुक कारन चित लोभा ॥
इन्द्र कहा सो सुयंवर भयऊ । राजा नन्न रानी लै गयऊ ॥
कलिजुग सुनत क्रोध जिय[३] आनां । जनु[४] यह वचन लाग होइ बानां ॥
मो विन गएं[५] सुयंवर भयऊ । मो आग्या विन नल लै गयऊ ॥

दोहा—बुरा बुराई ना तजै, लाख सीख किन[६] देहु ।
कल्लर[७] दूव जमै नहीं, जो नित बरखै मेहु ॥२४०॥*

कलिजुग क्रोधवंत जव जाना । तव फिर इन्द्र वचन मुख आना ॥
कहा कि क्रोध हियै जिनि राखौ । मुख ते भूलि कुवचन न भाखौ ॥
जो नल कै सराप तुम करि हो । तिहि अपराध नरक महं परिहो ॥
जो नर दुखियन्ह[१] कह[२] दुख देई । महापाप अपने सिर लेई ॥
कह ये वचन इन्द्र चल भयऊ । दोउ[३] जुगन को जुग रहि गयऊ ॥
तव कलिजुग सराप नहिं भाखा । पै नल सों[४] विरोध जिय राखा ॥
जद्यपि इन्द्र वहुत सिख दई । जिउ[५] महं[६] क्रोध गांठ[७] परि[८] गई ॥
खोटा होइ सो खोटै[९] जानै । भली वात सुन मनहिं न आनै ॥
आदि[१०] सुभाउ जिहक[११] जस होई । आदि अंत लौं निवहै सोई ॥

दोहा—जरि वरि अगिनीमय भयो, वढ़ो क्रोध मन[१२] पाप[१३] ।
कारो पीरो होइ गयो, चाहै दियौ सराप ॥२४१॥*

दोहा—२४०–१—थान (कां०) । २—तुम (कां०) । ३—मन (स०) । ४—सुनतै (कां०) । ५—कैस (कां०) । ६—जो (कां०) । ७—कालर (स०, कां०) ।
* 'कां०' प्रति मे यह दोहा २३५ वें दोहे के स्थान पर है ।

दोहा—२४१–१—दुखी (कां०), द्यो कहं (स०) । २—कोउ (स०) । ३—धौ (कां०) ।४—को (स०) ।५—पै (कां०) । ६—जक (कां०) । ७—कलियुग (कां०) । ८—नहिं (कां०) । ९—खुटक किह पै जानै (कां०) । १०—क्रूर (कां०) । ११—झक । (स०) । १२—तन (कां०) । १३—ताप (कां०) । * 'कां' प्रति मे यह दोहा २३४ वे दोहे के स्थान पर है ।

कलिजुग बहुत कीन्ह जिय क्रोधू । ठाना नल सों बैर विरोधू ॥
किये क्रोध द्वापर सों कहा । बहु[1] रिस मो पहं जाइ न[2] सहा ॥
नल कहं भई इतक मदमंती । मो आयसु बिन लेइ दमन्ती ॥
एहि बरी[3] नल कै घर जाऊं । तौ कलिजुग जो ताहि सताऊं ॥
नल सों बैर तहां लौं करौं । ता धन धरम धाम मति[4] हरौं ॥
देखो कैसे[5] खेल खिलाऊं । राज हरौं कै रांक दिखाऊं ॥
नगर छुड़ाइ देउ[7] बनवासा । बन बन[6] डोलै[7] भूख पियासा ॥
करौं बिछोह पुरुख औ नारी । यह न्यारो डोलै वह न्यारी ॥
तन जीरन वस्तर नहिं[9] राखौं । तैसहिं करौं जैस मुख भाखौं ॥

दोहा—कह द्वापर सों ये बचन, छिन न कियो बिसराम ।
छूट अगिन के बान ज्यों, चला ताकि नल धाम ॥२४२॥

चला सो बेगि[1] बिलम्ब न लावा । पौन गौन नल कै घर आवा ॥
रहा करै नित घात लगावै । दुख देवै को दाव न पावै ॥
बारह बरख बीत गए आए । टरै न बैरी[2] बिना सताए ॥
नित[3] नल धरम पंथ पग धरै । राजनीति बरनी तस करै ॥
परजा सुखी धरम कर राजू । हरि सुमिरन बिन और[4] न काजू ॥
सदा पवित्र रैन दिन रहै । दान प्रवाह नदी नित[5] बहै ॥
ऐसो धरमवंत[6] जो होई । ताकै बिघन न व्यापै कोई ॥
जहां तहा इहि[7] धरम सहाई । जहां गरब[8] तहां पाप न जाई ॥
धरम सहाइ कोटि दुख टारै । धरम सत्रु संताप निवारै ॥

दोहा—सजग धरम मग[9] पुरुख जो, को तिहिं सकै सताइ ।
दुहूं[10] लोक को भय हरै, जा कहं धरम सहाइ ॥२४३॥

दोहा—२४२–१—इहि (का०) । २—जात (कां०) । ३—खन (स०) । ४—सब (कां०) । ५—कितव (कां०) । ६—महं (ग०) । ७—भुई (स०) । ८—और प्यासा (स०) । ९—पर चीर न वस्तर (स०) ।

दोहा—२४३–१—बीच (कां०) । २—बुरा (स०) । ३—नल सुधर्म मारग (कां०) । ४—कोऊ (स०) । ५—जल (कां०) । ६—धरम पुरुष (कां०) । ७—तिन (स०) । ८—धरम (कां०) । ९—जग (स०) । १०—तीनहुं (स०) ।

परालवध पै अति वरियारा। सो न[1] टरै काहू कर टारा॥
दुख सुख होनहार जो होई। जिहि कहं जतन रहै होइ सोई॥
मिटै न परालवध कर भोगू। ज्यों होनां त्यों होइ संजोगू॥
धरम पवित्र जिन झूठ न ग्रोला। परालवध वन वन वन डोला॥
नल सरवंस धरम मग दीन्हा। परालवध कुमती[2] तिन कीन्हा॥*
करम अलग ग्यानी सजोगी। सोऊ[3] परालवध कै भोगी॥
परालवध वांधी यह काया। आतम जीव भयो मिलि माया॥
यह सव परालवध कर[4] खेला। तेही कीन्ह तत्त गुन मेला॥
परालवध मिलि भए एक ठारे। परालवध होइहै पुनि[5] न्यारे॥

दोहा—परालवध दुख सुख वँधे, खिन आवहिं खिन जाहिं।
हरख सोक विसराइ मन, नित[6] रह साईं[7] माहिं॥२४४॥

आवा अदिन काल रथ फेरा। चला सुक्ख दुख लीन्ह वसेरा॥
एक द्यौस नल सांझै[1] काला। कै संझ्या[2] सोयो ततकाला॥
ततखिन नीद आइ गइ सोए। सोइ गए चरनन्ह विन धोए॥
रही न सुरत विसर जनु भयऊ। नित्य नेम खंडित होइ गयऊ॥
इतनी चूक धरम मग भई। कलिजुग सत्रु घात वन[3] गई[4]॥
कै रिपु अन्त करन प्रवेसू। हर मति वाउर कीन्ह नरेसू॥
पलटि दसा औरे गति भई। ततखन मति खडित होइ गई॥
कलिजुग राहु सुरुज नल गहा। वुधि परकास मन्द होइ रहा॥
छिन अचेत मूसा नल ऐसे। सदा अचेत वर्चाहि ते कैसें॥

दोहा—एक सत्रु सों नहि वचा, नल सो सजग सचेत।
पांच सत्रु घर महं वसे, सोवहिं[5] लोग अचेत॥२४५॥

दोहा—२४४–१—तो गयो नहि टरै न (स०)। २—क्रोधत (कां०)।
* 'कां०' प्रति में यह ६ वी चौपाई है। ३—तेऊ (कां०)। ४—गुण (कां०)।
५—विन (कां०)। ६—सुन (कां०)। ७—सांजी (कां०)।

दोहा—२४५–१संध्या (कां०)। २—संध्या (कां०)। ३—पुनि (कां०)।
४—कई (कां०)। ५—सोवै (कां०), सूनौ मो वहं (स०)।

कै कलिजुग नल कहं मति हीना । जाइ[1] जोर पुहकर सों कीन्हा ॥
सो पुहकर राजा कर भाई । भाई पै वैरी दुखदाई ॥
तासो जाइ कही यह बाता । पुहकर फेरि[2] न पावसि घाता ॥
चाहसि राज तो लै इहिं घरी । नल कौ[3] ग्यान बुद्धि मैं[4] हरी ॥
भा मतिहीन सुमति अब नाहीं । जुवा खिलाइ जीत छिन माहीं ॥
पहलै जब धन धाम हरावै । तब पुनि दाव राज पै आवै ॥
वही जीति पुनि[5] देइ वनवासू । जोई इन्द्र[6] देहि कविलासू ॥
वैठि सिंहासन फेर दुहाई । राख निसान बजाउ[7] बधाई ॥
चल ततकाल बिलम्ब न लावसि । चूक न पुनि यह समौ न पावसि ॥

दोहा—मुनि सो बात पुहकर उठ्यो, वैठो नल पहं जाइ ।
कलिजुग पुनि अख रूप धरी, नेर ठाढ़ भा आइ ॥२४६॥

छिनक वैठ पुनि बात चलाई । हियें खुटक मुख लिये मिठाई ॥
कपट रूप घेरा अति[1] लियें । ऊपर मिला अमिल विच हियैं ॥
राजा दिन न कटै ठिलुवाही । आवहु किन कछु खेल खिलाही ॥
वह कपटी राजा जिउ भोरा । ढरका तिही अग जस ढोरा ॥
आन सार पासा पकरावा । दाव राखि जिय जुवा मचावा ॥
चितै वृखभ पुनि पुहकर बोला । कपट द्वार मुख तारा खोला ॥
इही वैल पर बाजी लाई । जो जीतै सो वैल लेजाई ॥
नल बोला का वैलन काजी । जा ऊपर हौं लाऊं बाजी ॥
कौन स्वांग माया कै मोरें । वैल लाइ खेलूं संग तोरें ॥

दोहा—कै करोध आयसु कियो, वैठो दरब मंगाइ ।
आन ढोइ ढेरी करी, चल्यो सो राख न जाइ ॥२४७॥

दोहा—२४६–१—आइ (स०) । २—वौहर (कां०) । ३—को (म०) । ४—मति (स०) । ५—तिन (कां०) । ६—तिन्हक (स०) । ७—फेर (कां०) ।
दोहा—२४७–१—गति (स०) ।

नल जब दरब राज सब हारा । कछु न रहा भा छूंछ भंडारा ॥*
पुहकर जीत भेद यह भगा । नल कहं तोस नाट तब कहा ॥
नल[1] उठ अब यह गेल उठाऊ । कै लगाव धरनी पर दाऊ ॥
नल सुन[2] बचन अनल होइ गयऊ । लाग जो बचन क्रोध अति[3] भयऊ ॥
हुता जो अंग साज गहि डारा । रानी कर अभरन[4] सो उतारा ॥
लाइ दाव पुनि खेल रचावा[5] । पलक[6] पाव मैं बहो हरावा ॥
कौड़ी कौडी कै धन हारा । सब कहं हार हाथ पुनि[7] झारा ॥⊙
रहा न कछु सरवस पथ[8] गयऊ । दाम अगिन खेल अस भयऊ ॥
छिनहीं महँ बिलाइ गा राजू । सपन हुता[9] मनु[10] राज समाजू ॥

दोहा—छिनक खिलार तिहि खल मद, हार दीन गंठ खोइ ।
खेल उठा तब चेत भा, अब[11] चेते का होइ ॥२५२॥

पुहकर बैठि सिंघासन गाजा । बाहर नगर कीन्ह नल राजा ॥
आयसु कीन्ह देस चहुं ओरा । फिरी[1] दुहाई दीन्ह[2] ढिंढोरा ॥
जो नल कहं भोजन कोउ देई । सो आपन हत्या सिर लेई ॥
चले पुरुख नारी संग दोऊ । देखि उनहि[3] झुरवैं सब कोऊ ॥
सब दिन धरनराज इन कीन्हा । दुख धौं कौन दोख बिधि दीन्हा ॥
कोऊ कहै बड़ो अग्यानी । आपु आपदा आपुहि आनी ॥
ऊटना[4] पाइ कै दरब गवांवा । जुवा खेल सब[5] राज हरावा ॥
कोऊ कहै दोख इहि नाहीं । सो[6] को परै आपदा माही ॥
जस कछु परालवध परवला । तेइस सब संजोग ह्वै मिला ॥

दोहा—दुख औ सुख या देह की, परालवध गुन होइ ।
सो अबिचल सबसों सबल, मेट सकै नहि कोइ ॥२५३॥

दोहा २५२—* इस चौपाई का पहला पद 'कां०' प्रति की ६ठी चौपाई का पहला पद है और दूसरा पद उसी की ७वी चौपाई का दूसरा पद है। १—नल कै (कां०) । २—इहि (कां०) । ३—जिय (कां०) । ४—भूखन (स०) । ५—मचावा (कां०) । ६—छिनक (कां०) । ७—जब (कां०) । ⊙इस चौपाई का दूसरा पद 'कां०' की ६ठी चौपाई का दूसरा पद है। ८—ओ (कां०) । ९—अहा (स०) । १०—जनु (कां०) । ११—पुनि (कां०) ।

दोहा—२५३—१—देह (कां०) । २—फिरा (कां०) । ३—बैठि (कां०) । ४—उदत (कां०), अटपटाउ (स०) । ५—कै (स०) । ६—सबन (कां०), सैं (स०) ।

नल कै स्रवन भनक यह परी । सुनि सुनि सीस[1] तरहिनी करी ॥
औ सो[2] वचन रानि पुनि[3] सुनै । लाजन्ह गड़ी जाइ सिर धुनै ॥†
इन वातन्ह अधिकौ अकुलानी । चली उतायल लाज लजानी ॥*
छाड़ि नगर वाहर भए दोऊ । नारी पुरुख और नहिं कोऊ ॥
थिर गति[4] काल्ह और रंग फेरा । नगर छीनि वन दीन्ह वसेरा ॥
हुआ कालिह लौं राज समाजू । आज आइ प्रगटा यह साजू ॥
जे पग सदा[5] पवित्तर रहैं । ते ताते भूभल[6] महँ दहैं ॥⊙
जे तन पुहुप अरें अरसावें । सो कांटों तर लोटनि खावें ॥†
ताती ताप लगै तन जरै । उड़ि[7] उड़ि[8] धूर सीस पै परै ॥

दोहा—पग वाहन दुख को कटक, छत्र छाँह रवि धूप ।
धन चादर चौडोल महँ, चला जाइ नल भूप ॥२५४॥

चल कोसक व्याकुल होइ गए । पुरातन[1] सुखी परे दुख नए ॥
वाट कँटीली पाँइ उघारे । काँटा अरे परै पुनि[2] छारे ॥
पैंगक चलन फेर कर जाही । ताकैं रुख विरख परछाहीं ॥
खिन वन खंड[3] भीट[4] मै आवें । खिन[5] पुनि भाकर छार सतावें ॥
खिन पहार परवत विच आवहिं । घाटी चढत वहुत दुख पावहिं ॥
ये कराप गाढ वे सुखिया । जानो जनम जनम कै दुखिया ॥
वस्ती जाइ परै जो फेरा । जहाँ जाहिं कोउ सौंह[6] न हेरा ॥
जहाँ तहां निरादरै[7] होई । द्वारे वैठन कहै न कोई ॥
आवत देखि लोग मुख मोरै । इस्ट मित्र कोउ आंख[8] न जोरै ॥

दोहा—अस्तुति निंदा पत अपत, सवै काल पर होइ ।
उवत सूर प्रथमी नवै, अथवत नवै न कोइ ॥२५५॥

दोहा—२५४—१—सवन (का०) । † 'का०' प्रति में यह तीसरी चौपाई है । २—को (स०) । ३—पै (स०) ।* 'कां०' प्रति मे यह दूसरी चौपाई है । ४—घट (कां०) । ५—पुहप (कां०) । ⊙ इस चौपाई का प्रथम पद 'कां०' की आठवीं चौपाई का प्रथम पद है । ६—थल हल (कां०) । † इस चौपाई का प्रथम पद 'कां०' में सातवीं चौपाई का प्रथम पद है । ७—औ (कां०) । ८—दावा (कां०) ।

दोहा—२५५—१—प्रातम(स०) २—मग (स०) । ३—उड (स०), मारग (कां०) । ४—भेद (स०) । ५—अतिही (स०) । ६—मुनै (स०) । ७—तर और न (का०) । ८—रुख (कां) । ९—नपत (कां०) ।

ये[1] कराप दुख भरहिं निरासे। डोलहिं फिरहिं भूख अरु प्यासे॥
उन[2] तन रकत न और अहारा[3]। चलना पै झांकर पग छारा॥
अति भूखैं कोउ सुरत न लेई[4]। पुहुकर डर कोउ अन्न न देई॥*
बिल बिलाहिं कछु हाथ न आवै। त्यों त्यों छुधिया अधिक सतावै॥†
और सत्रै दुख जाइ संभारा। भूख सवर[5] यासों जग हारा॥
भूखे भए जगत कै फांसी। भूख नवाइ तपा सन्यासी॥
भूखैं नेम धरम सब जाई[6]। भूखैं रहै न मित्र मिताई॥
भूखैं प्रेमी प्रेम बिसारैं। भूखैं सत्य[7] लोग सत[8] हारैं॥
भूखैं बुद्धि हीन होइ जाई। हिरदै[9] धोइ[10] नर[11] तज गरवाई॥*

दोहा—भूखैं जोगी जुगति सों, जोग न सकै जगाइ।
जोग ध्यान को ध्यान तजि, ध्यान[12] टूक[13] महँ जाइ॥२५६॥

भूखे फिरत तीन दिन बीते। अति हारे छुध्या जब जीते॥
अगिन[1] दाह हियरै महँ भयऊ। झुरसि करेज स्याम होइ गयऊ॥
लागत पौन गात उड़[2] जाई। छाय धुआँ ज्यों जाइ बिलाई॥
फूल दमावत अति कुम्हिलानी। कवंल बेलि सूखी बिन पानी॥
नल पर सबल भाई निबलाई। लट[3] पटाय[4] पग तावंर आई॥
भूखन प्रान मुकत भए[5] जाही। काया सिथिल कहे महं नाहीं॥
नल पुनि अधिक सिथिल तन भयऊ। चला न जाइ निबल होइ गयऊ॥
कौलौं चलै देह बिन खाए। गाड़ी थकै औग[6] बिन लाए॥
डाढ़ै[7] बन बन फिर कन नाहीं। नाहत वही बीन कै खाहीं॥○

दोहा—भूख सबल काया निबल, मारग चला न जाइ।
प्रान पिड अनरस भयो, सूझै कछु न उपाइ॥२५७॥

दोहा—२५६—१—येक (कां०), आइ (स०)। २—बन (कां०), दिन (स०)। ३—हिलोरा (कां०) ४—पावै (स०)।* 'स०' प्रति में इस चौपाई का जो उत्तर पद है वह 'कां०' प्रति में आगे की चौपाई—संख्या ४ का उत्तर पद है।† इस चौपाई का पूर्व पद 'स०' प्रति मे नही है। ५—शत्रु (कां)। ६—गाई (स०)। ७—सती (स०), सबै (कां०)। ८—पचि (कां०)। ९—फरो (स)। १०—होइ (कां०)। ११—अति (कां)। *इसके पश्चात् 'स०' में निम्नलिखित चौपाई है जो 'कां०' में नहीं है:—

भूखै भूल जांहि नर नारी। आदि किरत गत मत पत सारी॥
१२—कट (कां०)। १३—होइ (का), तोक (स०)।

दोहा—२५७—१—अन्न (कां०)। २—ढर (कां०)। ३—अत (कां०)। ४—तपाय (कां०)। ५—ह्वै (कां०)। ६—अमग (स०), ऊंग (कां०)। ७—दाढ़ै (स०)। ○ यह चौपाई कां० मे नही है।

ततखन नल पंछी इक देखा । कंचन बरन सरूप विसेखा ॥
कपटी कपट रूप अति लोना । विच[1] भँगार[2] देखत कर सोना ॥
भूख पेट[3] नल के मन आई । पंछी पकर भूंज लै खाई ॥
तिहि लालच नल झगा उतारा । लपक आनि पंछी पर डारा ॥
उड़ि भा सहित झगा सो खगा[4] । ठगा न काहि का जीवन तका ॥*
उड़ पंछी अकास जब डोला । जीभ खोल नल सों तब बोला ॥
मै अब[5] आइ दरस तोहि दीनां । तें मोहि नेक न आदर कीनां ॥
उलटैं मोहि मारे कहँ आवा । तिहि कारन मै तोहि सतावा ॥
नांगा कीन्ह छीन लियो झगा । तैं न ठगा मोहि मै तोहि ठगा ॥

दोहा—सो पंछी कलिजुग हुता, कंचन बरन अनूप ।
कपटी नल के ठगन कों[6], होइ आयो[7] खग रूप ॥२५८॥

नल अति दुखी भयो जब नांगा । बस न चलै सुख मिलै न मांगा ॥
फिर फिर हाथ मलै पछिताई । बिधि यह कौन आपदा आई[1] ॥
सोच बिसूर[2] नारि सों बोला । रानी दिन दस अदिन अडोला ॥
दुख में दुख जो करै अधिकाई । जानि जाइ कछु नाहि भलाई ॥
राज गयो हम भये भिखारी । बन बन फिरैं पुरुख अरु नारी ॥
बल सत धरम भूख हर[3] लीन्हा[4] । यह अति बिपत दिगंबर कीन्हा ॥*
तन पर हता जो जीरन[5] झगा । वहौ न रहा भाग अस ठगा[6] ॥
औ[7] अजहूं[8] कछु जान न परै । धौं किहि ढरन काल रथ ढरै ॥
कौन कौन दिन आगें आवै । किहि किहि भरम काल भरमावै ॥

दोहा—मोहि अपनो दुख कछु नहिं, ज्यौं त्यौं जाइ बिहाइ ।
तेरे दुख तें अधिक दुख, सो दुख[9] सहा न जाइ ॥२५९॥

दोहा—२५८—१—निज (स०) । २—भंगार=घास फूंस (कां०) हुकार (स०) । ३—बैस (कां०), वेम (म०) । ४—फेका (म०) । * इस चौपाई का उत्तर पद 'स०' प्रति में नहीं है । ५—अति (म०) । ६—लगि (कां०) । ७—गयो (कां०) ।

दोहा—२५९—१—लाई (कां०) । २—बोरे (म०) । ३—ले (कां०) । ४—गई (कां०) । * 'कां०' में उत्तर पद इस प्रकार है:—ता पर और भई इहि नई ॥ ५—चीर (म०) । ६—थका (कां०), भगा (स०) । ७—उवा (स०) । ८—चहौं (स०) । ९—पुनि (स०) ।

ज्यों ज्यों तोहि देखौं कुम्हिलानी । त्यों त्यों हिया होइ अग्यानी ॥
तो दुख उर ह्वै अगिन समाई । कोइला ज्यों करेज धधकाई[1] ॥
अपनी भूख प्यास भर काढी । तोरी भूख निपट हौं दाढ़ौं ॥
तू ये दुख न देख मो काजै । विपदा परै वनै तव भाजै ॥
भलै करसि जो नैहर जासी । कौ लौं भई फिरसि वन वासी ॥
दच्छिन मारग निपट सुहेला । निरभै चलै अकेल दुकेला ॥
औ पुनि वहुत लोग उत जाहीं । चली जासि मिलि मेला माहीं ॥
वन फिर पुनि वहुतै अति[2] होई । पंथी घात[3] न वरजै कोई ॥
दिन दस काटि जाइ कलि कालू । धौ कस होइ काल कर चालू ॥

दोहा—तैसी चाल चलै वनै, जैस काल कर चाल ।
काल व्याल न कटाइयै, आप काटियै काल ॥२६०॥

सुनि पिउ वचन रोइ धन वोली । रोवत भीज गई तन चोली ॥
प्रीतम प्रीति रीति यह नाहीं । जैसी तू आनसि मन माहीं ॥
भला नेह तैसहु[1] पहुंचावा । मोहि दच्छिन कर पंथ वतावा ॥
संपति विपति लाख किन होई । मीत विछोह न ताकै कोई ॥
साजन हौं जौ लौं संग तोरें । तौ लौं अदिन नाहि मन मोरें ॥
जेहि दिन तोसों हौं मैं न्यारी । तिहि दिन अदिन होइ पैसारी[2] ॥
तू मोसों जो होसि उदासी । हौं तोहि कत छाड़ौं वन वासी ॥
तू इहि गति डोलसि वन माहां । हौं नैहर वैठौं सुख छाहां ॥
जो पुनि[3] विथा एक अंग होई । और अंग संग तजै न कोई ॥

दोहा—हौं मंजीठ कै रंग ज्यौ, औटि मिली तोहि संग ।
तू ततकाल[4] उघड़ चला, जैसे रंग पतंग ॥२६१॥

दोहा—२६०—१—वक जाई (कां०), दख जाई (स०) । २—मग (स०) । ३—खाइ (कां०), घाटा (स०) ।

दोहा—२६१—१—तिन सर (म०) । २—पियारी (स०) । ३—तन (कां०) । ४—नगाल (स०) ।

नल तव[1] रोइ कहा सुन नारी । तू मोहि प्रानन तै अति प्यारी ।।
तन मटकी[2] ता मधि दधि जीऊ । ता दधि जीउ मांझ तू घीऊ ।।
मोहि तेरो विछुरन कल भावै । पै तो दुख मोहि अधिक सतावै ।।
तेरो कस्ट देखि हौं झूरौं । वस न चलै कछु विवस विसूरों ।।
सवै सहौं यह जाइ न सहा । तिहि कारन मैं तोसों कहा ।।
तेरो पिता पुहुमिपति भारी । तहां जासि तू रहसि सुखारी ।।
कत मोरे कारन दुख पावसि । आप दुखित होइ मोहि दुखावसि ।।
जो तेरे जिय कौं सुख होई । तौ[3] पुनि[4] मो दुख और न कोई ।।
तोरे सुख हौंहूं सुख पाऊं । रहै न वीच दुक्ख कर नाऊं ।।

दोहा—जो पुनि तू मोहि ना तजसि, मैंहूं तजौं[5] न तोहि ।
तोरे संग समीप किन, लाख होहि दुख मोहि ।।२६२।।

पीतम पिता मोर जो राजा । पिता राज मोरे किहि काजा ।।
तो विन किहि गिन[1] राजसमाजू । तोरे संग अदिन मोहि राजू ।।
औ इहि गति नैहर जो जाऊं । हौं लाजौं पुनि तोहि लजाऊं ।।
तेहि दिन[2] तहां जाउं हौं नाहां । जिहि दिन छत्र करै तोहि[3] छाहां ।।
हौं पुनि जानूं तू कित जाई । सो तौ तो दुख रहा समाई ।।
ज्यों मो[4] दुखै तोहि दुख आवै । त्यौं तेरो दुख मोहि सतावै ।।
मन तोहि नेक न त्यागन कहै । छाड़ि[5] जो[6] जाउं छांड़ि मोहि रहै ।।
अव इक दुख तव दो दुख लागहिं[7] । मन अति दुखी नैन उत जागहिं[8] ।।
ऐसी गति तोरी पुनि होई । मीत विछुर भा[9] सुखी न कोई ।।

दोहा—मीत विछुर जो जीजिये, का जीयें[10] तेहि[11] दाव[12] ।
सजन[13] विछोह न कीजिये, जीउ[14] जाव तो जाव ।।२६३।।

दोहा—२६२—१—पुनि (स०) । २—मिट गई (स०) । ३—तोहि (कां०) । ४—विन (कां०) । ५—त्यागूं (कां०) ।

दोहा—२६३—१—गुन (कां०) । २—थान (स०) । ३—पथ (स०) । ४—मोरा (कां०) । ५—जे (कां०) । ६—हौं (का०) । ७—पावै (कां०) । ८—जावै (कां०) । ९—भय (स०) । १०—तिन्ह (स०) । ११—जीयन (स०) । १२—स्वाद (स०) । १३—वचन (स०) । १४—जो जियें (कां०) ।

कहि ये वचन रहे मिलि दोऊ । नारी हठै[1] न कीन्ह बिछोहू ॥
छुध्या निपट दहै[2] तन त्रासी । वन वन फिरै लाग वन वासी ॥
मग कछु साग पात फर पावहिं । निकसत प्रान तेहि त्रिरमावहिं ॥
भैं विहरै[3] कछु हाथ न आवै । निरगुन पेट लिये भरमावै ॥
खिन इहिं दिस खिन उहिं दिस जाहीं । भाग विना कतहूं कछु नाहीं ॥
कछु कर चढ़ा न सब वन हेरा । हेरत नदी तीर भा फेरा ॥
पानी देख प्रान अस[4] पाई । ढिगही छांहं वैठि सुसताई ॥
पिया दुहूं अँजुरी दोइ पानी । समाधान भा त्रिखा सिरानी ॥
सीर पौन अरु ठौर सुहावा । पल इक वैठि तहां[5] सुख पावा ॥

दोहा—जैसैं सुख मैं नेकु दुख, वही वहुत[6] दुख देइ ।
तैसं दुख मै नेक सुख, वहुत मान मन लेइ ॥२६४॥

देखी तहां मीन दोइ परीं । पानी प्रान सों बिछुरत मरीं[1] ॥
लीन्ह उठाइ हरख हिय आना । भोजन मिला वहुत सुख माना ॥
इन[2] ते मीन प्रान कै पाई । मीन सो प्रान लेइ कहं[3] आई ॥
नल ते मीन छांड़ि धन तीरा । आप अन्हाइ[4] लाग तिहि नीरा ॥
धन चाहा ते धोइ वनाऊं । जौलौं पिउ आवै नगियाऊं[5] ॥
अंगुरिन हुता अमी कर वासा । वहै अमी विष भयो निरासा ॥
मिरतक मीन हाथ जव लई । चेत चपल होइ जल महं गई ॥
अदिन होइ तव कछु न वसाई । अमी हाथ में विख होइ जाइ ॥
ईहिं[6] कौतुक रानी अति[7] थकी । पलक एक लौं पलक न लगी ॥

दोहा—जनु अकास सों अवछरा, गिरी परी[8] भुइं आइ ।
कहां[9] हुती[10] हौ[11] अव कहां, सोच रही टक लाइ ॥२६५॥

दोहा—२६४—१—हठी (कां०) । २—हुती (कां०) । ३—फिरैं (कां०) । ४—जनु (कां०) । ५—रहे (कां०) । ६—कहूं (कां०) । ७—ऐसें (सां०) ।

दोहा—२६५—१—खिन मरे (कां०) । २—एई (कां०) । ३—खिन (कां०) । ४—अघाइ (स०) । ५—नहिं खाऊं (कां०) । ६—जिहिं (कां०) । ७—अव (कां०) । ८—ठरी (कां०) । ९—आव (स०) । १०—कहां (स०) । ११—है (स०) ।

राजा नल अन्हाइ जब आवा । तिन मीनन कर खोज न पावा ।।
इत उत हेरा दिस्टि न आई । इन जानां रानी ने खाई ।।
अति सुख मान न वात चलाई । विन खाएं इन[1] भई अंघाई[2] ।।
हुता जो यह[3] भूखै अति दुखी । मिटि अब[4] भूख भयो अति[5] सुखी ।।
पुनि बतिया[6] जब रानी कहा । राजा सुनत थकित होइ रहा ।।
अदिन सबलता गिन मन गुनै । कहै न सुनै सीस पै धुनै ।।
जानो गुड़[7] खवाइ ठग ठगा । ऐसो लाइ रहा टक टका ।।
पुनि पाछै बोला दुख खोला । झरै नैंन पुनि[8] जिमि[9] यह बोला[10] ।।
रानी देख भाग कस[11] भागा । अजहू भागत लेइ न वागा ।।

दोहा—काल फिरे विपता परे, भाग हीन नर होइ ।
निपट अभागे आज लौं, हम[12] सों भयो न कोइ ।।२६६।।

पाए[1] मीन गवांए सोऊ । भूखै रेंगि[2] चले उठि दोऊ ।।
अवघट परत पेंड दोउ[3] जाही । छांहीं देख वैठ सुसताहीं ।।
पुनि उठि रेंगहिं[4] चला न जाई । भूखै निपट भई निबलाई ।।
कै कराय कोसक जब गए । हार गए अति[5] निरबल भए ।।
निकटहिं गांव दिस्टि महं आवा[6] । तहाँ बसेरा कहं चित[7] धावा ।।
ज्यों त्यों गांव जाइ नियरावा । तहां अगोट[8] ठौर पुनि पावा[9] ।।
जाइ गिरे दोऊ अति हारे । वैरिन भूख निपट गहि मारे ।।
रैंन भई[10] दिन गयो विहाई । टूट देह दुख निद्रा आई ।।
सोये संग पुरुख अरु नारी । मानो जनम के नस्ट भिखारी ।।

दोहा—तिहिं मंदिर पलका पुहुमि, सौर[11] सुपेती[12] घास ।
देखि काल गति कै सौ सुख, कै ये दुख वनवास ।।२६७।।

दोहा २६६–१ तिहिं (कां०)। २—अनखाई (कां०) । ३—वैठ (कां०) । ४—सु (कां०) । ५—जिय (कां०) । ६—विपता (कां०) । ७—कर (स०) । ८—चीरन (कां०) । ९—वचन (स०) । १०—ड़ोला (कां०) । ११—अस (स०) । १२ —ऐसो (कां०) ।

दोहा २६७–१—पानी (कां०) । २—निपट (कां०) । ३—दस (कां०) । ४—जब (कां०) । ५—तब (स०) । ६—परा (स०) । ७—चित (स०) । ८—अगौसै (कां०), अकोस (स०) । ९—वनावा (कां०) । १०—गई (कां०) । ११—सैन (कां०) । १२—करी अब (कां०) ।

सोई जब[१] अचेत होइ रानी । नल जागा चिंता मन[२] आनी ।।
बहु[३] मैं[४] हुता एक दिन राजा । कहा भयो वह राज समाजा ।।
ससि रानी जिहिं सुरज न देखा । सो वन वन डोलै इहिं भेखा ।।
तिहिं पर भूख भई[५] दुखदाई । या जीवन ते मरन भलाई ।।
श्रौ अबला मो लग दुख पावै । धौ सो काल कौ लौ भरमावै ।।
जौलौ मोहि देखै यह नारी । तौलौं मोसों[६] होइ न न्यारी ।।
भूख प्यास काढ़ै[७] दुख भरै । मोहि जारै नित[८] आपन जरै ।।
सोवत याहि छाड़ि उठ जाऊं । कित अबला वन वन भरमाऊं ।।
जब हौं याहि न चौंहु[९] दिखाई । तव सहजै[१०] नैहर उठि जाई ।।

दोहा—जाइ काल काटै तहां, यह कराप मिट जाय ।
पुनि विधि करै संजोग जब, हौहु मिलो तव आय ।।२६८।।

यह चित[१] आनि उठा बनबासी । दुख मिलाप सों भयो उदासी ।।
हुती झगा बिन देह उघारी । नारी पर चादर सो उतारी ।।
भा अधीर छिन धरै न धीरा । चादर चीर कीन्ह दोइ चीरा ।।
कै दोइ आध ओढ़ सो आधी । चला झांपि आधै महं[२] दाधी[३] ।।
चलि जब पैग चारि[४] मग गयऊ । तव मन प्रेम प्रीत वस भयऊ ।।
प्रवल[५] प्रेम[६] पाछैं कहं फेरा । आइ दमावत कर मुख हेरा ।।
टक ताकै गति भर जिउ जोरा । तव ही ढरन फेर[७] मन ढोरा[८] ।।
वहुरि चला चलि कै फिर फिरा । जाइ न सकै पेम फंद घिरा ।।
ऐसै पांच बार फिर आवा । छठएँ कलिजुग मोह छुड़ावा ।।

दोहा—कलिजुग कियो कठोर मन, तोर मोह को जोर ।
चला सो चला उदास[९] ह्वै, मुख[१०] न कियो तिहिं[११] ओर ।।२६९।।

दोहा २६८–१—अति (कां०) । २—जिय (कां०) । ३—विधि (कां०) । ४—हूं (कां०) । ५—होइ (कां०) । ६—कीन्हों (स०) । ७—गाढ़ी (स०) । ८—पुनि (कां०) । ९—नीदों (स०) । १०—समझै (कां०) ।

दोहा २६९–१—जिय (कां०) । २—अध (कां०) । ३—डाढ़ी (स०) । ४—एक (स०) । ५—फिर (स०) । ६—प्रीतम (स०) । ७—भरों (स०) । ८—घरा (स०) । ९—उचाट (कां०) । १०—भ्रम (कां०) । ११—मन (कां०) ।

भयो विहान दमावत जागी । वैरागिन ढूंढै वैरागी ।।
इत उत हेरै दिस्टि[2] न आवै । झूठी आस मनहि भरमावै ।।
चकित भई चहुं दिसि द्रिग फेरै । भूली डार मृगी ज्यों हेरै ।।
पुनि चादर देखै तो आधी । श्री सारी आविहु[2] ते[3] आधी[4] ।।
चादर देखि लखा वह गयऊ । दरक हिया चादर अस[5] भयऊ ।।
मल मल हाथ करै पछतावा । निकट हुता पिउ नींद गवांवा ।।
सोच करे पिउ गवा न आवा । गल वाही मैं सोइ गवांवा ।।*
वैरिन नींद भई दुख दाई । तव उघरी जव मूर गवांई ।।
कित आई इहि गांव अभागी । सोइ गवांय कंत तव जागी ।।

दोहा—चूक आपनी का कहूं, का पैं कूकन जाउं ।
सोइ गवांयो कंत जो, क्यों न जाग पछिताउं ।।२७०।।

पछि पछिताइ कूक दै रोई । कंता ऐसी करै न कोई ।।
हौं तोहि लागि भई[1] वैरागी । तैं यह गति अनाथ कै त्यागी ।।
मैं इह जगत मूर तू जाना । भा तोसों यह लाभ निदाना ।।
वन महं छाड़ि गयसि रे विमासी । कित ढूंढों[2] कित जाउं निरासी ।।
तैं जो कहा तोहि जियन न त्यागों । अब वौं यह त्यागी पुनि[3] काकों ।।
वचन वोल काहे अस कीन्ही । किन वटमार कुमति तोहि दीन्हीं ।।
कहु काहे न कहसि हौ नाहां । कत अधगती[2] तजी वन माहां ।।
ठगहु विसास[3] पथिक जो मारै । वहौ मारि निरजिउ करि डारै ।।
पिउ तैं मोहि मारा न जियावा । विछुवन डांक विछोह लगावा ।।

दोहा—तो समीप सुख मगन ह्वै, मैं जो[4] सहा सव दुक्ख ।
तैं[5] दुख मे मोहि दुख दियो, देख[6] आपनो सुक्ख ।।२७१।।

दोहा २७०–१—हाथ (कां०) । २—दाधी (कां०) । ३—दा (स०), अध (कां०) । ४—दाधी (का०) । ५—जनु (कां०) । * 'कां०' में यह चौपाई नही है ।

दोहा २७१–१—इहि (कां०) । २—अदगनी (स०), अधदही (कां०) । ३—तिम (कां०) । ४—आंका (स०) । ५—पिउ (म०) । ६—ताक (स०) ।

[illegible]

दोहा—[illegible] ॥२७६॥*

[illegible]

दोहा—[illegible] ॥२७७॥

दोहा २७६–१—नची (का०) । २—मिटकै (म०) । ३—कूदा (म०) । ४—करै (स०) । ५—नये (स०) ६—चरो (म०) । * 'का०' प्रति में यह दोहा इस प्रकार है:—जो को तै मुहि दुप अनन्त, तौ कान्हहिं भूज चवाइ । पैरी मोहि भूंजा करै, भूंज चवाइ न जाइ ॥

दोहा २७७–१—छिन (का०), चैन (स०) । २—गरी (स०) । ३—भूले (का०) । ४—भगाई (का०) । ५—दिखरावै (स०) । ६—जानै (म०) । ७—मीच (स०) । ८—मूर्फै न (का०) । ९—चिता (म०), चिंता (का०) । १०—बीच (का०) । ११—मानस (का०), मांस (स०) । १२—जोर (का०), जुरै (म०) । १३—पुनि (का०) ।

तिहिं वन बड़ा बाघ एक देखा । मुख रकतार[1] भयावन भेखा ॥
काल रूप गूंजे[2] गरजाई । भूख क्रोध महं[3] रहा झुझाई ॥
सबल जान ता सनमुख चली । मकु जो होइ दुख सों यह[4] भली[5] ॥
दुख जीवन[6] मोहि मार मिटावै । यह अघाइ मोहि भूख गवांवै ॥
सनमुख जाइ निसंक[7] भइ ठाढ़ी । राखिसि प्रान पानि पर काढ़ी ॥
मकु[8] हरि[9] विरह अगिन डर करै । सकुचि हियें पर हाथ न धरै ॥
तौ सो सिंह सियार ह्वै गयो । विरह अनल डर[10] सीह न भयो ॥
ज्यों ज्यो नैन मिरग दिखरावै । त्यों त्यों ताहि मृगी अस आवै ॥
सकुचि नैन मुख मोर सिकोरै । फेरै[11] नैन सो फिर[12] न जोरै ॥

दोहा—सिंह आप डर[13] कै डरा, मति[14] मांहि देइ जराइ ॥
काल अगिन को रूप धर, ठाढ़[15] भयो है[16] आइ ॥२७८॥

सिंहहिं तैं जब सरा न काजू । भा अति सबल[1] विरह कर राजू ॥
सह न जाइ दुख मीच न आवै । व्याकुल भई बहुत दुख पावै ॥
लै लै नल को नांव पुकारै । दै दै सीस पुहुमि[2] पर मारै ॥
फिर फिर बोलै बचन दुखारे । कहां मिलो हौ[3] प्रीतम[4] प्यारे ॥
तो[5] बिन मिलें नाहिं सुख नाहा । इह[6] दुख को उपाव तोहि पाहां ॥
कित ढूंढ़ौं कौने बन जाऊं । जहा जाउं तहा[7] खोज न पाऊं ॥
केहि बूझौ को खोज बतावै । निज पंथी कोउ हाथ न आवै ॥
मारग बहुत चलें चहुं ओरा । सो निज पंथ कौन धौं तोरा ॥
तिहिं मग चलै[8] आइ[9] तोहि[10] भेटौं[11] । जिहिं दुख मर मर जीउ[12] सो मेटौं[13] ॥

दोहा—देख देख मारग घने, घनां भरम जिय होइ ।
जौंने मग[14] चलि तोहि मिलौं, सो न बतावै[15] कोइ ॥२७९॥

दोहा—२७८–१—रवता (कां०)। २—कूंच (स०), लरजै (कां०) । ३—ताक (कां०) । ४— वह (कां०) । ५—वली (स०) । ६—जेत (कां०) । ७—सिंह (कां०) । ८—मग (कां०) । ९—हर (कां०, स०) । १०—उर (स०) । ११—मोरे (कां०) । १२—बहुर (कां०) । १३—उर (स०) । १४—मग (कां०) । १५—प्रगटि (कां०) । १६—धौं (कां०) ।

दोहा—२७९–१—तेज (कां०) । २—भूई (स०) । ३—होइ (स०) । ४—प्रेम (कां०) । ५—तिह (कां०), तोहि (स०) । ६—इन (स०) । ७—निज (स०) । ८—पै (कां०) । ९—हूं (कां०) । १०—चाहतु (का०) । ११—हिढूं (कां०) । १२—जीवन (स०) । १३—समिटू (कां०) । १४—मुख (स०) । १५—मोहि मिला न कोइ (कां०) ।

खोजत फिरै[1] भरम महं परी। खिन इहि मग खिन उहिं मग खरी ॥
जिहि मारग निकसै जो बटाऊ। धाइ जाइ तिहिं मिलै अगाऊ ॥
बीर कतहुं काहू पिउ[2] देखा। ऐसे ऊठ[3] धरै अस भेखा ॥
कोऊ कतहुं न खोज बतावै। हिय सों बाहर खोज न पावै ॥
जब देखै पंथी[4] कोउ नाही। बिरछ बिरछ ढूंढै बन[5] माही ॥
बढ़ा जो भरम भया[6] बन मारै। पात पात सब बिरछ निहारै ॥
मग पानन महं होइ दुराना। कै रह जाइ डार[7] लिपटाना ॥
पौन झकोर पात जो डोला। चौंकि उठै जानो नल बोला ॥
धावत मिरग नेर[8] जो आवै। होइ बिसंभर पछि[9] उठि धावै ॥

दोहा—खोज खोज बाउर भई, खोज मिलै कछु नाहिं।
कंत गवांयो गांव महं, कित पावै बन माहिं ॥२८०॥

भरमत फिरै भरम भरमाई। अगिन[1] चक्र मनु[2] दीन फिराई ॥
चक्रित भइ डोलै चहुं पासा। नल मुख बचन अनल हिय बासा ॥
देखी नदी तीर बन माहां[3]। ठौर अगोट[4] सघन अति[5] छाहां ॥
केतिक साधु बैठ तिहिं ठाऊं। जापा करहिं चित[6] कर नाऊं ॥
जपत जपत सोई होइ गए। मिटा भरम भै निरभय हिए ॥
जद्यपि हाथ रहे जप माला। पै मन आतम मद मतवाला ॥
करम अलग ग्यानी संजोगी। निरभय परालवध कै भोगी ॥
ज्यों पट मै घट त्यों घट माही। घट औघट अंतर कछु नाहीं ॥
जीवत मुकत भये[7] जे सोऊ[8]। निज निरबंध बंध नहिं कोऊ ॥

दोहा—जा माया रजु सरप भए, भरम जगत मरजाइ[9]।
साधू जन तिहिं सरप कै, सेली करैं नवाइ[10] ॥२८१॥

दोहा २८०–१—भ्रम (कां०)। २—नल (कां०)। ३—ऊदत (कां०), ऊथ (स०)। ४—तब (कां०)। ५—मन (स०)। ६—वहाये (कां०)। ७—पात (स०)। ८—रूभ्क (स०)। ९—पाछै (स०)।

दोहा २८१–१—आन (कां०)। २—जनु (कां०)। ३—पांहां (कां०)। ४—अगोस (कां०, स०)। ५—बन (कां०)। ६—चिंता (स०), जपना (कां०)। ७—गये (कां०)। ८—कोई (कां०)। ९—मुरझाइ (स०)। १०—बनाइ (कां०), निमाइ (स०)।

ततखन साधुन देखि बुलाई । ग्रायसु मानि ठाढ़ भइ जाई[1] ॥
जद्यपि तिनहिं मरम सब सूझा । पै व्योहार दिस्टि[2] तिहिं बूझा ॥
कहु अबला आपन सब भाऊ । कौने भरम भई भरमाऊ ॥
निज बिपता[3] सब कहा दमंती । जस कछु हुता आदि लै अंती ॥
सुनि सो बात साधु संतोखी । मीठे अमी बचन कहि पोखी ॥
जनि अस[4] सोच करसि मन माहीं । दुख सुख खिन आवहिं खिन जाहीं ॥
दुख सुख करनहार जो कोई । जो चाहै छिन मैं सो होई ॥†
जेहि खोजसि पावसि तेहि[5] पीऊ । आनँद मूर जीउ को जीऊ ॥*
वहै पीउ वह तूं[6] उर राजू । जुरा जान सब वहै समाजू ॥

दोहा—चिंता न करहु अचित रहु, सब चिंता मिट जाइ ।
दिवस चार इह[7] काल गति[8], तासों कछु न बसाइ ॥२८२॥

सुन सो वचन[1] ताहि[2] मन आई । बिधि यह सपन की सांपरताई ॥
मकु[3] तस होइ साधु जस बोलैं । साधू बचन अडोल न डोलैं ॥
नैसिक[4] आस बांध उठि चली । मन मैं वहै बिरह कलमली ॥
भूखा खाइ तबहिं पति आई । त्रिखा दाह जल पियें सिराई ॥
जो बन चलि पाछै जब डारा । आगै चलत मिला बनजारा ॥
चहुं दिसि हाहू हाहू होई । लदै बैल सब अलद न[5] कोई ॥
नायक एक बरदिया घनें । सब बनजे ताके संग सनें ॥
दै पूजी व्योहार[6] करावै । खरचि खवाइ खेप पहुंचावै ॥
लेखा समुझि लेइ पुनि देई । जिन जस भरा[7] लाभ तस[8] लेई[9] ॥

दोहा—एक अभागी निपट[10] कै, मूरहु दीन गवांइ ॥
तिनहूं लीन[11] निबाह[12] पुनि, खान पान पहुंचाइ ॥२८३॥

दोहा २८२—१—आई (कां०) । २—करम (स०) । ३—बीता (स०) । ४—अब (कां०) । † यह चौपाई 'कां०' में नहीं है । ५—सो (कां०) । *'कां०' में इस चौपाई का उत्तर पद इस प्रकार है :—ताहू कर तोही मैं जीऊ ॥ पुनः इस चौपाई के पश्चात् 'कां०' प्रति में यह चौपाई है :—देहि वियोग काल कटि भयो । इह जाइ जैसै वोहि गयो ॥ ६—तुव (का०) । ७—महं (स०) । ८—कटि (का०) ।

दोहा २८३—१—बात (का०) । २—ताके (स०, कां०) । ३—मग (कां०, स०) । ४—सिसक (कां०) । ५—जो (स०) । ६—व्योपार (स०) । ७—परा (स०) । ८—जस (कां०) । ९—होई (कां०) । १०—आव (स०) । ११—लेत (स०) । १२—बिसाहन (कां०) ।

टांड़ा[1] ह्वै निकसी सो नारी । पेम बनजि बनिजै बनजारी ॥
देख रूप नायक बनजारा । थकित भयो जानहुं चलि हारा ॥
विधि यह मनुख किधौं अवछरा । कै नभ[2] छांड़ि[3] चांद भुइं परा ॥
पूछा कहु नारी मो पाहां । तू को किहि वियोग वन माहां ॥
वीरा[4] का पूछसि मो पीरा । मो पीरा सुनि बरसि न धीरा ॥
मो उर अगिन लपट जो गाढ़ी । एक झपट[5] तीनों पुर डाढ़ी ॥
भीमसेन राजा कै बारी । नल नरेस ताकी घर नारी ॥
जुआ खेल पिउ राज हिरावा । छूटा वास वास वन पावा ॥
तिहि दुख पर अब यह दुख भयो । वन महं कंत छांड़ि मोहि गयो ॥

दोहा—नेहि[6] बिन वन रोवत फिरूं, नहिं[7] बिछुरै कौ[8] खोज[9] ।
खोज न पाऊं मकु[10] जो कछु, तुम जानहु पिउ[11] खोज ॥२८४॥

सुनि दुख[1] दुखित भयौ बनजारा । लागिसि अगिन लपट उर झारा ॥
ता गति देखि छोह जिउ आवा । पुनि तिहि छोह मोह उपजावा ॥
छका पियै मद[2] मोह[3] पियाला[4] । कहसि हियैं हित कै सुन बाला ॥
तो पिउ कै मोहि सुरत न कोई । जैसै तूं तस मैं हूं बटोही ॥
पै यह मत आवै मन मोरें । जो पुनि ठांर बनै जिउ तोरें ॥
तूं वन जनि आपुहि भरमावसि । बसती खोज खोज जिहि पावसि ॥
चल मो संग हौं चलौं चंदेरी । मारग लेइ जाहुं सुधि तेरी ॥
लै तोहि नगर मांझ बैठाऊं । यह तेरो वन भटक[5] मिटाऊं ॥
बसती बसै खोज मिल रहै । आवत जात पथिक तोहि कहै ॥

दोहा—पंथी उघटत[6] पवन ज्यों, निस दिन आवहि जाहिं ।
वेहि बतावहि खोज तोहि, खोज बूझ तिहि पाहिं ॥२८५॥

दोहा २८४–१—तांड़ा नरान (स०), टांड़ी (कां०) । २—इहि (कां०) । ३—आइ (कां०) । ४—वैरागा (स०) । ५ छूटि (कां०) । ६—इहि (कां०) । ७—ता (स०) । ८—गा (स०) । ९—रोज (स०) । १०—मग (कां०) । ११—इहि (कां०) ।

दोहा—२८५–१—उर (स०) । २—मधु (कां०) । ३—मोह (कां०) । ४—मतिवाला (कां०) । ५—पहन (स०), भटन (कां०) । ६—तोउ घटत, (स०), तो घटि (कां०) ।

सुनि सो बात लागी[1] मन भली। तिहिं आसा ताके संग चली॥
भै[2] जब तहां दिवस दोइ चारै। अदिन अगिन जारैं परजारैं॥
एक द्यौस बन महं बनजारा। उतरा देखि निकट[3] जल धारा॥
तिहिं बन हस्ति रहैं[4] चहुं पासा। औ निकटहिं सिंहन कर बासा॥
भइ जब अरध निसा तिहिं बेरा। हाथिन आइ कीन्ह तहं फेरा॥
कारे अति भारे मतवारे। छिंक[5] टांड़ा तिन किये बरारे॥
सब मारे जेतक बनजारे। सें[6] नायक पायक मल डारे॥
तिन महं जियत बची सो नारी। कै बांभन दोइ चार भिखारी॥
रोवै नारि झुरै पछिताई। जिहिं की गति इन्ह कै संगआई॥

दोहा—कित[7] नायक मो सों[8] पिता[9], टांड़ा लिये लदाइ।
यह जो कछु[10] इन पर भयो[11], सो मोरे संग गिनाइ॥२८६॥

रोवत राखि द्विजन समुझाई। चले लियें ताहू संग लाई॥
तिन्ह कै संग[1] लागि सो नारी। आइ चंदेरी महं पगधारी॥
भीतर नगर कीन्ह परवेसू। भूले लोग देखि तिहिं भेसू॥
ऐसे रूप भेख इहिं कीए। को धौं प्रेम सुरा अस लीए[2]॥
जाकी दिस्टि परी अवछरा। सो छकि जाइ देखि जनु छरा॥
कौतुक कहं पाछें उठि लागे। फिरा करें संग संग न त्यागें॥
जुरै जो लोग भीर अति भई। सगरै नगर रोर मचि गई॥
अति सरूप आई[3] इक नारी। अदभुत चंद बरन उजियारी॥
इहि बनाव इहि रूप निकाई। अबला अबली दिस्टि न आई॥

दोहा—धनुक बान साधैं फिरैं, खरग कटारा संग।
भृकुटी बरुनी नास द्रग, कोप्यौ मनों अनंग॥२८७॥

दोहा—२८६–१—रानी (कां०)। २—बैठी (स०)। ३—निपट (कां०)। ४—रीछ (कां०)। ५—छक (स०), झुक (कां०)। ६—सब (कां०)। ७—कै (स०)। ८—सी (कां०), से (स०)। ९—नप्त (कां०)। १०—काज (कां०)। ११—परे (कां०)।

दोहा—२८७–१—लार (स०)। २—पियर्यें (कां०)। ३—बारी (स०)। ४—असंग (स०)।

ततखिन नगर राज पटरानी । अति विचित्र सुंदर परधानी ॥
आपन औ केतक संग नारी । कौतुक कारन चढ़ी अटारी ॥
ताकी दिस्टि भीर[1] वह आई । जन पठाई सुधि[2] बूझ मंगाई ॥
सुना भीर कारन तिहि रानी । जिहिं कारन वह भीर जुरानी ॥
सुनत दमंती बोल पठाई । आवत ढिग बुलाइ बैठाई ॥
बिन पूछै देखत उन जानी । यह जो है कोऊ पटरानी ॥
पुनि बूझा तूं को कह आली । आली कहा अदिन दुख घाली ॥
पुनि तासों बूझी न चलाई । राज मदिर महं ठौर दिवाई ॥
औ[3] आपन[4] बारी अति प्यारी । धाइ[5] सहित सेवा महं डारी ॥

दोहा—लै राखी फुलवारि महं, फूल जानि सो[6] नार ।
पै ताको मन रात दिन, ढूंढंत फिरै उजार ॥२८८॥

नल जिहिं दिन[1] नारी तजि गयऊ । झुर नारी नारी तन[2] भयऊ ॥
तरफत फिरै बीच बन[3] माही । मन धन महं तनकी सुधि नाही ॥
मीत बिछोह बहुत पछिताना । जब हिय दाह परा तब जाना ॥
तब वह[4] दुखी देख उठि आवा । अब अनदेखैं दुख सो दुखावा ॥
भरम भया आपै बतरावै । ज्यों परेत[5] लागे[6] बौरावै[7] ॥
मैं यह कौन कुमति उर धारी । अधमारी बनिता बन डारी ॥
बन बासा कोउ आस[8] न पासा । धौं[9] निरास बैठी[10] किहिं आसा ॥
मो संग भूखहु रहत अघानी । मौ[11] बिन[12] प्यास मरै तज[13] पानी ॥
ज्यों सारस बिछुरै मर जाई । त्यों मर जाइ किधौं[14] बिललाई ॥

दोहा—मोहू पुनि कछु दोस नही, कत[15] त्यागी तन जीउ ।
काल मथनि ज्यों फेर मन, काढ़ि लियो दधि घीउ ॥२८९॥

दोहा—२८८—१—फेर (स०) । २—गति (कां०) । ३—आवा (स०) । ४—पुनि (स०) । ५—धापे (स०) । ६—वह (स०) ।

दोहा—२८९—१—बन (स०) । २—बन (स०) । ३—मन (स०) । ४—दुखी (कां०) । ५—उर (कां०) । ६—हीयक (कां०) । ७—झरी लगाई (कां०) । ८—संग (कां०) । ९—वह (स०) । १०—निवहै (स०) । ११—अव (कां) । १२—वह (कां०) । १३—बिन (का०) । १४—वहौ (स०) । १५—गति (स०) ।

फिर फिर यहै[1] वचन मुख बोलै । अरध[2] निसा उठि[3] वन महं डोलै ।।
फिरत फिरत दूजा दिन आवा । टिका न विरह[4] ताहि[5] भरमावा ।।
डोलत फिरै विरह वैरागी । तिहिं वन गयौ जहां दी लागी ।।
चारों ओर भई अकुलाई । भुइं अकास जनु दीन्ह जराई[6] ।।
पौन अगिन जारत वन आवै । मेघ अरन[7] ज्यों लपट उठावै ।।
जद्यपि अगिन असूझ अपारा । पै नल विरह अगिन चिनगारा[8] ।।
चला जाइ कछु मनहिं न आनै । जरा अगिन सेकै[9] किन[10] मानै[11] ।।
ततखन सबद स्रवन महं आवा । दन काहूं नल नल गुहरावा ।।
नल तू बड़ धरमी गुनि ग्याता[12] । नेक आइ मोरी सुन बाता ।।

दोहा—सुनि सो बात नल फेर द्रग, जो हेरै वन माहिं ।
एक सरप दी मे[13] परा, और निकट कोउ नाहिं ।।२९०।।

बचन मान अहि पै नल आवा । कह बिखधर किहिं काज बुलावा ।।
सरप कहा राजा हौं पापी । मोहिं अपनी करतूति बियापी ।।
मै बांभन निरदोख दुखावा । दोख होइ तेहि डांक लगावा ।।
सो बांभन सराप मोहि बोला । डुलसि न विधि तोहि करै अडोला ।।
तिहिं सराप मो गति यह भई । तन कै गति मन सो मिलि गई ।।
तन अडोल भा डोल न जाई । मन अति[1] डावाडोल डुलाई ।।
अब यह अगिन काल भइ आवै । ज्वाल[2] ज्वार[3] मोहि जार बुझावै ।।
हौं अनाथ आपन अपराधी । तुम काटहु तो कटै यह व्याधी ।।
काल अदिन[4] सो मोहि बचावहु । जहां न काल तहा पहुंचावहु ।।

दोहा—महाराज इहिं काल सों, मो पहं बचो न जाइ ।
अमर होउ जो[5] बांह गहि, अब कै लेहु बचाइ ।।२९१।।

दोहा—२९०–१—आइ (कां०) । २—दिन (कां०) । ३—आठ पहर (का०) । ४—फेर (कां०) । ५—बाह (स०), पाइ (का०) । ६—दिखाई (कां०) । ७—घटा (स०) । ८—तन जारा (का०) । ९—से (का०) । १०—कनिको (कां०) । ११—जानै—(स०) । १२—दाता (का) । १३—ही तहां (स०) ।

दोहा—२९१–१—सों (स०) । २—ज्योर (स०), जोर (कां०) । ३—ज्योर (स०), जीवन (कां०) । ४—अतन (स०) । ५—तुव (कां०) ।

ता गति देख दया जिउ आई। नल चाहा तेहि लेइ बचाई ।।
सरप हुता काया कर भारी। सबल सपेत[1] सूत जनु डारी ।।
नल बलकै जो गहै कहं भयऊ। सरप[2] भुजा कंकन[3] होइ गयऊ ।।
ततखन नल उठाइ गह[4] लीन्हा। काढ़ि अगिन सो बाहर कीन्हा ।।
नल जब हाथ लीन्ह बिखधारी। छल बल कै[5] बोला हित कारी ।।
गिन दस पैड प्रथम पग धारहु। तब राजा मोहिं कर सों डारहु ।।
सोई कीन गिनत पग चला। नल सूधा वह[6] चाहै[7] छला ।।
गिनत गिनत दस लौ जब आवा। दस कै कहत सरप डसि खावा ।।
डसत बेगि तन बिस बस गयऊ। रवि को रंग राहु जनु[8] भयऊ ।।

दोहा—अंग अंग सब भंग भयो, और रंग भा[9] अंग ।
देखे अदिन मन भंग कै, पुनि[10] कीनों तन भंग ।।२९२।।

नल बोला यह करत भलाई। तैं मोसों कत कीन्ह बुराई ।।
सरप उलट[1] उत्तर तेहि दीन्हा। राजा मैं पुनि बुरा न कीन्हा ।।
तो कहं अदिन सबल दुखदाई। केतिक द्यौस अचल न चलाई ।।
तू राजा सब जग तोहि जानैं। तोरी ऊठ[2] देखि पहिचानैं ।।
जो कोउ[3] दुखी[4] देखि दुख देई। वैरी मिलै बैर पुनि[5] लेई ।।
मैं तोहि गुन अदिस्ट[6] पहिराई[7]। निरमल मन बिख[8] मैल छिपाई ।।
पुनि जब अदिन दिवस टरि जाई। सनमुख होइ भाग तोहि[9] आई ।।
तब मोहि सुरति करसि हौ आऊं। बिख लीलौं मैं उगल दिखाऊं ।।
वहै बरन वैसै तन होई। जो तू हता होसि निज सोई ।।

दोहा—तू दिनकर मैं राहु ह्वै[10], निस महं धर्यौ दुराइ ।
काल केतु[11] रथ टरि गएं, बहुरि उवै सुख आइ[12] ।।२९३।।

दोहा—२९२-१—समेट (कां०)। २—काल (कां०)। ३—किंगरी (कां०), कंकरी (स०)। ४—कर (कां०)। ५—सौ (कां०)। ६—चाहै (कां०)। ७—छल (कां०)। ८—रंग (कां०)। ९—हू (स०)। १०—अब (कां०)।

दोहा—२९३-१—पलटि (कां०)। २—ओठ (स०), ऊदत (कां०)। ३—दोखी (कां०)। ४—देखै (कां०)। ५—पै (कां०)। ६—तुव छबिहि (कां०)। ७—फिराई (कां०)। ८—मुख (कां०)। ९—तुव (का०)। १०—मै (कां०)। ११—राह (का०)। १२—कराई (कां०)।

औ यह बिख तो तन रखवारो । बिख मिस अमी बूंद मैं डारो ॥
सत्रु सिंह कोउ[1] निकट न आवै । जुद्ध जुरै कोउ जीत न पावै ॥
अब तोहि और सीख[2] सिखराऊँ[3] । नावं पलट[4] बाहुक बर नाऊं ॥
औ बन बन जनि करसि बसेरा । नगर अजुध्या तहं कर फेरा ॥
तहं नरपति रितुपरन नरेसू । सो राजा वह ताकर देसू ॥
राजा जुआ मरम सब जानै । छंद बंद नीकैं पहिचानै ॥
अनबन खेल सदा वह खेलै । एक बिगारै[5] एक सकेलै ॥
कई भेद सों पांसा डारै । जिन[6] मारा[7] चाहै तिहिं[8] मारै[9] ॥
ताकै खेल खिलए न कोई । सब जग खेल खिलारी सोई ॥

दोहा—सबै खेल वह खलै, बड़ो अपार खिलार ।
बिरला जन कोउ पाइए, तेहि मिल खेलनहार ॥२९४॥

मिल तासों ताकी कर सेवा । सेवा लखसि[1] खेल कर भेवा ॥
सेवा करतहिं[2] वहै लखावै । किरपा कर सब भेद बतावै ॥
जब पुनि खेल मरम तोहि[3] मिलै । तब तो भाग कवंल होइ खिलै ॥
जो गंठ जौन खेल तैं खोवा । तिनहिं खेल तोहि[4] मिलै बिछोहा ॥
यह दुख भरम सपन त्वैं[5] जाई । तूही राजा तोर रजाई ॥
कह ये वचन कीन्ह दुख मोखू । मनु हर लीन्ह मंत्र बिख दोखू ॥
पुनि ताही कंचुलि दोइ दीन्ही । बिपत प्रीत वचनन हर लीन्हीं ॥
कहसि इनहिं राखौ जिय लाई । जब जानसि सम्पति मोहि आई ॥
तब ये अवधि रूप निज सोई । जस कछु आदि[6] हुता तस होई ॥

दोहा—नल अहि सों उपदेस सुनि, चला अवध मन लाइ ।
अवध गएं मग अदिन के, आव अवधि[7] टर जाइ ॥२९५॥

दोहा—२९४-१—तोहि (का०) । २—भेद (स०) । ३—बनराऊं (कां०) । ४—फेर (का०) । ५—निकारै (कां०) । ६—जिस (कां०) । ७—डारा (कां०) । ८—तिस (का०) । ९—ढारै ।

दोहा—२९५-१—निकस (कां०) । २—किये अवस्य (कां०) । ३—पुनि (कां०) । ४—तैं (कां०) ५—मिट (स०) । * 'कां०' में उत्तर पद इस प्रकार है:—ले दोऊ नल के कर दीनी ॥ ६—तोर (कां०) । ७—औार (कां०) ।

पंथिन खान पान पहुंचावा । दसएं द्यौस अवध नल आवा ॥
तिहिं ठां राजनीति चलि आई । ज्यौं[1] उत्तम[2] नर देइ दिखाई ॥
ता गति नीके बूझि मंगावहि । राजा सों तब जाइ सुनावहिं ॥
राजा सुना रांक कोउ आवा । आयसु भा नल बोलि पठावा ॥
राजा मनु निरखत पहिचाना । जद्यपि हुता सरप विख साना ॥
सजन[3] जान पूछा कहु नाऊं । किहिं गुन गुनी[4] वास किहिं ठाऊं ॥
नल बोला का नाउं बताऊं । हौं[5] निनावं कर बाहुक नाऊं ॥
सब ठां फिरौ ठाउं नहिं कोई । जिहिं ठां रहौ ठाउं मोहि सोई ॥
गुन पुनि वहै जो परभू भावै । पै मोहि सालोत्तर गुन आवै ॥

दोहा—गुन गुमान मोहिं कछु नही, हौं निरगुन निरमान[6] ।
सुनि मैं तुम निरगुन गुनी, सरन लीन्ह भगवान ॥२९६॥

मति[1] भंडार मुख[2] दिया जो तारा । नल रसना तारी सो उघारा ॥
तब राजा निहचै[3] पहिचाना । यह जन[4] महा सुबुध सग्याना ॥
जिहिं मति कर मानस[5] जो होई । बोलै जानि जाइ निज सोई ॥
हिय गति समुझि परै जद[6] देखै । मानस वचन बानि विसेखै[7] ॥
राजा बहुत कृपा करि बोला । मया कीन अंतर पट[8] खोला ॥
आयसु कीन्ह तुरै जो मोरै । सब कीन्हैं आयसु महं तोरै ॥
बहुत भांति कै करसि संभारा । फेर फिराइ सवार तुखारा ॥
चंचल होहिं चलैं गति लेई । औ जो चढ़ै तिहिं महं[9] चित[10] देई ॥
केतिक ही इन्हें सधन सधाऊ । रथ सों जुरै चलै जस[11] बाऊ ॥

दोहा—सेवा करि चित लाइ कै, सेवा निफल न जाइ ।
सेवक साहब के हिये, रात द्यौस मंडराइ ॥२९७॥

दोहा—२९६–१– जौनों (कां०), जानौ (स०) । २—तुम (स०) । ३—सोजन (स०) । ४—बोल (कां०) । ५—मोहि (कां०) । ६—निर्बाण (कां०) ।

दोहा—२९७–१—पेट (कां०) । २—द्वार (कां०) । ३—निजकै (कां०) । ४—कोउ (कां०) । ५—मांगह (स०) । ६—हद (स०), चढ (कां०) । ७—पेखै (कां०) । ८—निज (कां०) । ९—तन (कां०), मन (स०) । १०—जब (कां०) । ११—होइ (कां०) ।

मया देखि पुनि[1] बाहुक बोला। अदिन अडोल मोर अब डोला॥
महाराज मोहि सेवा लावा। कीन्ह मया निरगुन पति पावा॥*
सेवक तो जब सेवा करई। तब तिहि धनी हाथ सिर धरई॥
तुम मोहि बिन सेवा गुन कीन्हा। अति[2] निरगुन सेवा महं लीन्हा॥
मोसों कहा होइ अस सेवा। जो तुम गुन पूजें गुन देवा॥
जो कछु[3] मोसों होइ सो करौं। मन बच करम सेव जिय धरौं॥
औरे गुन जो कछु हौं जानौं। समौ परें सेवा महं आनौं॥
जग्य बिवाह काज जो होई। बेगि बहुत रस करौं रसोई॥
औ हौं चित्र अनूप बनाऊं। जो देखौं सो लिख दिखराऊं॥

दोहा—पानि लेत[4] ही चित्र[5] सो, प्रानवंत[6] होइ जाइ।
जाकर जापर रीझ जिउ, ताही माहिं समाइ॥२९८॥

सुन ये बचन रीझ अति भई। गुन गाथा मन महं गड़ि गई॥
राजा बहुत कृपा परि[1] आवा। अहुट[2] हुता नल निकट बुलावा॥
पुनि चितेर जे चित्र लिखैय्या। औ जेतक हय रथन हंकैय्या॥
सब नल कहं आग्यां महं कीन्हे। कर तिन्ह सिरे[3] सकल संग दीन्हें*॥
जानि सुजन औ[4] चतुर प्रवीना। टका सहस दस कीन्ह महीना॥
रहै[5] चित्र हिय लिखै संवारे। कबहूं मन सों छिन न बिसारें॥
तन कर स्वाम[6] काज सब करै। मन कर सुरत[7] माल नहिं टरै॥
उलट पलट सोई जप माला। ताहि जपै जिहि मद मतवाला॥
प्रेमहिं सो माला ठहिराई। प्रान गए माला संग जाई॥

दोहा—किहि गुन माला हाथ[8] कैं, जो कर[8] माहिं[9] फिराइ[10]।
अजप माल साबुन गही, प्रभू[11] मिलै[12] तब जाइ॥२९९॥

दोहा—२९८-१—फिर (कां०)। * 'कां०' में उत्तर पद यों हैः—मैं इहि बड़ा पदारथ पावा॥ २—निज (कां०)। ३—आवै (कां)। ४—घन (कां०)। ५—चक्र (कां०)। ६—तो परि अनूप (कां०)।

दोहा—२९९-१—कर (स०)। २—अहुत (स०, कां०)। ३—सुरें (स०)। *'कां०' में उत्तर पद यों हैः—करहिं टहल ताकी सिप लीने॥ ४—औ (कां०)। ५—वहै (कां०)। ६—इमि (स०)। ७—तन (कां०)। ८—हाथहिं (कां०)। ९—हाथ (कां०)। १०—हिराई (कां०)। ११—जु पीये (कां०)। १२—मिला (कां०)।

निस जब होइ नींद टर सोवै । यह दुख भरा[1] जाग निस खोवै ॥
वैरी विरह नाग होइ आवै । विखधर जान जुद्ध[2] कहं धावै ॥
निबल पाइ रिपु घर घर खावै । रुदन करै जब कछु न बसावै ॥
स्याम घटा तन औ निसिकारी । तैसइ विरह उमगि अंधियारी ॥
लसै[3] बीज होइ हियै दमावत । निमि बीतै चख[4] झरै लगावत ॥
द्यौस कवंल ज्यों सब निसि नैना । औ मुख कहै बिरह दुख बैना ॥
प्यारी तू किहिं वन वन वासी । किन डोलसि भूखी अरु प्यासी ॥
ऐ जिउ प्रान कहां तोहि वासा । दिस्टि न परसि रहसि जिउ पासा ॥
तै उदास कैंवौ मन माहीं । का तोहि रूप सुरत[5] मोहि[6] नाहीं ॥

दोहा—कत तिहिं[7] द्यौस निशा[8] परै, उहिं[9] बटपारै गाऊं ।
वसा कुमति उपजी हियै, कर मल मल पछिताऊं ॥३००॥*

निज[1] जब इहिं कलाप निसि खोवै । ऊभै[2] सांस भरै औ रोवै ॥
तब काहूं जो लखा ते कहा । बाहुक तू किहिं कै दुख वहा ॥
किहिं कारन निसि झीख[3] गवांवसि । को तोरे जिहिं[4] विनौ[5] सुनावसि ॥
बाहुक कहा मीत सुन बाता । अहा एक मूरख अग्याता ॥
ताके घर नारी उजियारी । जा[6] समान जग विरलै[7] नारी ॥
भूख पियास कंत लगि भरै । संग[8] छांड़ि[9] पग अनत न धरै ॥
सो नारी मूरख तजि गयऊ । तज तिहिं आप सवारथि भयऊ ॥
वह अबला ज्यों[10] ज्यों विललावै । विसंभर[11] होउ[12] सुरत जब[13] आवै ॥
जब वह बात[14] सुरत हौं करी । न धीज होउ मन[15] धीज न धरौं ॥

दोहा—देखि सचाई प्रीति कै, विरह अनल हिय[16] माहिं ।
वन दौ[17] लौ निस दिन वरै, धुआं प्रकासित[18] नाहिं ॥३०१॥

दोहा—३००–१—नींद (कां०) । २—डसै (कां०) । ३—वसे (कां०) । ४—इमि (कां०) । ५—सरूप (कां०) । ६—किं (कां०) । ७—इहि (कां०) । ८—बसा (कां०) । ९—तू (कां०) । *'कां०' में दोहे का उत्तर पद यों है:—जहां वसे मोहि निकट, भौमि लै बिछर विललांव ॥

दोहा—३०१—१—तब (कां०) । २—अदभै (स०) । ३—हीयक (कां) । ४—जिय (कां०), जिन (स०) । ५—चहि (कां०) । ६—जिन (स०) । ७—और न (कां०) । ८—विन (स०) । ९—आयुस (स०) । १०—मो (कां०) । ११—ताकी (कां०) । १२—कथा (कां०) । १३—जिये (कां० । १४—कथा (स०) । १५—जीय (कां०) । १६—उर (कां०) १७—मंझार (कां०) । १८—निकास कवा (कां०) ।

भीमसेन कुंडन पुर सुना । नल वनवास बसा सिर धुना ।।
रानी सुनत अधिक कुम्हिलानी । अबला धीज छांड़ि बिललानी ।।
रोदन करै हाथ[1] हिय हनै । माया मोह वचन मुख भनै ।।
अजगुत[2] भा धौं गति यह जानी[3] । कत छोनी[4] वन वन भरमानी[5] ।।
जिहिं पग कुसुम कांट[6] ह्वै[7] अरै । धरती[8] पांव[9] सो[10] कैसै[11] धरै ।।
सूरज सौंह जो आंख न खोली । सो मधिआन्ह धूप किमि डोली ।।
छिन बिन नीर नीर ज्यो[12] ढरै । सो क्यों भूख प्यास दुख भरै ।।
दिन[13] चौंकै मंदिर उजियारी । क्यों काटै निसि[14] वन अंधियारी ।।
गाढ़[15] काल कल कल कल सोई । किमि कल[16] परै[17] करीरै भोंई ।।

दोहा—पौन लगत भुइं पग धरत, लचक लांक मुचि जाइ ।
सो धौं क्यों मारग चलै, रुदन करै बिललाइ ।।३०२।।*

झख वक थक उपाइ पर आए । राजा सेवक लोग बुलाए ।।
आयसु कीन्ह वचन ठहिरावा । जुरी सभा महं बोल सुनावा ।।
जो कोऊ नल कै सुधि लावै[1] । बारी कर संदेस पहुँचावै ।।
एक सहंस तेहि गाय[2] दिवाऊं । औ इक बडा नगर अस गाँऊं ।।
औ पुनि बहुत बहुत गुन मानूं । ताहि भला सेवक करि जानूं ।।
सुनि सो बात सब कहं भा चाऊ । देस देस कहं चले ढुंढाऊ ।।
बाम्हन भाट बहुत उठि धाए । लालच लागि सबै ललचाए ।।
खोजत चले लोग चहुं ओरा । ढूढहिं पुरुख नारि कर जोरा ।।
दोइ कै ढूढै होइ न मेला । जिहि[3] ढूढै सो आप अकेला ।।

दोहा—सुधि[4] न मिलै भरमत फिरै, बढ़ै भरम हिय सौध[5] ।
दोइ ढूढै पावै कहां, वह सो एकहि[6] औध ।।३०३।।

दोहा—३०२—१—हाथन (स०), हाथै (कां०) । २—उजगत (स०), उचकत (कां०), ३—जाई (कां०), जानै (स०) । ४—छूटै (कां०) । ५—भरमाई (कां०), भरमाए (स०) । ६—काटि (कां०), कोस (स०) । ७—गुन (स०) । ८—धरा (स०) । ९—धरा (स०) । १०—वर (स०) । ११—क्यों (स०) । १२—बिललाइ ह्वै (कां०) । १३—बिन (स०) । १४—निज (कां०) । १५—गडै (कां०), गढ़न (स०) । १६—गुल (स०), कलपे (कां०), १७—वरी (स०), रे (कां०) । * 'कां०' में इस दोहे का द्वितीय चरण यों है:—'चलै बिललाइ बिलाइ' । और चतुर्थ चरण यों है:—'चक लचक लांक मुच जाइ' ।

दोहा—३०३—१—लै आवै (स०), ल्यावै (कां०) । २—रूक (स०) । ३—जिन (स०) । ४—सु बोह (कां०) । ५—पौध (स०), सुद्ध (कां०) । ६—एकता (कां०, स०) ।

बोला मोहि चीन्हसि किन बारी । बारी सेवा कीन्ह[1] तुम्हारी ॥
बाम्हन मोर नांउ सहिदेऊ । निसि दिन करत हुता तुम सेऊ ॥
मोहि अरु तुम्हरे भ्रात मिताई । बारें तें अवलों चलि आई ॥
नांउ सुनत पावा जब[2] भेऊ । तब अबला चीन्हा सहिदेऊ ॥
बोली विप्र कुमर प्योसारा[3] । औ बालक पहुंचे ननिहारा ॥
मात ,पिता भ्राता सब भले । कै दिन[6] तुम्हैं[5] तहां सों चले ॥
किहि संजोग चंदेरी आए । अपने काज कि राज पठाए ॥
यह जो अदिन[8] आवा मो माहीं । सो कुंडनपुर सुना कि नाहीं ॥
कहि न जाइ मो पर जम बीती । रिपु पुहकर अति करी[7] अनीती ॥

दोहा—हौं अति सुन्त न कंत गति[8], नियरें तऊ सो दूर ।
दिस्टि न आवै हिय बसै, मरों[9] बिसूर[10] बिसूर ॥३०६॥

विप्र कहा सब छेम भलाई । नीकें बाल मात पितु भाई ॥
तिन्हें[1] कुसर पै तन[2] जिय नाही । तन कहं छाड़ि बसा तोहि माहीं ॥
जा दिन सों जानी गति तोरी । ता दिन तें[3] तन[4] सो[5] जिय तोरी ॥
सब तन कस्ट[6] एक गति भयऊ । सुख[7] सवाद सब कर उठि गयऊ ॥
दुख सुख अंतर[8] अंतहूं[9] आवा । मन भूखे[10] तोहि माहि समावा ॥
जिउ[11] तन होइ तो अंतर होई । जिउ[12] तो लगि तन कै सुधि खोई ॥
तोहि हेरन लगि बहुत हिराने । थाँ कहं कहं मग भरम भुलाने ॥
बन बसती अस ठौर न कोई । जौन ठांव तुव खोज न होई ॥
हौंहूं तोहि खोजन लगि आवा । मै भागहिं नियरें तोहि पावा ॥

दोहा—प्रथम भूल बन बन भरम, मैं हूं पजउ[13] दुख दीन ।
अब पायो जब जीउ दै, नगर खोज मैं कीन ॥३०७॥

दोहा—३०६–१—कठिन (स०) । २—सब (स०) । ३—पिस सारा (म०) । ४—कुंदनपुर (कां०) । ५—तुम (कां०) । ६—दिन (स०) । ७—कीन (कां०) । ८—कित (कां०) । ९—सुमिरों (स०) । १०—मरौं (स०) ।

दोहा—३०७–१—नहहं (स०) । २—तिनह (स०) । ३—सों (का०) । ४—तिन (स०) । ५—सै (स०) । ६—कुटुम (स०) । ७—सेज (कां०) । ८—तन अंतर (कां०) । ९—नहिं (कां०) । १०—भोगी (कां०) । ११—मन (कां०) । १२—मन (कां०) । १३—जीय (कां०) ।

सुनि द्विज वचन दमावत रोई । ईस सीस जनु ढलित विछोई ।।
देखि रुदन संग हुती जो धाई । सोऊ रुदन रूप होइ आई ।।
धाई जहं मंदिर पटरानी । तासों[1] धाइ सो कथा बखानी ।।
रानी परदेसी इक कोई । ताकहं चीन्ह[2] दमावत रोई ।।
निरखत[3] नैंन मेघ जुरि आए । विरह सिंधु हिय सों जल लाए ।।
वदन चंद पटघट गह लियो । तम निस ज्यों दिन हिय इमि[4] भयो ।।
वरखै लाग झकोर झकोरी । अंतर भीज चुआ होइ ओरी ।।
सो ओरी उर परत विलाई । जान न जाइ कहां[5] जल जाई ।।
कै जनु विरह वेह[6] उर मांही । जल प्रवाह चलि तहां समाहीं ।।

दोहा—नैंन मेघ जल मलित ज्यों, उर सों और न जाइ ।
तपत तवा की बूंद ज्यों, परतहिं परत[7] विलाइ ।।३०८।।

रानी उठि आई ततकाला । झांकी ह्वै झांकी सो वाला ।।
देखी सांच दमावत खरी । रोवै कोटि[1] कोटि[2] दुख भरी ।।
धाइ मरम जस स्रवन सुनावा । वहे रूप नैनन में आवा ।।
पलटि धाइ पुनि धाइ पठाई । बूझ आव कासो[3] वतराई ।।
उलटि[4] धाइ जैसे चक डोरी । धाय जाइ बूझी वह गोरी ।।
को यह हितू मिला तोहि वारी । जेहि मिलि आंसु सलित तैं डारी ।।
सो धन सकुचि लजाइ न वोली । विप्र मरम पोथी तव[5] खोली ।।
आपन नाउं कहा सहिदेऊ[6] । औ आपुन आवै कर भेऊ ।।
धन पति नितु कर नाउं वतावा । जुआ मरम पुनि वरनि सुनावा ।।

दोहा—सुख संपति औ दुख विपति, दोऊ दीन वताइ[7] ।
सुन रानी सों निज कथा, धाइ कही पुनि आइ[8] ।।३०९।।

दोहा—३०८-१—तिन सों (स०) । २—चीन्हैत (का०) । ३—तम (कां०) । ४—खाल (कां०) । ५—पंथ (कां०) । ६—चल (स०) । ७—पर (कां०) ।

दोहा—३०९-१—कूट (स०) । २- कूट (सं०) । ३—का सो नर (स०) । ४—तुरत (कां०) ५—उर (सं०) । ६—सिव देऊ (सं०) । ७—सुनाइ (स०) । ८—जाइ (कां०) ।

रानी सुनत बहुत पछिताई । बोलि दमावत गरें लगाई ॥
तू मोरी बहिनी कै वारी । प्रानहुं तें मोहिं अधिक पियारी ॥*
पराना[1] मै न तोहि पहिचाना । अब जब मरम लहा तब जाना ॥
भेद लिएं बिनु जाइ न लहा । घर ही में अंतर ह्वै रहा ॥
तू अरु मो महं भेद न कोई । जोई तू हौंहूं निज सोई ॥
देखहु परालबध संजोगू । मिलन मांझ ह्वै रहा बियोगू ॥
हौं कबहूं कछु कछू पहिचानी । पुनि भरमाइ धोख जिउ आनी ॥
का जानौं तू होसि कि नाहीं । दुविधा आइ[2] परै मन माही ॥
सो दुविधा अंतर होइ जाई । लै[3] मन अनत देइ भटकाई[4] ॥

दोहा—यही कुसर जो भूल कहं, अबही[5] भयो लखाव ।
पुनि पाछे मोहिं जनम भर, हिये रहत पछताव ॥३१०॥

तिहिं पुनि जब मौसी कहं जाना । नाइ सीस पाइन्ह तर आना ॥
अति अधीनताई मुख आनी । ता प्रभुता ह्वै दीन बखानी ॥
हौं अजान तुम जान सुजाना । तुम जाना मै तुम्हें न जाना ॥
मो अजान कहं तुम पति दीन्ही । मेटि भरम मानस गति कीन्ही ॥
मन रुचि खान पान पहुंचावा । तऊ न सेवा मैं मन लावा ॥
तुम[1] मोहि कीन्ह राज गृह वासी । हौं तुम सौं[2] नित रही उदासी ॥
तुम गुन गिनती[3] गिनै न जाई । मो निरगुनता ताहि सवाई ॥
मकु यह गुन अदीठ[4] मो माही । जग मोसों निरगुन कोउ नाहीं ॥
ता गुन रीझ रीझ मोहि दीजै । विनौ जो करौं मान सोइ लीजै ॥

दोहा—ह्वै दयाल[5] मोहि बांह गहि, थान[6] देहु पहुंचाइ ।
मेटि जनम दुख सुख रहौं, तुम जैजै[7] मिलि[8] जाइ ॥३११॥

दोहा—३१०—* 'कां०' प्रति में यह दोहा० ३०८ की अंतिम चौपाई है । १—परानान (स०), प्रानां (कां०) । २—आनि (कां०) । ३—पैर (कां०) । ४—बहकाई (स०) । ५—अबहूं (स०), अजहूं (कां०) ।

दोहा—३११-१—तय (स०) । २—मैं (कां०) । ३—कीनां (कां०) । ४—औगुन (कां०) । ५—दया (स०) । ६—तहां (कां०) । ७—जीजी (कां०) । ८—वलि (कां०) ।

रानी विनौ मानि पुनि लीन्हा । नौतम राज साज कै दीन्हा ।।
रथ आपन सो साजि दिवावा । संग सेवक दै कीन्ह चलावा ।।
चली दमावत्त नैंहर आई । भीमसेन घर वाजि वधाई ।।
मात पिता भ्राता सब मिले । चंद देखि कोई होइ खिले ।।
राजा कीन्ह दान अधिकाई । घर घर तैं न्यौछावर आई ।।
मोती भर भर थार लुटाए । वांभन भाट गुनी पहिराए ।।
पुनि पांडे सहिदेउ बुलावा । अति ऊंचा वागा पहिरावा ।।
सहस गाइ इक गाँउ दिवावा । अति वड़ बहुत दरव उपजावा ।।
कुंडन पुर कौतूहल भयऊ । दम दुख चाँद उवैं मिटि गयऊ ।।

दोहा—देखि सो धन जब कुटुंब कैं, तन मैं आयो जीउ ।
ता तन तें सो निकसि कैं, ढूंढत[1] डोलत[2] पीउ ।।३१२।।

जा कहं प्रीत पीउ सों होई । ताहि कुंटुव सों काम न कोई ।।
रथ तें उतरि पवंरि जब आई । नल मिलाप[1] गृह दीन दिखाई ।।
देखत खिन सी[2] ठां वह नारी । उठी[3] वियोग अगिन उर भारी ।।
तिहिं मिलि रोइ कुंटुव दुख खोवै । वह तिन्ह मिलि विछुरैं कहं रोवै ।।
दिन मिलि मिलि सखियन[4] सों रोई । निसि नल कैं दुख सों मिलि सोई ।।*
ब्रह्मा कैं दिन ज्यो निसि वाढ़ी । घटै न विरह उमंग जिउ गाढ़ी ।।†
भर भर अंकम[5] देइ मरोरा । सहै न निबल गात भक भोरा ।।
ताक भुईं पलका कैं पाटी । सव[6] निसि दुहौं ओर तें[7] काटी ।।
जो पुनि कहौ परान क्यों रहै । पिउ मैं है तिय तन महं न[8] है ।।

दो०—जो जिउ तन सी अलग ह्वै, पीतम माहिं समाइ ।
तहां काल को[9] गम नहीं, तनहिं झांक फिर जाइ ।।३१३।।

दोहा—३१२-१—ढूंढ़त (कां०) । २—गये (कां०) ।

दोहा—३१३-१—समीप (स०) । २—संयोग (कां०) । ३—अथै (स०) । *'स०' प्रति मे इसी की जोड़ की दूसरी चौपाई है जिसमें 'सखियन' (प्रथम पद मे) और 'सैं' (द्वितीय पद में) शब्द विशेष हैं । प्रस्तुत संपादन मे गृहीत की गई चौपाई में इनके स्थानों में क्रमशः 'लोगन' और 'सों' शब्द हैं । परंतु 'लोगन' के लिये 'सखियन' शब्द ग्रहण कर लिया गया है । ४—लोगन (कां०), लोगहं (स०) । † 'कां' प्रति में उत्तर पद यों है:—वैरी विरह गहै कै गाढी । ५—याकों (स०) । ६—सरवस (कां०) । ७—सौं (कां०) । ८—अहै (कां०) । ९—महं (स०) ।

ससि सब रैन नखत सब[1] खोवै । जिउ पिउ कै दुख सान न सोवै ।।
भौर[2] धाइ जासों हित[3] अहा । तासों परमारथ निज[4] कहा ।।
जिन जानी वारी इह आई । वारी दूर वार दरसाई ।।
तन देखो तन मैं हौं नाहीं । हौं तन अलग रहौं पिउ माहीं ।।
मैं तन सों ताही दिन तोरी । जा दिन पीति पीउ सौं जोरी ।।
जहां सो पोउ तहां इह जीऊ । पिउ महं जीउ जीउ मैं पीऊ ।।
जिउ पिउ पास देह इह मूनी । को लौं टिकै सो प्रान विहूनी ।।
पै मोरै य'सों नहि माया । रहु कै अवहिं जाहु इह काया ।।
या तन विन तुमहीं दुख पावहु । मो जिउ अछत मुए ठहरावहु ।।

दोहा—यात तुम सुख[5] कहं कही, तन[6] विनसै[7] दुख लेहु ।
अवही किन या तन[8] अछत, पीउ[9] खोज जिउ देहु ।।३१४।।

धाइ सो धाइ माइ पहं रोई । रानी मैं तन कै सुधि खोई ।।
देखि दमावत कै संतापा । विसर[1] गयी मोहि आपुन आपा ।।
विन जिउ फिरैं जीउ तन नाहीं । जीउ वसै नित[2] पीतम माही ।।
तोर रही तन सौं निज नाता । सुरत न वौ[3] तन सीर कि ताता ।।
जिउ तन त्यागि अलग होइ रहा । तन क्यों रहै सो जाइ न कहा ।।
पिउ मन[4] मिलन[5] आस तन डोलै । आसहिं[6] प्रान भये तन वोलै[7] ।।
आस छुटै छिन मैं मर जाई । तन निरास कोलों ठहिराई ।।
देह गये पाछै पछितावा । औसर टरा सो हाथ न आवा ।।
ता पिउ खोज विलंव न कीजै । सव विसराइ ताहि जिउ दीजै ।।

दो०—जो खोवा तो खोइ पुनि, बैठ न रहो गवांइ ।
खोज करहु खोजे मिलै, इनहिं[8] देस मंडराइ ।।३१५।।

दोहा—३१४–१—खिन (का०) । २—पीर (कां०) । ३—चित्त (स०) । ४—दुख (स०) । ५—सिख (कां०) । ६—कि (कां०) । ७—तन तैसं (कां०) । ८—बातन (कां०) । ९—कंत (कां०) ।

दो०—३१५–१—भूलि (कां०) । २—इहि (कां०) । ३—दहुं (स०), वोह (कां०) । ४—जनु (कां०) । ५—दास (स०) । ६—ऐसैं (का०) । ७—बोलै ( ) ।
८—इहै (कां०) ।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

दोहा—[illegible] ॥२१७॥

दोहा—२१६—१—[illegible] (न०)। २—[illegible] (न०)। ३—[illegible] (न०)। ४—कहुं (न०)। ५—[illegible] (न०)। ६—[illegible] (का०)। ७—[illegible] (का०)। ८—[illegible] (न०)। ९—पुनि उत्तर (का०)। १०—[illegible] (का०)।

दोहा—२१७—१—जे (न०)। २—[illegible] (का०)। ३—[illegible] (का०)। ४—[illegible] (का०)। ५—पुनि (का०)। ६—[illegible] (का०)। ७—[illegible] (का०)। ८—[illegible] (का०)। ९—दोइ (का०)। १०—तिन (न०), तिहि (का०)। ९'का०' में उत्तर पद यों है :—'जानै वोही निठर यह जोरा'। ×'का०' प्रति में यह चौपाई नहीं है। ११—कर (न०)। १२—भेऊ (स०)। † 'स०' प्रति में उत्तर पद यों है :—'बांभन कैं हिय में भयो भेऊ'। *'का०' प्रति में दूसरी पंक्ति (जहां ग्रही······) पहले है।

विप्र नांउ[1] वर नाउं कहावा । बूझत[2] अवध नगर महं आवा ।।
गली गली घर घर दर डोलै । पेमी पेम वचन मुख बोलै ।।
उत्तर आतुर उतर न पावै । उत्तर आस लियै भरमावै ।।
फिरत फिरत निकसा वह[3] तहां । तन मन जरै जुरै सब जहां[3] ।।
सब कहं हियै पेम दुख बसा । नल पुनि तहां विरह अहि[8] डसा ।।
सुन ते वचन वंद विख[5] छोरा । उठ उमंग को हियैं[6] हिलोरा ।।
खाइ पछार गिरा बिसँभारा । तन न जीउ जिउ खेल सिधारा ।।
निकस चला पै जान न पावा । पेम फाँद उरझा फिर आवा ।।
चेत उठा जब भई सँभारा । आँसू तिन[7] निकसै रुह[8] धारा ।।

दोहा—लोट पलट[9] भुइँ झार मनु[10], रोइ सो छिरक वनाइ ।
मीत सँदेसी पथिक कहं, बैठक दीन्ह बुलाइ ।।३१८।।

पेम वचन उत्तर पुनि बोला । प्रीत गरंथ पत्र[1] कहं[2] खोला ।।
सुनु हो मीत नारि पुनि सोई । साँच प्रीति पिउ सों जिहिं होई ।।
जद्यपि पिउ सेवा दुख पावै । तद्यपि अधिक अधिक जिउ[3] लावै ।।
पिउ कह सवै भलै कै जानै । बुरे करम अपने पर आनै ।।
कंत जो करै सो हित कै करई । अनहित कै पिउ मनहिं न धरई ।।
भरम दिस्टि तिहिं बुरै दिखावै । नातर पिउ सब भलै बतावै ।।
ताही महं सब हुती भलाई । जो कछु पीतम कै मन आई ।।
धन सुकुवाँर बड़ै दुख माही । देख न सका गयौ तजि ताही ।।
पै इहिं जग विरली ते नारी । जे दुख पाइ न होहिं दुखारी ।।

दोहा—पतिवरता तिय ते अहैं[4], जिन्है रोस रिस नाहिं ।
पिउ रिसहू[5] रसकै गिनै[6], रसी रहैं रिस माहिं ।।३१९।।

दोहा—३१८—१—पूछत (कां०) । २—ह्वै (कां०) । ३—तहां (कां०) । ४—यह (स०) । ५—मुख (स०) । ६—लहर (कां०) । ७—वोह (कां०) । ८—कहि (कां०), राह (स०) । ९—पलक (कां०) । १०—जिन (कां०) ।

दोहा—३१९—१—विप्र (स०) । २—पुनि (स०) । ३—मन (कां०) । ४—कहीं (कां०) । ५—विन (कां०) । ६—कहैं (कां०) ।

बिप्र बचन उत्तर जब पावा। लै तेहिं उकस अगोटैं आवा ॥
कहिस मीत आपन कहु नाऊं। औ तू को किहि गुन[1] इहि गाऊं ॥
कहा बिप्र का नाउं बताऊं। हौं ननाउं कर[2] बाहुक नाऊं ॥
राजा कै सेवा महं रहौं। टहल जो मोहिं सौंपी[3] सो करौं ॥
तुरै जहां लगि राज दुवारा। सब कहं सुधि संभार[4] मो सारा ॥
तुरै भेद नीकै मैं जानौं। रोम रोम लच्छन पहिचानौं ॥
औ जेतक[5] रजवार[6] चितेरे। सिखहिं[7] चित्र चेटिया[8] सब मेरे ॥
ये तीनों सेवा मैं सारू। औ राजा कर बहुत पियारू ॥*
औ[9] सारूं पुनि राज रसोई। रस अनबन[10] बहुतै रस होई ॥

दोहा—बिप्र बिदेसी लहि मरम, चला देस मन लाइ।
संदेसी उत्तर मिलै, कत बिदेस ठहिराइ ॥३२०॥

काटि पंथ कुंडनपुर आवा। राजा कहं निज मरम सुनावा ॥
आयसु भा बारी[1] सौं कहै। मरम बात मरमी पै लहै ॥
चला बिप्र गा राज दुवारा। बारी आइ ठाढि भइ बारा ॥
कहिस कि अवध नगर तिहिं ठांऊं। पुरुख एक बाहुक तेहि नाऊं ॥
राज द्वार सेवा महं रहै। राजहिं केर मया पुनि अहै ॥
साल्होत्तर गुन गुनी कहावै। औ चितेर भल चित्र बनावै ॥
औ जो संवारै राज रसोई। रस अनबन सवाद बहु होई ॥†
सो ए बचन सुनत खिन रोवा। रोइ पछार खाइ भुइं[2] सोवा ॥
जब जागा तब मोहिं बुलायस। कै अति हेत निकट बैठायस ॥

दोहा—कहसि लगौहै बचन पुनि[3], अति हित प्रीति जनाइ।
ते अब सब[4] तुम सौ कहौं, सुनौ स्रवन मन लाइ ॥३२१॥

दोहा—३२०—१—किन (स०)। २—पै (कां०)। ३—सो बने (स०)। ४—सवांर (स०)। ५—तेकर (कां०)। ६—रजवाइ (कां०)। ७—सकहिं (स०)। ८—चितिया (स०), चटीया (कां०)। * 'कां०' प्रति मे यह अंतिम चौपाई है। ९—मो (स०)। १०—आनौ (स०)।

दोहा—३२१—१—रानी (कां०)। † 'कां०' मे उत्तर पद यों है:—'सबन सिरै स्वारथ पुनि सो होई।' २—गुनि (कां०)। ३—तिनि (कां०)। ४—हौं (कां०)।

कहिस विप्र अवला पुनि सोई । जो पिउ सौं सांची जिउ[1] होई ।।
जद्यपि कंत ताहि दुख देई । तद्यपि दुखी मानि सुख लेई ।।
इह विचारि अपनै मन[2] धरै । कंत जो करै सो वुरी न करै ।।
औ तिहिं पुरुख जो नारि बिछोई । बन निरास जिउ[3] आस न कोई ।।
ताहू पुरुख दोख कछु नाही । देख न सका नारि दुख माही ।।
ता दुख देखि दुखित अति भयऊ । तिहिं दुख दुखी होइ उठि गयऊ ।।
विप्र बचन अवला सब सुनी । सुनि सुनि समुझि रोइ मन गुनी ।।
बोली विप्र वरन कह वाका । किहिं अनुहार रूप कौ[4] ताका ।।
बांभन कहा बरन[5] अति कारा । जानहु पेम आगिन कर जारा ।।

दोहा—निपट अरूप अति अवरन, वरन रूप कछु नाहिं ।
वह अस वहै न और कोऊ, तिहिं सर तिंहु पुर माहिं ।।३२२।।

धन पिउ पता और सब पावा । सुनि रवि राहु भरम जिउ आवा ।।
रुदन करै चिंता मन कियऊ[1] । विधि किहिं जोग कमल अलि भयऊ ।।
किहिं कारन केसर कसतूरी । नारंग सुरंग[2] स्याम खरहरी[3] ।।
जो रे कहीं प्रीतम वह नाही । पै[4] पिउ कै सब गुन तिहि माहीं ।।
चित्र करा जो कहा पां पीऊ । वहै चित्र लिखि डारै जीऊ ।।
इहिं गुन गुनी और नहिं कोई । एकै पीउ पियारा सोई ।।
औ पुनि[5] जग भोजन कर साजा । और न वहै एक सो राजा ।।
वहै तुरै गति जाननहारा । रोम रोम रमता पिउ प्यारा ।।
जामैं ए सब गुन वह सोई । निसंदेह पिउ और न कोई ।।

दोहा—मेरी वाकी तुक मिलै, और कोउ वह नाहिं ।
मैं जाना वह निज वही, जो मेरै हिय माहिं ।।३२३।।

दोहा—३२२—१—मन (कां०) । २—जिय (कां०) । ३—तहां (कां०) । ४—वोह (कां०) । ५—रूप (कां०) ।

दोहा—३२३—१—गयेऊ (स०) । २—कुरंग (कां०) । ३—घुरहूरी (कां०) । ४—तो (स०) । ५—सब (स०) ।

कह ये बचन आप सों बारी । रुदन करत मां पास सिधारी ।।
मा बांभन पिउ कै सुधि आनी । कछु कछु मरम बात मैं जानी ।।
पिउ मिलाप उद्यम अब कीजै । नातर इहि आपन तन लीजै ।।
तन[1] जिउ जीउ जीउ सो पीऊ । ता पिउ बिन न रहै छिन जीऊ ।।
जीउ[2] पीउ सों क्यों होइ न्यारा । सब कहं आपुन जीउ पियारा ।।
जिउ अपने जिउ महं जिउ दीन्हां । तन सों चित्त[3] काढ़ पुनि[4] लीन्हां ।।
जिउ[5] तिहि[6] तन तनिकौ[7] न निहारै । तन[8] अब नहिं कोऊ किन जारै ।।
जो चाहो[9] इहि[10] तन महं जीऊ । तो जिउ[11] को जिउ आनहु[12] पीऊ ।।
जीउ छांड़ि[13] तन[14] कै कछु नाहीं । तन बिन जिउ बिनसै छिन माहीं ।।

दोहा—जिउ अपने पिउ सों मिला, रहु कै बिनसहु[15] देह ।
तिहिं कारन तुमसों कहौं, तुमहिं[16] देह संग[17] नेह[18] ।।३२४।।

कहि मां सों पुनि कहिस[1] उपाऊ । बैठो[2] धन पोखा वर नाऊं ।।
पुनि पांडे सहिदेउ बुलावा । पालागन, तिहि कहि बैठावा ।।*
औ यह[3] कहा कि जो पिउ पाउं । जो मांगसि सो तोहि दिवाऊं ।।
बहुत[4] बहुत पूनि[5] कीन्ह निहोरा । अधिक बीर गुन मानहुं तोरा ।।⊙
हितू जानि हौं बिनती करौं । होइ[6] अधीन सीस भुइं धरौं ।।
पिउ कै सुधि वर नाउं लिआवा । औध नगर तहं[7] पीउ बतावा ।।
तू चलि[8] अवध पंथ इहिं बारा । मन सेवक लाऊं तोहि लारा ।।
जिहिं दिन अवध आप पहुंचावसि । पुहुमिपती सौं[9] जाइ सुनावसि ।।
नल हिरान सो हाथ न आवा । सो[10] धन वरै वर यह ठहिरावा ।।

दोहा—सुदिन महूरत आज है, जो[11] कुंडन पुर जाइ ।
ताहि दमंती बर करै, इहि राखी ठहराइ ।।३२५।।

दोहा—३२४—१—बिन (कां०) । २—ता (कां०) । ३—निपट (कां०) । ४—जिय (कां०) । ५—जीयत (कां०), ज्यों (स०) । ६—न (कां०), तिन (स०) । ७—नीको (का०), तिन कौ (स०) । ८—तन ही (कां०), तिन्ह (स०) । ९—आनां (कां०) । १०—जनौं (कां०) । ११—आपै (कां०) । १२—करि सो (कां०) । १३—जाव (कां०) । १४—तकै (कां०) । १५—निकसो (कां०) । १६—जो तुम (कां०) । १७—सु (कां०) । १८ येह (कां०) ।

दोहा—३२५-१—कीन्ह (स०) । २—येही (कां०) । * 'कां०' प्रति में यह तीसरी चौपाई है । ३—पुनि (कां०) । ४—निपट (स०) । ५—अति (स०) । ○ 'कां' प्रति में उत्तर पद यो है :—'तो बिन और हितू नहिं मोरा' । ६—मैं (स०) । ७—मह (कां०) । ८—कह (स०) । ९—कह (स०) । १०—ता (कां०) । ११—सो (स०) ।

जो नल तिन[1] नरेस पहं होई। आइ रहै संदेह न कोई ।।
तुरै मरम नीकै[2] वह बूझै। जम बल जिहिं तुरंग तस सूझै ।।
ते[3] तुरंग गाढ़े करि खोजन। जे दिन मांझ चलैं सौ जोजन ।।
पौन पाव कै रथ लै आवहिं। निसंदेह[4] दिन महं पहुंचावहिं ।।
तिहिं कारन बिनवौं तो पाहां। तो उपकार मिलै मकु नाहां ।।
जो उपकारी[5] होवै बीरा। तासों कही जाइ उर पीरा ।।
तव[6] तै ही मोहिं तीर लगावा। तोरे नाउं पार मैं पावा ।।
जैसैं मोहिं लावा तै तीरा। तैसैं[7] पिउ[8] मिलाव[9] होइ[10] बीरा[11] ।।
जौलौं तन बोलै गुन मानौं। आपन हितू भ्रात कै जानौं ।।

दोहा—बिप्र लगन सी ले चला, लगन अवध कै[12] लाइ।
जिन्ह की लगन जहां लगै, पहुंच रहै तहं जाइ ।।३२६।।

चलि सहिदेउ अवध महं आवा। राजा कहं छल वचन[1] सुनावा[2] ।।
सुनि राजा सो[3] धन अवछरा। छरा विप्र छर[4] ह्वै पुनि छरा ।।
प्रथम बिकाइ रहा तिहिं हाथा। नाउं[5] दमंती कहं जगनाथा ।।
अब इहि सुनि पग धरा न धरई। ज्यौं अलि कवंल वास अरबरई ।।
बिनु देखै ससि भयो चकोरा। चित कै चख लागै तिहिं ओरा ।।
तन इहिं गाउं[6] प्रान उहिं[5] गाऊं। मन मोचै तन क्यौ पहुंचाऊं ।।
तन किहिं भांति परेवा करौं। उड़ि[6] चढि सरग टूट उत परौं ।।
उड़ि न सकत गुटिका[7] कित पाऊं। जों[8] मुख राखि सिद्ध होइ धाऊं ।।
कछु न बनाव बनै अरबरा। खिन ऊपर खिन आंगन खरा ।।

दोहा—राजा अति[9] भरमक भयौ, झूठै भरम भुलाइ।
ज्यौं जग[10] झुठै देह लगि[11], आपुहि रह्यौ[11] हिराइ[12] ।।३२७।।

दोहा—३२६-१—तिहि (कां०)। निसि कइं (म०)। ३—वे (स०)। ४—पुनि संदेह (कां०)। ५—परोपकारी (कां०)। ६—वह (कां०)। ७—तोही (स०)। ८—तिहूं (कां०)। ९—लाव (कां०) १०—मोहि (कां०)। ११—तीरा (कां०)। १२—मन (स०)।

दोहा—३२७-१—भेद (का०)। २—लपावा (कां०)। ३—वह (स०)। ४—जन छर (कां०)। ५—वहं (म०)। ६—पै (कां०)। ७—ऊंडवा (कां०)। ८—सो (कां०)। ९—सुनि (स०)। १०—सब (स०)। ११—सौं (का०)। १२—दियो (कां०)।

पुनि वाहुक तेहि वेगि बुलावा । आयसु भा ततखन वहं[1] आवा ॥
तैं जो कहा हौं हय पहिचानौं । सालिहोत्तर विद्या निज जानौं ।
औ औरौं[2] जस कुछ गुन भरौं । समौ परै[3] परगट तब[4] करौं ॥
सो वह समौं आज नियरावा[5] । आज[6] चढ़े कुंडनपुर जावा ॥
भीमसेन राजा कै बारी । नाउं दमंती जग उजियारी ॥
तैंहूं सुना होइ इहि[7] नाऊं । प्रगट नाउं तिहि[8] ठांवहिं[9] ठाऊं ॥
सो धन वर चाहै अब[10] वरा । ताकर आज[11] महूरत धरा ॥
आज[12] जो उत आपा पहुंचावैं । सोई ससि वदनी सो[13] पावैं ॥
कर तोसों जो होसि उपाऊ । इहि नन्नि तुरै वोन लै आऊ ॥

दोहा—आज तहां पहुंचैं वनै, औं न होइ पुनि सांझ ।
तेही[14] आनहु[15] जे चलैं, सो जोजन दिन मांझ ॥३२८॥

सुनि सो वात वाहुक हकवका । मन भा[1] नगन्न तुरै तन थका ॥
मन खिन नभ[2] खिन जाइ पतारा । खिन महं[3] भंवै[4] ज्यौं चाक कुम्हारा ॥
तन खिन[5] तपन[6] ताप उपजावैं । खिन तैं सिथिल सीत बहु[7] आवैं ॥
जब[8] थक[9] रहा सोच. जिउ[10] आवा । मै अवला कहं बहुत दुखावा[11] ॥
इन जाना[12] उन मोसों तोरी । प्रीत चीर ज्यौं[13] चीर पिछोरी[14] ॥
सुरत[15] सूत्र[16] सो मोसों तोरा । मोसों तोर और सो जोरा ॥
पुनि समुझा कछू[17] समझ मो नाही । मैं असमझ समझौ मन माहीं ॥
तिहिं कवहूं अस[18] समझ न होई । मो मिलाप कारन इह[19] कोई ॥
यो[20] चाहै मो ढिग[21] मकु आवैं । तिहिं कारन कारन उपजावैं ॥

दोहा—वह मोरी सुधि में सदा, जिउ वाको मो माहिं ।
मैंहि भूल अतर गिना, ताकै[22] अंतर नाहिं ॥३२९॥

दोहा—३२८-१—जब (कां०) । २—कहत (स०) । ३—होइ (कां०) । ४—ते (स०) । ५—इहि आवा (कां०) । ६—कालिह (कां०) । ७—पुनि (कां०) । ८—जिहि (कां०) । ९—ठां तूंही (कां०) । १०—जन (स०) । ११—काल (स०) । १२—कालिहि (स०) । १३—तिय (स०) । १४—तेह ये (कां०) । १५—जे छिनही (कां०) ।

दोहा—३२९-१—जो (कां०) । २—भुंइ (कां०) । ३—भा (कां०) । ४—भुंइ (स०), बाजनु (कां०) । ५—कै (स०) । ६—तीन (कां०) । ७—मैं (कां०) । ८—जग (स०), जकत (कां०) । ९—कंकरै (का०) । १०—मे (कां०) । ११—दिखावा (स०), संतावा (कां०) । १२—बूझा (स०) । १३—तन (कां०) । १४—विछोरी (स०), वछोरी (कां०) । १५—सुर (कां०) । १६—सो (स०) । १७—न (कां०) । १८—यह (स०) । १९—है (स०) । २०—मोहि (कां०) । २१—तन (कां०) । २२—वहं कै (स०) ।

ततखिन भ्रम निवारि पुनि वोला । रसना[1] वंध[2] वँधा[3] सो खोला ।।
महाराज ते हय[4] चुनि आनीं । जे सौ जोजन चलतै जानी ।।†
जिहि तुरंग जेतक वल होई । मो सों भेद छिपा नहिं कोई ।।
ततखिन दिस्टि परत पहिचानीं । गुन औगुन निरखत ही जानीं ।*
उठि पुनि सकल[5] तुरंग जा[6] हेरै । कर सवकै मुख ऊपर फेरै ।।⊙
द्वै तुरंग ता महं चुनि[7] आए । खोरि[8] आनि राजहिं दिखराए ।।
राजा तुरै देखि तन हीनै । कहा कहाँ ये हय तैं वीनै ।।
वैस वड़ी काया अति छोटै । औ वलहीन नाहिं पुनि मोटै ।।
ये कव चलै चार सौ कोसा । इन पर[9] भूल न करहु भरोसा ।।

दोहा—आयसु भा[10] दोइ चपल हय, ताजे तरुन सतेज ।
और आन रथ सों[11] जुरै[12], चलै[13] करत महंमेज ।।३३०।।

चलत नेक[1] मग पग डगमगैं । अकड़[2] अकड़[3] भुइं लागन लगैं ।।
चंचल निपट अचल होइ गिरे । नेक[4] सास पर जानहुं मरे ।।
मुंह के वल पुनि भुइं पर आए । गिरे सो वहुरि उठै न उठाए ।।†
तव वाहुक राजा सों कहा । महाराज मैं तव ही लहा ।।
ये तुरंग सुकुमार[5] खिलौना । चंचल राजकुमार रिझौना ।।
फांद कूद कौतुक दिखरावहिं । लांवी दौर कहा पहुंचावहिं ।।
तिनहिं[6] तुरै[7] महं[8] औरैं कला । जे सौ सौ जोजन कैं चला ।।
वहु[9] गुन चंचलता पर नाही । और रोम परख तिन[10] माही ।।
आयसु भा ते तुरे मंगाए । वाहुक परख संग जे लाए ।।

दोहा—पुनि राजा तासों कहा, कहु[11] सो मरम मो पाहिं ।
जिहि गुन सौ जोजन चलै, कौन[12] कला इन माहिं ।।३३१।।

दोहा—३३०—१—भूप (कां०) । २—चितवंध (कां०) । ३—वंध (स०) । ४—ही (स०) । † 'कां०' में उत्तर पद यों है :—'हय गति रूम रूम पहिचानू ।' *'कां' में उत्तर पद इस प्रकार है:—'जे जोजन सौ चलै सु जानू' । ५—जे (कां०) । ६—सव (कां०) । ⊙'कां०' में उत्तर पद ऐसा है :—'दुरंग सो सुरंग सवन परि फेरे ।' ७—जो (कां०) । ८—छोर (कां०) । ९—को (कां०) । १०—होइ (कां०) । ११—जोड़ि (कां०) । १२—कै (कां०) । १३—चलवे (कां०) ।

दोहा—३३१—१—वीसक (कां०) । २—अकठ (स०), ऊपट (कां०) । ३—अकठ (स०), उपट (कां०) । ४—निकस (कां०) । † 'कां०' प्रति में यह दूसरी चौपाई है । ५—सुखिलार (कां०) । ६—तिन (कां०, स०) । ७—तुरइन (कां०) । ८—मैं (कां०) । ९—इहि (कां०) । १०—ता (का०) । ११—कछु (स०) । १२—सुकौण (कां०) ।

तिहिं उत्तर बाहुक पुनि बोला । उर[1] तें तुरै ग्रंथ निज खोला ॥
महाराज पूछा तो बताऊं । अब[2] सो परीछा बरनि सुनाऊं ॥
जा तन पंदरह भौंरी जानहु । सौ जोजन चलता तिहिं मानहु ॥
आठ चहूं[3] पाइन कै खूंटा । चार हिये दोइ दोइ दुहुं घूंटा ॥
दुइ दुहुं स्रवन एक लिलारा । इनहिं कला मैं लखे तुखारा ॥
राजा अंग[4] अंग उर धारै । औ उठि दोनों तुरै निहारै ॥
ठौर ठौर भौंरी ते पाईं । जे जे बाहुक बरनि सुनाईं ॥
जोर जो आनि कै[6] तेइ तुखारा । बाहक बाहुक कै बैठारा ॥
छोरि हांकि हय कीन्ह जो हला । रथ जनु घन गरजत अस चला ॥

दोहा—जो ते[7] हय हांकै अरुन, रवि कै रथ सों लाइ ।
आठ पहर को रैन दिन, आठ घरी होइ जाइ ॥२३२॥

नल सेवा जो सारथी अहा । निमु[1] पहुचाइ आइ उत रहा ॥
बारसुतो तिहि नाउं बताऊं । और एक वह जीवन नाऊं ॥
तेऊ संग हुते पुनि आए । देख रूप दोऊ बनराए ॥
बारसुतो जीवन सों कहा । कौन पुरुख इह जाइ न लहा ॥
कै सो सालोत्तर जिन कहा । कै मातलि इंदर[2] पहं[3] अहा ॥
कै उजैन राजा नल होई । कै सो[4] इंद्र पंचवां[5] नहिं[6] कोई ॥
ह्वै सो[7] सब नल कै उनहारा । पै वह गौर बरन इह कारा ॥
बोली बतकहाव सब सोई । हँसन चलन महं भेद न कोई ॥
ज्यों नल मधुर वचन अस[8] बोला । त्यों इह बोलै बोल[9] अमोला ॥

दोहा—तिहिं विधिना कै अगम[10] गति, मकु इह कारन कोइ ।
तिहिं कारन पलटा बरन, जो नल होइ तो होइ ॥२३३॥

दोहा—२३२—१—अर्थ (कां०) । २—सुनि (स०) । ३—छौन (स०) । ४—खौंता (स०) । ५—रंग (स०) । ६—तिन (कां०) । ७—लै (कां०) ।

दोहा—२३३—१—सत (स०) । २—जो इंद्र (स०, कां) । ३—इहि (कां०) । ४—है (कां०) । ५—निज (कां०) । ६—बानहि (कां०) । ७—तो (स०) । ८—रस (स०) । ९—बात (स०) । १०—बौहुत (कां०) ।

वाहुक हय हांके गति लिए । औ तन महं[१] तिन्ह कै मन दिए ॥
जव असाहिं थाम चुमकारै । दै मुख जल छींटा[२] पुनि[३] झारै ॥
सावधान कै वहुरि[४] चलावै । उपज[५] आरकस वढ़न न पावै ॥
रीझ सवै[६] अस्तुति महं आए । वाहुक कै गुन वहुत रिझाए ॥
रथ हाँकन अरु हय पहिचानन । यह दोनौं करतार तोहि गुन ॥*
रथ पुनि जात हुता[७] जस[८] वाना । कस कमान करैं कर ताना ॥
भूप जो रीझ भयो रस मसा । ततखिन कांध दुपट्टा खिसा ॥
तिहीं[९] काल राजा पुनि कहा । वाहुक विरंव[१०] दुपट्टा रहा ॥
वाहुक कहा रहा जनु[११] नहा[१२] । अव तो सात[१३] कोस पर रहा ॥

दोहा—महाराज छिन कै कहत, रहै[१४] देखौं[१५] मग[१६] जाइ ।
तुम वोले दुपट्टा रहा, वाहुक रथ विरमाइ ॥३३४॥

चलि आगें जव हय[१] असानें । वाहुक वाग लिये सुसतानें ॥
तहां हुतां इक विरछ वहेरा । कलिजुग कर निसि[२] वास वसेरा ॥
देख[३] विरछ[४] राजा रितु[५] वोला । वाहुक भाग कवंल मुख खोला ॥*
वाहुक गुन[६] आनी तोहि माहीं । पै हौं हुं निरगुन पुनि नाहीं ॥
मैं हूं यह[७] अद्‌भुत गुन जानौं । सुन तोसों वह[८] मरम वखानौं ॥
विरछ वहेरा कर इक लेखा । मोहि नीकै आवै कर पेखा[९] ॥
तिहि लेखें जे फर जे पाता । सव जानहुं तरु[१०] कै निज आता ॥
जे फर अरधफरे[११] जे खरे । और ते जानौं जे भुइं परे ॥
वाहुक मन लागी इह वाता । राजा कहु तरु[१२] कै फर पाता ॥ †

दोहा—राजा लेखा समुझि मन[१३], कै निज अलच्छ[१४] विचार ।
कहै पात जे विरछ पर, फर जे भुइं जे डार ॥३३५॥

दोहा—३३४—१—मन (स०), मैं (कां०) । २—छाटा (कां०), छांटा (स०), ३—तन (कां०) । ४—फेरि (कां०) । ५—असह (स०) । ६—वहुत (स०) । * 'कां०' में उत्तर पद इस प्रकार है:—'छिन छिन लगे रहे तिहि कारन' । ७—तहां (कां०) । ८—जनु (का०) । ९—तिनहिं (स०) । १०—पीत (कां०) । ११—जिन (कां०) । १२—अहा (कां०) । १३—सात (स०) । १४—रथ (स०) । १५—दिनकै (स०) । १६—मकु (स०) ।

दोहा ३३५—१—ही (स०) । २—वसि (कां०) । ३—ताहि (कां०) । ४—निरख (कां०) । ५—तव (कां०) । * 'कां०' मे उत्तर पद इस प्रकार है—'जो गुन हुता ग्रंथ सो खोला' ६—जद्यपि गुन (कां०) । ७—येक (कां०) । ८—तिन (स०) । ९—देखा (स०) । १०—तरुवर (कां०) । ११—और फरे (कां०) । १२—इन्ह (स०) ।† 'कां' में उत्तर पद इस प्रकार है—'कहिस कहो अव तर फर राता' । १३—पुनि (कां०) । १४—अलच (कां०, स०) ।

देखि सो रथ जानसि पिउ आवा। पुनि भरमै पिउ[१] अछत हिरावा ॥ †
पिउ रथ मैं तिहि दिस्टि न आवै। जो पिउ ताहि और ठहिरावै ॥
पिउ सो वहै रथ चालनहारा। पै तिहि[२] की दुबिधा भ्रम डारा ॥
देखै[३] पै[४] परतीत न आनै। रथ हांका औरे कै[५] जानै ॥
इह प्रीतम को बरन निहारै। वह बिनु बरन इहै भ्रम मारै ॥
सोच भयो भ्रम बढ़यो बिसेखा। देखै[६] ही[७] भ्रम करै अदेखा[८] ॥
खिन पुनि[९] कहै[१०] कंत रथ माहीं। रथ हांकै सो और कोउ नाही ॥
रथ में पवन गवन सो पीऊ। वहै पीउ इहि रथ मंह जीऊ ॥ ⊙
यहै भाँति जक ठक होइ रही। जब[१२] लगि[१३] भरम[१४] पिउ होइ न सही ॥

दोहा—जौ लौं निज समझै नही, तौलौ धोख न जाइ।
पिउ रथ मैं दीसै प्रगट, बिन चीन्हें बिललाइ ॥३४०॥

सो रथ राजद्वार जब[१] आवा। ततखिन[२] सोध देसपति पावा ॥
सुनि रितुपरन आव[३] उठि चला। भीमसैन[४] आगै[५] जा[६] मिला ॥
भवनसार[७] महँ दीन्ह उतारा। जगमगाइ मंदिर उजियारा ॥
बैठ तहाँ रितुपरन उदासी। बाढ़ा सोच भयो[९] सुख नासी ॥
सो लीला कछु दिस्टि न आई। बर बरनी कै भनक[१०] न पाई ॥
सुनी न कछु सहनाइ[११] निसाना। और जो होइ सो होत न जाना ॥
सकुचा निपट लाज महं आवा। मन कर सोच जाइ मुख पावा ॥
ततखन भीम मरम इह पावा। सुना कि आज अवधि सों आवा ॥
भरम बढ़ा[१२] चिन्ता मन दीन्हां। कौने काज कस्ट अस[१३] कीन्हां ॥

दोहा—बूझा कहो नरेस निज[१४], इह कारन धौ कौन।
जिहि कारन अस कस्ट कै, कीन्ह पवन मन गौन ॥३४१॥

दो० ३४०—†'कां०' में पूर्वपद इस प्रकार है:—'मगन भई देखा रथ आवा'। १—गम (स०)। २—याकै (का०)। ३—दीखत (स०)। ४—औ (स०)। ५—कों (स०)। ६—,७—देखा (कां)। ८—अनदेखा (स० कां०)। ९,१०—तोखैं (स०)। ११—पुनि (कां)। ⊙'कां' मे उत्तर पद यों है:—'होइ न वही पीये रथ जीऊ।' १२,१३,१४—जब तक मैं (कां०)। १५—दोख (स०)।

दो० ३४१—१—अब (कां०)। २—ततषिन न (का)। ३—प्रेम (कां०)। ४,५,६—आगैं ह्वै आदर कै (कां०)। ७—पहन (कां)। ८—ले (कां०)। ९—न भयो (का)। १०—सुत्र (कां), भनम (स०)। ११—पौनार (स०)। १२—रह्या (कां०)। १३—इन्ह (स०)। १४—तुम (कां०)।

बोला सकुंचि लाज सी कीएं। मन कै[1] वृत्ति बदन पर लिएं ॥
तुम मिलाप कारन मन चला। चाव[2] सों[3] लै आवा कै[4] हला ॥
दरसन आस प्रेर[5] लै आई। मुख पानिप सों प्यास बुझाई ॥
तन कै तपत मिलत घटि[6] गई। मन गुन गुनन लगन बढ़[7] गई ॥
सो[8] धन जो तुम मिलि मिल जाई। ता सुख उपम[9] न जाइ गिनाई ॥
कस्ट कीन्ह तब इह सुख पावा। कस्ट बिना कछु[10] हाथ न आवा ॥
औ पुनि कस्ट तबहीं लग लागै। जब लग मोई प्रीति न जागै ॥
प्रेम[11] पंथ महं कस्ट न कोई। जो निज प्रेम उमंग जिय होई ॥
जिउ इहि पंथ बहुत सुख पावै। मन पिउ पहं[12] दुख काहि[13] दुखावै[14] ॥

दोहा—प्रेम पंथ महं पग धरत[15], दुख सुख अंतर जाइ।
दुख सुख माननहार जिउ[16], सो पिउ माहि समाइ ॥२४२॥

भीमसेन बोला हित किएं। औ[1] पुनि बहुत दीनता लिएं ॥
कृपा कीन्ह हौं भयो सनाथा। परसे पाइ ऊंच भा माथा ॥
धन मो ठौर धन भाग हमारे। रौरै[2] आइ[3] जहाँ पग धारे ॥
मो लगि बहुत कस्ट तुम पावा। सौ जोजन आवा[4] इक[5] बावा ॥
कहि न जाइ रावरि प्रभुताई। दुख पै मोहि भई सुखदाई ॥
पै इह आदि[6] बड़न कै रीती। जासों करहिं मया हित प्रीती ॥
मन बच करम अपन ठहरावहिं। ता सुख लागि आप दुख पावहिं ॥
कहि ये बचन प्रीति उपजाई। मन मिलाइ तिन[7] सकुच मिटाई ॥
ततखिन उठि अपने घर आवा। मिहमानी कर साज बनावा ॥

दोहा—राज साज जस चाहिए[8], बहु[9] आदर[10] सनमान।
पठै दीन्ह अति प्रीति सों, सँग नीकै[11] परधान ॥ २४३ ॥

दो०—२४२—१—व्रत्ति (कां०), बरत (स०)। २,३—सो तन (कां०)। ४—कर (स०)। ५—प्रबल (कां०)। ६—पिन (कां)। ७—बिधि (कां०)। ८—सो छिन (स०)। ९—भुई (स०)। १०—सुख (स०)। ११—प्रीति (कां०)। १२—पंथ (कां०)। १३—गाढ़ (स०)। १४—सुनावै (कां०)। १५—धरै (कां०)। १६—मन (कां०)।

दोहा—२४३—१—अति (कां०)। २—रावर (कां०)। ३—आनि (कां०)। ४,५—मगहित चित (कां०)। ६—आव (कां०)। ७—तिहिं (कां०)। ८—कुछ जिहिं (कां०)। ९,१०—सवन और (कां०)। ११—देइ (कां०)।

रानी सो भोजन धर थारा। प्रथम लीन तिहिं वास वफारा[1] ॥
वहै वास परिमल निज पेखी। जैसी पिउ भोजन महं देखी ॥
पुनि हित कै भोजन सो खावा। रस मिठास सोई निज[2] पावा ॥
निहचै भा प्रतीत जिय आई। ग्यान नेत्र पिउ दीन दिखाई ॥
अब वाहुक निज प्रीतम जाना। सो सारथी[3] रथी कै माना ॥
पुनि जो पुत्र पुत्री है दोऊ। पठै दीन्ह वाहुक पहं सोऊ ॥
तिनहिं देखि वाहुक उठि धावा[4]। रोइ[5] दुहुन[6] कहं[7] कंठ लगावा ॥
औधपती यह[8] कौतुक ताके। वूझा कहु[9] वाहुक सुत[10] काके ॥
तैं पुनि नैन आंसु क्यों आने। कौन हितू कै सुत पहिचाने ॥

दोहा—वाहुक वोला छत्रपति, इनहिं ऊठ[11] उनहार।
द्वै[12] वालक मोरे हुते, रोऊं तिनहिं संभार ॥३५२॥

रानी जब परचा सब देखा। भई प्रतीत[1] विसेख विसेखा ॥
जाइ विनौ[2] माता[3] सो कीन्हां। माता पिउ आवा मैं चीन्हां ॥
ताकर पता सबै मैं पावा। लै परचा संदेह मिटावा ॥
अब जो तू[4] वोलसि हौं[5] माता। तौ पूछौ[6] दुख सुख के बाता ॥
माता ततखिन जन दौरावा। जो वाहुक कहं वोल लै आवा ॥
धन है चंद उई[7] इहिं[8] वारा[9]। चीर कुचीर राहु रग कारा ॥
अंतर मेटि सौंह भइ खरी। रोवा पुरुख दिस्टि जब परी ॥
पुनि नल महं इह हुता सुभाऊ। आंखिन आंसु जो होंहि अवाऊ[10] ॥
आंखिन[11] महं दीसै रकतारे। पुनि[12] सो सेत जब[13] होंहि[14] ढरारे[15] ॥

दोहा—यहौ[16] पता पिउ कर मिला, सांसा[17] रहा न कोइ।
कंत रुदन[18] गति[19] देखि कै, धन पुनि[20] दीन्ही रोइ ॥३५३॥

दोहा—३५२—निहरा (कां०), फफारा (स०)। २—जिन (का०)। ३—स्वारथी (कां०), स०)। ४—आवा (कां०)। ५,६,७—रोइ रोइ गहि (कां०)। ८—ते (कां०)। ९—सुत (स०)। १०—सिस (कां०)। ११—औठ (कां०), ओठं (स०)। १२—दो (का०), दोई (स०)।

दोहा ३५३—१—परीत (स०)। २—सो विनौ (स०)। ३—माइ (स०)। ४—त (का०), अति (स०)। ५—हो (कां०), हौ (स०)। ६—वूझौं (स०)। ७—उवै (स०)। ८—इन (कां०), पुनि (स०)। ९—वारी (कां), तारा (स०)। १०—औ आऊ (कां०), उवाऊ (स०)। ११—नैनो (कां०)। १२— तब (कां०)। १३,१४—हौंहिं (कां०)। १५—धरारे (स०)। १६—यहूं (कां०)। १७—संसार (कां०)। १८—रोन (स०)। १९—दुप (कां०)। २०—दीन्यों (स०), दीन्हों (कां)।

कहसि कंत यों[1] करै न कोई। ज्यों तैं हौं बन माहिं बिछोई ॥
संग मिलै अंतर कै डारा। मिलै मांझ होइ गयसि[2] निरारा ॥
होतसि[3] दूर न होत परेखा। गरें मिलै बिछुरत का लेखा ॥
इहै[4] मिलन[5] लै सत[6] हौं यारी। जुरी[7] मिली तैं कीन्ह नियारी[8] ॥
कपटी मुना मिलै महं न्यारा। सो प्रीतम तू नैन निहारा ॥
किहि[9] हित सों भुइं सैन बनाई। गरै लाइ सुख नीद सुवाई ॥
सुख सुवाइ पुनि कीन्ह बिछोऊ। ऐसी करै मिलै महं कोऊ ॥
जो जानौं तू कपट सोवावसि। मोहि सुवाइ आपा[10] बिछुरावसि ॥
तौ हौं किहि कारन तब सोऊं। तो सों रतन सोइ नहिं[11] खोऊं ॥

दोहा—कंठ लगाइ सुवाइ संग, गांठ धरी मन माहि।
सो बीती अजहूं मिली, गांठ छोरिहौ नाहि ॥३५४॥

सुन धन परालबध संजोगू। कबहुं[1] न[2] मिटै[3] बनै सो[4] भोगू[5] ॥
कीन्ह सो परालबध मत्र कीन्हां। कारन कौं[6] कलिजुग बिच[7] दीन्हां ॥
तिन कलिजुग इह कीन्ह बिछोऊ। अब बिन फिरे हितू भा[8] सोऊ ॥
औ तन हित बिछोह तैं माना। नातर[9] हौं तो माहिं[10] समाना ॥
छिन तोसों हौं भयौ न न्यारा। मैं आपा तोरै बट डारा ॥
मोहि तोहि नेकु न अंतर भयऊ। भूल भरम तोरे मन गयऊ ॥
गांठ जो कहसि सो मो महं नाही। तैहि[11] गांठ डारी मन माही ॥
डारि गाठ मन मोसों तोरी। मोसों तोर देह सों जोरी ॥
तिहिं[12] सुख लगि तैं मो[13] बिसरावा। बर बुलाइ बरनीत हिरावा ॥ *

दोहा—तन तेरो पति[14] है सुखी[15], हौं तेरो जिउ पीउ।
ता पिउ सों तन[16] हेतु[17] लगि, तन ज्यों तोर न[18] जीउ ॥३५५॥

दोहा ३५४—१—पुनि (कां०)। २—किनस (कां०)। ३—हुते सु (कां०)। ४—इंही (कां०), ग्रांहि (स०)। ५—मलों (कां०), मिलों (स०), ६—सुठ (कां०)। ७—जरी (कां०), जुरै (स०)। ८—न्यारी (कां०), नियारे (रा०)। ९—गहि (कां०), कीन्हि (स०)। १०—आपा (स०), अपा (कां०)। ११—सैन न (कां०), सै (स०)।

दोहा ३५५—१,२,३—कै हौं न मिटै (स०), मिटै न गये (कां०)। ४,५—संजोगू (स०)। ६—कीन्ह (का०)। ७—निज (कां०)। ८—भया (कां०), भयो (स०)। ९—अंतर (कां०)। १०—मांझ (स०)। ११—तिहि (कां०), तिन्हहिं (स०)। १२—तिन (स०)। १३—मोहि (स०), योह (कां०)। *स० में उत्तर पद यों है:—'आतम जिउकर मरम न पावा।' १४—पट (कां०)। १५—सपी (कां००)। १६—विन (कां०)। १७—हित (कां०)। १८—तो (कां०)।

प्रीतम मैं तोसों नहिं तोरी । सब सों तोर मोर भइ तोरी ॥
हौं[1] तन[2] सुख मन तनिक[3] न आनौं । तन मन जीउ तोहिं[4] कैं[5] जानौं ॥
तन की सुख ताकै मन आवै । जो आपन[6] तन जीउ कहावै ॥
तन मन धन परान सब तोरा । हौं कहु को जो कहौं कछु[7] मोरा[8] ॥⊙
तन अपना[9] तें[10] जीउ मिलावा । तो[11] मिलाप कारन टहिरावा ॥
जो वह होइ पवन ज्यों धावै । हय रथ हांकि अवध[12] सो[13] आवै ॥
दिन महं सौ जोजन कर चला । सो आवै[14] जानै इहि[15] कला ॥
जो पुनि तै ऐसी जिउ राखी । सूर चांद तुम[16] बोलहु[17] साखी ॥
तन संगी[18] तेऊ भ्रम खोलो[19] । प्रथमी[20] पौन अगिन जल बोलो[21] ॥

दोहा—ततखिन पौन अगिन वरुन, प्रगट भए सै देह ॥
धन सत[22] पर साखी दई, मिटा[23] कंत संदेह ॥३५६॥

तिन देवन्ह साखी जब[1] दई । नल पर वहुत तुष्टि[2] तब भई ॥
पुनि हँसि पुरुख नारि सों बोला । करु सिंगार सज चंदन चोला ॥
कै मंजन ससि कीन्ह नहानू[3] । उतरा मैल राहु गा[4] मानू ॥
पहिरे[5] चीर सूर छिपि[6] गयऊ । पून्यो[7] चंद[8] प्रकासित[9] भयऊ ॥
चिहुर[10] सवांरि[11] मांग मधि रची । कंचन लीक कसौटी कसी ॥
भर सेंदुर मुक्ता वैसारे । ससि पहं चलै पांति गहि तारे ॥
लाग जो तिलक कनक नग जरा । रूप आन माथै मनु[12] घरा ॥
भौह धनुक विच[13] अंजन रेखा । वरुनी बान सौह को देखा ॥
पहिरा नासिक फूल अमोलू । मनु[14] सुहाग ध्रुव[15] अचल अडोलू ॥

दोहा—मुख तंबोल कुंडल स्रवन, गिय[16] मुक्ताहल माल ।
मिलै[17] चीर[18] कुच[19] कंचुकी, बाहैं[20] कँगन बिसाल ॥३५७॥

दोहा ३५६—हुत (कां०) । २—न (कां०) । ३—नेक (कां०) । ४—पीउ (स०) । ५—कहं (स०) । ६—आपे (कां०) । ⊙'कां०' मे पूर्व पद इस प्रकार है:—'तू तन जीव तन सो यह तेरा ।' ७—तन (कां०) । ८—मेरा (कां०) । ६—अपनाइ (स०) । १०—तू (कां०) । ११—तै (स०) । १२—अरन्न (कां०) । १३—ह्वै (कां०) । १४—इन (स०) । १५—है (कां०) । १६,१७—वोलै निज (कां०) । १८—संकी (स०) । १६—खोलैहि (कां०) । २०—पृथी (कां०) । २१—वोलै (कां०) । २२—सव (कां०) । २३—मिटै (स०) ।

दोहा ३५७—१—तव (कां०) । २—पुष्ट (स०) । ३—अन्हानू (कां०) । ४—कर (कां०) । ५—पहिरो (स०) । ६—पछि (कां०) । ७—पिउ विन (स०) । ८—वदन (कां०) । ६—प्रकाशिक (कां०) । १०—चोहर (कां०), छर (स०) । ११—सुधार (स०) । १२—जनु (कां०) । १३—पनच (कां०) । १४—जिन (कां०) । १५—दहु (स०) । १६—गी (कां०), किए (स०) । १७—मिली (कां०) । १८,१६—चित्र (स०) । २०—वाहौं (कां०), वाहूं (स०) ।

नल वह सरप सुरत पुनि कीन्हा । जिहि[1] बिख सान कीन्हा अनचीन्हा ।।
ततखिन सरप प्रगट होइ आवा । आइ डाँक पर डाँक लगावा ।।
बिख आपन सब चूस निकासा । निकस राहुसों सूर प्रकासा ।।
हुता रूप वह[2] बिना बनावा । बिखैं सनै[3] औरे दिखरावा ।।
जैसे सूरज घन महं आवै । है[4] राता[5] पै पीत[6] दिखावै ।।
बिख सों निकस अलग जब भयऊ । निज देखा अंतर मिट गयऊ ।।
पुनि इह कहा कंचुली कहां । जे तोहि मैं सौंपी द्वै[7] तहां ।।
नल वह कंचुलि काढ़ि दिखाई । लै इह ताकै अंग उढ़ाई[8] ।।
ओढ़त[9] अंग आदि जस[10] बना । तैसैं बना कोटि छबि सना ।।

दोहा—अंग भंग[11] जो होइ[12] रहा[13], भयो सो अपने रंग ।
जो देखै[14] सो[15] नल कहै, अनित[16] भरम भा भंग ।।३५८।।

बन बनाइ बैठे मिल दोऊ । भयो सेज[1] सुख गयो बिछोऊ ।।
चकई चकवा निसि[2] जो[3] गए[4] । दिनकर किरन प्रकासक भए[5] ।।
बिरह अगिन दोउ ओर सिरानी । परा सेज संगम स्रम पानी ।।
मिटी दुहुन कर[6] बिरह खुमारी । आलिंगन बिध[7] मार उतारी ।।
धन चातक कहं भा पिउ स्वाती । पिउ चकोर कहं धन ससि राती ।।
धन सो मीन[8] पावा पिउ पानी । पिउ अलि धन अंबुज अरवानी ।।
धन कुमुदिनि[9] प्रीतम ससि पावा । पिउ पतंग धन दीप लुभावा ।।
धन महि[10] की[11] पिउ मेह[12] सुभागू । पिउ सारंग[13] कहं धन भइ रागू ।।
धन सीपी पावा[14] पिउ[15] स्वाती । पीउ भूख भोजन धन[16] राती ।।

दोहा—धन सीता पिउ राम मनु[17], बिछुर भयो संजोग ।
दोऊ आनंदित मगन[18], रावन हना[19] वियोग ।।३५९।।

दोहा—३५८—१—जिन (कां०), जन (स०) । २—अहु (कां०) । ३—येसैं (कां०) । ४—सुर (कां०) । ५—उरन्न (कां०) । ६—स्याम (कां०) । ७—दोई (कां०), दोउ (स०) । ८—डढाई (कां०, स०) । ९—ऊधत (कां०) । १०—जिस (का०), जब (स०) । ११—अंग (स०) । १२—आदिन (का०) । १३—अहा (का०) । १४—दे (का०) । १५—जो (स०) । १६—अनल (का०), अनिल (स०) ।

दोहा—३५९—१—सकल (स०) । २—कीनस (कां०) । ३, ४—आई (कां०) । ५—भाई (कां०) । ६—की (का०) । ७—मद (स०) । ८—तैंस (कां) । ९—कुंदन (का०), कोमदन (स०) । १०—मह (स०), मोहक (का०) । ११—है (का०), कौन (स०) । १२—यही (का०) । १३—को रंग (कां०) । १४—भा (कां०) । १५—प्रीतम (कां०) । १६—दिन (कां०) । १७—जन (कां०) । १८—भये (कां०) । १९—हान (कां०) ।

पुनि रितुपरन मरम इह पावा। तिन्हहिं[१] काल नल पहं उठि आवा ॥
बोला बहुत चूक भइ मोसों[२]। ओछी[३] टहल गही[४] मैं तोसों[५] ॥
मैं तोरा तब भेद न जाना। अब लखि मरम बहुत पछिताना ॥
औसर गवा सो हाथ न आवा। अब काहै लागै पछितावा ॥
तू राजा मोरे घर माहीं। मैं अजान तोहि जाना नाहीं ॥
मैं तोहि सेवग कै[६] ठहिरावा। तो[७] सेवा महं मन[८] नहिं लावा ॥
औ[९] पुनि मैं अनचीन्ह का जानू। तो[१०] बिन तोहि कैसे पहिचानू ॥
जब लगि तू आपा[११] न लखावसि। निज सरूप आपन न बतावसि ॥
तब[१२] लगि तोहि कोऊ का जानै। अबरन कहं कैसै पहिचानै ॥

दोहा—बरन भेख तोहि कछु नहीं, अबरन अलख अरूप।
कैसै जानौं क्यों लखौं, तो[१३] बिन तो[१४] कहं भूप ॥३६०॥

नल पुनि बिनी कीन्ह कर जोरै। अस्तुति जोग जीभ कहं मोरै ॥
बहुतै गुन मोसों तुम कीन्हा। मंझधार डूबत गहि लीन्हा ॥
बहै जात गह[१] तीर लगावा। तुम्हरे नाव पार मैं पावा ॥
जिन्ह दिन इस्ट न मित्र न भाई। तिन्ह दिन प्रभु तुम्ह भए सहाई ॥
कै मानुस निरमा[२] मोहि पाती। पोखन भरन कीन्ह बहु भांती ॥*
जो मैं गुन तुम्हरो बिसराऊं। किरतघनी कलजुगी[३] कहाऊं ॥
किरतघनी मोसों[४] नहिं[५] दूजा। या कलमख[६] सम औरन पूजा[७] ॥
किरतघनी पापिन्ह[८] कर राजा। किरतघनी अपराधहिं[९] छाजा ॥
किरतघनी कहं ठौर न कोई। आपद अमांन[१०] दुहु जग होई।

दोहा—किरतघनी अपराध सों, जग जेते[११] अपराध।
तुला घाल कै[१२] तोलियै, होंहि न आधौं आध ॥३६१॥

दोहा—३६०—तिहि (कां०)। २—मोरी (का०)। ३—बोली (कां०)। ४—करी (कां०)। ५—तोरी (का०)। ६—लै (स०)। ७—तोहि (कां०)। ८—मनव (का०)। ९—हूं (कां०)। १०—तोहि (स०)। ११—आप (कां०)। १२—तौ (कां०)। १३—तोह (कां०)। १४—तोहि (कां०)।

दोहा—३६१—१—लै (का०)। २—मरवा (स०), निरवा (कां०)। *'कां०' मे प्रथम पद पीछे आता है। ३—कल्प कहे (कां०)। ४—अस अघै (कां०)। ५—न (कां०)। ६—कलभेष (कां०), कलबिप (स०)। ७—दूजा (स०)। ८—या पैंहि (का०)। ९—अपराधह न (स०)। १० अपान (का०), अमां (स०)। ११—जीते (स०)। १२—ज्यों (स०)।

नल संतपत[1] बहुत जब जाना । तब[2] रितुपरन[3] बचन मुख आना ।।
बोला बहुत दीनता[4] लिए । सेवक रीति बिनौ अस किए ।।
कृपा देखि हौं देहु दिढ़ाई । तुरैं मरम मोहि देउ बताई ।।
नल ततखिन सो मरम लखावा । अति हित सों सब भेद बतावा ।।
जैसैं इंद्र ताहि सिखरावा । तैसैं तिन[5] निज ताहि[6] बतावा ।।
पुनि जो[7] कहसि मो आपन जानहु । हितकारी सेवक पहिचानहु[8] ।।
जौलौं प्रान रहैं घट माही । गुन तुम्हार छिन बिसरी नाहीं ।।
नल कै हित रितुपरन रिझावा । मगन भयौ आनंद महं आवा ।।
तिन्ह हूं नलसों हेत बढ़ावा । तिहिं हित केतिक दिन ठहरावा ।।

दोहा—मगन हेत खेलत रहा, जौलौं[9] रहा[10] नरेस ।
पुनि रस राखि बिदा भयो, गयो[11] आपने[12] देस ।।३६२।।

नल पुनि आपन देस संभारा[1] । जीतनहार भयो जो हारा ।।
उमहा[2] देस चलै कहं चहा । भीमसेन राजा सैं कहा ।।*
राजा यह जो भई कछु मोसों । सो[3] कारन बिनवौं हौं तोसों ।।
जद्यपि मोरैं अदिन कराई । पै कलिजुग मो[4] भा[5] दुखदाई ।।
कै बिरोध मोरी[6] मति हरी । पलटि दिसा औरैं गति करी ।।
कै बावर पुनि जुआ खिलावा । घर छुड़ाइ बनवास दिआवा[7] ।।
होनहार[8] जो[9] हुत[10] सो भयऊ । अब मो[11] अदिन काल टर गयऊ ।।
तिहि[12] बैरी[13] अब कौन मिताई । जुआ जीत बिद्या पुनि पाई ।।
यातें[14] गहर करब भल नाही । घरी घरी जुग जुग पर जाहीं ।।

दोहा—जो आयसु मोहिं होइ[15] अब, देस[16] पंथ पग देउं ।
जाइ खेल पुन[17] भ्रात सौं, जीत राज धन लेउं ।।३६३।।

दोहा— ३६२—१—स्तुति (कां०) । २—तर्प (कां०) । ३—परन (कां०) । ४—धीनता (स०) । ५—इन (का०) । ६—याह (स०) । ७—सो (का०) । ८—कर मानो (का०) । ९—जौ लगि (कां०) । १०—रह्यो (कां०) । ११—चलौ (स०) । १२—सो अपनो (कां०) ।

दोहा—३६३—१—सिधारा (कां०) । २—उठा (कां०) । *'कां०' में उत्तर पद यों है:—'जासु बिनु सुसर सैं कह्या' । ३—सुन (कां०) । ४—मोहि (स०) । ५—भया (कां०, स०) । ६—बैरी (स०), मेरी (कां) । ७—भरमावा (कां०) । ८—हौं (कां०) । ९—जु (का०) । १०—हुता (कां०, स०) । ११—मोहि (स०), औह (कां०) । १२—तन (कां०) । १३—कारन (का०) । १४—ताते (कां०) । १५—देही (कां०) । १६—तौ देस (कां०) । १७—कै (स०) ।

राजा वचन मान पुनि लीन्हा । सिद्ध गौन कहं आयसु कीन्हा ।।
कहा अवसि विलंब जिनि लावहु । वेगि देस आपहिं पहुंचावहु ।।
जद्यपि तुम बहुतै[२] दिन आए । अजहूं नैन न देखि अघाए ।।
पैं अब भल नाही बिरमाउव । कुसर होइ पुनि[३] दरसन पाउव ।।
कह सो बात परधान बुलावा । आयसु भा[४] बहु दरब दिआवा ।।
औ पचास हय चंचल लोने । सब के साज सजे नग[५] सोने ।।
सोरह[६] गज झूमत[७] मतवारे । अति उतंग मानौं[८] गिरि कारे ।।
केतक रथ औ राज समाजू । जस कछु चहै[९] दीन्ह सब साजू ।।
औ पुनि कटक बहुत संग दीन्हा । आदर सहित विदा नल[१०] कीन्हा ।।

दोहा—सुदिन महूरत साजि कै, सवरि[१२] आपनो[१३] देस[१४] ।
लै धन संग गवन कियो, नल[१५] नरपती[१६] नरेस[१७] ।।३६४।।

नल उज्जैन आइ[१] पग धारा । पुहकर सुना उठी उर झारा ।।
पावक चिनगि रुई जनु परी । जरतै तेल परे पुनि[२] बरी ।।
तन मन जर अंगार[३] होइ गयऊ । प्रान पिंड महं[४] अनरस भयऊ ।।
रह न सका नल पहं उठि आवा । कैसे रहै राज भै[५] जावा ।।
आवत वेगि क्रोध कर बोला । मति डुल[६] जाइ[७] भाग जब डोला ।।
कहसि कि जुआ खेल तू मोसों । सीस दावं मोसों औ[८] तोसों ।।
जो हारै आपन सिर हारै । जीतनहार हरैय्य[९] मारै ।।
जो पुनि तो यह खेल न भावै । और कहो जो मन महं आवै ।।
धन समेत जो धन[१०] है तोरे । दाव[११] लाव[१२] लाऊं जो मोरै ।।

दोहा—इन[१३] दो[१४] मैं[१५] जो मैं कहा, जो लावसि तू दाव ।
सोई लाइ सुनाइ कह, खेल विलंब न लाव[१६] ।।३६५।।

दोहा—३६४-१—अपन (कां०) । २—तिहि (कां०) । ३—फिर (स०) । ४—भइ (स०) । ५—सब (कां०) । ६—सौरै सै (कां०) । ७—घुंमत (कां०) । ८—जानौ (कां०) । ९—होइ (कां०) । १०—पुनि (स०) । ११—नल (कां०) । १२—हस (कां०) । १३—आयो (कां०) । १४—अपदेस (कां०) । १५—पूज (कां०) । १६—मनाइ (कां०) । १७—गणेश (कां०) ।

दोहा—३६५-१—जाय (कां०) । २—जनु (स०) । ३—कोईला (कां०) । ४—निज (का०) । ५—पुनि (कां०) । ६, ७—पुनि डोली (कां०) । ८—वोर (कां०) । ९—हारै फिर (कां०) । १०—कुछ धन (कां०) । ११, १२—औ मैहुं (कां०) । १३, १४, १५—ए दूजी (स०) । १६—दाव (स०) ।

सुन नल छमा लिये[1] तब कहा । भलै कछू यह चपर न रहा ।।
जिहि बिधि कहसि तिहीं बिधि खेलौं । मान लेउं तो[2] बचन न पेलौं ।।
प्रथम राजधन जो कछु तोरे । श्रौ धन बिन[3] जो[4] कछु[5] धन मोर ।।
यहै[6] दावं बदि खेल मचावहु । सो[7] हिराइ पुनि सीस लगावहु ।।
इह ठहिराइ खेल[8] पर आए । मार राख पांसा ढरकाए ।।
पासा के ढारन नल जानै । जोइ[9] दांव चाहै सो आनै ।।
जद्यपि पुहुकर अरै अरावै । नल पासा पर[10] मार गिरावै ।।
पुहुकर सों धन भा[11] जो उदासा । पंजा छका देइ नहि पासा ।।*
चाहै सात तो आवै पांचै । दुआ होइ[12] सारै[13] नौ बाचै ।।

दोहा—नल ततखन बाजी लई, आर उठायी खेल ।
पुहुकर तिल सों खल भयौ, निकस गयौ गंठ[14] तेल ।।२६६।।

नल तब हंसा कहसि सुन मीता । जिनि जानसि तव कै तैं[1] जीता ।।
जीतनहार और वह कोई । कलिजुग जिन[2] मोरी[3] मति खोई ।।
बैरी निपट बैर पर आवा । कीन्ह चहै आपन मन भावा ।।
औ पुनि परालब्ध संजोगू । मोहिं करतब[4] जो[5] हुता[6] दुख भोगू ।।
मेरो अदिन प्रगट भयो आई । जो होनी[8] सो मेटि न जाई ।।
पै तू थोरै महं इतराना । सील धरम सत[9] सबै भुलाना ।।
अब जो भाग मोंहि[10] भा मोरा । मोरे हाथ मरन[11] भा तोरा ।।
का तोरैं औगुन चित आनौं । का तोहि मारि खेह[12] महं सानौं ।।⊙
जो हौंहूं अब[13] करौं[14] बुराई । भलै बुरै अंतर उठि जाई ।।

दोहा—भलै बुरै अंतर यहै, भला[15] भलाई[16] रीति ।
तजै[17] न जद्यपि बुरै सों, देखै कोटि अनीति ।।२६७।।

दोहा—२६६–१—लीन्ह (म०) । २—तोहि (कां०) । ३, ४, ५—जो कछू (कां०) । ६—येही (कां०) । ७—तिन्ह (स०) । ८—पुनि खेल (कां०) । ९—जौन (कां०) । १०—बर (स०) । ११—भयो (स०) ।* 'कां०' में उत्तर पद यों है :—'छका मागै दै अन पासा ।' १२—आन ह्वै (कां०) । १३—सार (कां०, स०) । १४—कठ (स०) ।

दोहा—२६७–१—मैं (कां०) । २, ३,—हित जन मो (स०) । ४, ५, ६, ७—मोह करत बस हा (कां०) । ८—होतिब (कां०) । ९—तोहि (कां०) । १०—सोनहिं (स०) । ११—कान्न (कां०) । १२—केह (म०) ।⊙ 'कां०' प्रति में उत्तर पद इस प्रकार है :—'काट मार धूर मसांनु ।' १३, १४—तो सौं कहु, (कां०) ।* 'कां०' में उत्तर पद यों है :—'तो तुमरो अंतर मिट जाई ।' १५—जो भला (कां०, स०) । १६—तिह कि (कां०) । १७—बचै (कां०) ।

कह ये वचन दीन्ह दोइ गाऊं । भोजन वसतर[1] चल जिहिं ठाऊं ॥
पहुकर बहुत बहुत सुख माना । अस्तुति करत करत न अघाना ॥
महाराज तुम मोहि जिउ दीन्हां । जिउ दै पुनि प्रतिपालन कीन्हां ॥
तुमसे तुमहीं दीन दयाला । अधम उधार अविन प्रतिपाला ॥⊙
तुम जैसे[2] मैं तुमहि न जाना । माया कै मद गात भुलाना ॥†
सो माया पुनि भई न मोरी । जिहि[3] कारन तुम सों मैं तोरी ॥
मैं माया अविचल कै जानी । सोउ[4] राज[5] यो हाथ खिलानी[6] ॥
काम निदान पड़ा तुम ताईं[7] । सो तुम राख लीन्ह[8] हौं गाईं[9] ॥
मो सर कोऊ अधम न पूजा[10] । तुम सों अधम उधार न दूजा ॥

दोहा—कै अस्तुति[11] तजि राज ग्रह, बिदा भयौ गहि पाइ ।
मनियां[12] होत जो जहां को, तहां[13] पिरोयौ[14] जाइ ॥३६८॥*

दोहा—३६८–१—वसत्र (कां०), विस्तर (स०) । २—ऐसैं (कां०) । ⊙ 'कां०' मे यह पाँचवी चौपाई है । †'कां०' में यह चौथी चौपाई है । ३—जा (कां०) । ४, ५—सो उर अज (स०) । ६—गिलानी (स०) । ७—तातें (स०) । ८—जेउ (स०) । ९—सांचै (स०) । १०—दूजा (स०) । ११—स्तुत (कां०) । १२—मैंना (स०) । १३—सो तहां (कां०) । १४—पर देश्रो (स०) ।

*यहाँ तक दोनों प्रतियों का पाठ मिलता है, कथा भी पूरी हो, जाती है इसलिये संपादन यहीं तक हुआ है । आगे 'कां०' प्रति में पांच चौपाइयाँ और एक दोहा (जिसमें छह चरण है) है । 'स०' प्रति मे दस दोहे हैं । दोनों प्रतियों के शेषांश दिए जाते हैं । 'कां०' मे पुष्पिका है, 'स०' में नहीं है :—

'कां०' का शेषांश

ऐसी कथा सुनै सुनावै । सोई ठौर वैकुंठ पावै ॥१॥
आतम ज्ञान कथा यह कही । सुन पिंडित हिरदै मैं लही ॥२॥
कहत्यों सुनत्यौ बहुत बिनान । हरि कथा सुना तैं बहुत किल्यान ॥३॥
इस्क मारफत योग मैं कह्या । ब्रह्म ज्ञान को परचा लह्या ॥४॥
मन जीतै सोई यह पावै । अंतर लपै सोई अलप लपावै ॥५॥

दोहा—सिर साटे स्याहिब मिलै, तौ बीजा न इस्यान ।
ब्रह्म ज्ञान को पाइ कै, पावै पद निरवान ।
देह खेइ दोइ जाइगी, आपर मीत निदांन ॥३६७॥

संवत १८१५ तत्र वर्षे माहा मांगल्य मासे चैत्र मासे शुक्ल पक्षे तिथौ १२ गुरु दिन लि० मिश्र चेतरामः लिषाव त्यों पूज्यः आत्मा ऋषि जी सुभ मस्तुः मंगलं दादतूः पुः स्तक लिषि विद्यानां जोग पसेते ॥

'स०' प्रति का शेषांश

नल भयो राजपाट अधिकारी । कियो जो लच्छ सवाइ जो हारी ।।
सूखें नदी भरा पुनि पानी । झरी जो वेलि पलट पलिहानी ।।
भया जो ठूढ तरुवर बन बाता । पलट वसंत कीन्ह बिधि राता ।।
बीता अदिन पाख अंधियारा । उवा भाग ससि भया उजियारा ।।
गई दुख निसि सुख भयो बिहानू । छिपा जो भाग उवा होइ भानू ।।
पलट दसा औरे होइ गई । पति मति गति ज्यौं कइ त्यों भई ।।
छिनक माझ औरे भयो साजू । आइ जुरा सब राज समाजू ।।
डोलत फिरा जो बारह बारा । ताके बार जुरा दरबारा ।।
एक जुहार चलहं एक आवहिं । इक ठाढे लय वारन पावहिं ।।

दोहा—अविगत गति करतार की, कछू लखी न जाय ।
छिन में छूंछे भर धरे, भरे देइ ढरकाय ।।१।।

पुनि हिय वहै राज सुख भोगू । ज्यों को त्यों सब बना संयोगू ।।
सरवर वहै नीर पुनि सोई । भंवर कंवल रस भेद न कोई ।।
वहै फूल पुहुप फुलवारी । वेइ हार वेइ गूथन हारी ।।
वेइ राग रंग वेई समाजू । वेइ अखार निरत कर साजू ।।
वेइ सुख दिवस वेई सुख राती । वेई सुख सांज वेइ परभाती ।।
वेई रीझ वेइ रीझनहारी । वेई पेम मद वेई मतवारी ।।
वेई मदपीन पियाला आंखें । वेई अधर रस चाखन चाखें ।।
वेई चितवन वेई टके लगावन । वेई लगन वेई रस उपजावन ।।
वेई मिलाप वेई सुख सैना । वेई पेम रस पागे बैना ।।

दोहा—वेई हुलास बिलास वेइ, वेइ कुरेंद वेइ केलि ।
वेई हंस वेई सरवरे, मधुकर वेई वेलि ।।२।।

जद्यपि भोग जनम भर माना । पै थिर कछु न रहा निदाना ।।
चलत चलत जोवन चल भयऊ । रहा न रूप रंग उड़ गयऊ ।।
सूखा सरवर रहा न पानी । दोऊ कवंल वेलि मुरझानी ।।
तिहिं सब अग अंग पलटाए । भवंर केस वक्र रूप दिखाए ।।
लहर समुद्र नैन कइ तारा । बार बार जल लेइ उफारा ।।
रस ज्यों बैन सुरन ज्यों बोली । सो उसलै खोंटी भई डोली ।।
श्रवन जो सुनें तार सुर खोरा । सुनहं निसान बनव कहं थोरा ।।
बने जो दसन चौक इकसारे । ते अब भये सारंग थट सारे ।।
बल चल गयउ निबल भइ काया । डोला सीस कांपै कर पाया ।।

दोहा—तन फुलवारी निपट गयो, जुरा आन हेमंत ।
ताहि पलट सुई वसंत पुनि, इहि फिर पति न वसंत ।।३।।

सत्र सो विरख हुते नल आऊ। जव पहुंचान भये पछाऊ ॥
वाकी पांच रहे दुखदाई। तव धन अवधि आइ नियराई ॥
तेल जरा वाती पुनि घटी। दीपक ज्योति भई लटपटी ॥
तेल बिना पुनि दिआ न वरै। कास्ट हीन पावक किमि जरै ॥
दिआ ठौर अव भया अंधेरा। काल पारधीं कीन्ह अहेरा ॥
चढ़ चेतन वह नेह सो टूटा। गुन औ तत फंद सो फूटा ॥
धरे रहे पुनि साज सजोंने। रानी राज पाट तजि गौने ॥
छिन महं चढत आस उठ गयेऊ। आपन तनों निरापन भयेऊ ॥
अछत प्रान कछु दान जो दीन्हां। वहै संग अपनें गह लीन्हा ॥
भरम सत्य जो करै भलाई। अंतकाल काम वह आई ॥

दोहा—लोगन गज दस वस्त्र लै, मन दोइ काठ जराय।
छार कीन्ह तन छिनक महं, छारहु दीन्ह उड़ाय ॥४।

नल तिहिं सोक सीस महं मारा। झुका हार लाई तन छारा ॥
घन घन कूक ढाह देइ रोवै। रुहिर धार नैनन न विछोहै ॥
नैनन अगिन लपट मुख काढे। आप जरा औरहिं उर डाहे ॥
जम को वर मोकहं जम भयेऊ। अत्र वर सो सराप होइ गयेऊ ॥
कत वैरन्ह तिहिं दिन वर दीन्हां। देइ सराप कस छार न कीन्हां ॥
पर पुनि का बैरी प्रतिपाला। सो तौ लहसि प्रान ज्यों वाला ॥
औ सो मरे जाकर जिउ लेई। मम जिउ लय पय मरन न देई ॥
मरन चहौ पै मरन न पावों। सुमिरन करों हार तौ नाओं ॥
पांच वरख अव प्रान विहूना। तन किहिं लागि जिया तौ सूना ॥

दोहा—ये विलाप कर कर झिकै, रोवै औ विललाय।
मुवा चहै कैसे मरै, जो जमन प्रान ले जाय ॥५।

राज काज सों भयेऊ उदासी। ग्रह तजि भया चहै वनवासी ॥
पुत्र जो इन्द्रसेन लौ लावा। निज आपन तिहिं वरन सुनावा ॥
कहसि पुत्र लै आपन राजू। औ जो कछु सव राज समाजू ॥
गनकहिं वूझि सुदिन ठहरावा। पाट वैठि सर छत्र धरावा ॥
मोहि अव राज वंदि ग्रह भयेऊ। राज पाट कौ सिख उठ गयेऊ ॥
राज मंदिर अव भय अंध कूयें। सांप सूर किदुआ कुल सौंहै ॥
दावानल होइ गई फुलवारी। हौद पहाड़ अगिन चिनगारी ॥
नैनहिं फूल गड़े होइ कांटे। विस्तर अंग काठ ज्यों चांटे ॥
मोहि अव भसम चहै उर छाला। पै वह नावं जपन कइ माला ॥

दोहा—पर सोई मोहि ना चहै, भसम जो तन कियो गेह।
मन माला वाला वचों, छाला खाल सो देह ॥६॥

कह ये वचन, चल बैठि अगोसे । अह तजि मीत सवांर सदोसें ।।
लोग कुटुंब रोवत सब त्यागा । छूटा मोह मीत मन लागा ।।
मन तिहि देइ तन सुरत गवाँई । प्रान तिन्हि में रहा समाई ।।
उपज ज्ञान अज्ञान हिराना । चल बियोग संजोग समाना ।।
सुमिरन भजन बिसर सब गयेऊ । जाको भजै सोऊ अब भयेऊ ।।
सुमिरन भजन देह भिन्न होई । सो तन जिय सो अछत बिछोई ।।
मंदिर ज्यों तन कहं जड़ जाना । चेतन पुरुख अलग पहिचाना ।।
जद्यपि तिहि काया यह त्यागी । पै वह रहै अवधि लौं लागी ।।
आवि अवधि पूरन जब भई । देही बन्स बिचल तब गई ।।

दोहा—जअपि जिउ तन कों तजत, तोऊ न तजै परीत ।
जब दरसै पिउ को दरस, तब पावै परतीत ।।७।।

कहां सो नल राजा कहं रानी । पेम उरझ रह गई कहानी ।।
पेम अमर यह मरै न मारा । बुझै न पेम अगिन चिनगारा ।।
वेई वेद पुरानंह गाई । जिन मन पेम उरझ उरझाई ।।
नाहित ऐसे गये हिरानी । पेम बिना काछू न बखानी ।।
रहत बरी जगकर व्यवहारा । भरन धुरन फिर मरन अपारा ।।
अगम लेख निगमहं गम नाही । वो दिन कइ आवहं कै जाहीं ।।
पै निदान इतने गम होई । जो आवा सो रहा न कोई ।।
यह मन जान कस्ट मैं कीन्हा । पेम कथा किरपा चहुं लीन्हा ।।
मकु हौंहू जो जाहुं हिराई । कथा उरझ नावं रहजाई ।।

दो०—औ पुनि भूल यहो कहों, मोहि का रहा जो नावं ।
जौलौं सांची प्रीति सों, सहित न नांव समांव ।।८।।

या रोवा यह कछु मैं अँखिया । अस्क फिराक पूरबी भखिया ।।
मत जानहु यह पूरब बतहा । पूरब देस पंजाबी मतहा ।।
हौं अपने भाखा भय जानों । नुकता नुकता सब पहिचानों ।।
आवसि भाखा बच्च शेर घनेरी । अस्क हकीकत आखें मेरी ।।
अस अपनी भाखा व जबानी । बनी भली पय कोध सकरानी ।।
खोवै मरमहं कल जो पूछै । जम कस तासों जाय न बचै ।।
बाज पंजाबी दूर न जानी । रतन पारखी रतन सजानी ।।
उत भाखा महरम सब कोई । पढ़ै जो मतलब समझै सोई ।।
तिस कारन यह प्रेम कहानी । पूरब दी भाखा बिच आनी ।।

दोहा—बाग बगीचा सो भला, जो सबही साझा होइ ।
बानी तस भाखे भली, जिन्ह समझै सब कोई ।।९।।

———

शब्दानुक्रमणिका

[खड़ी पाई की बाईं ओर दोहे की संख्या है और दाहिनी ओर अर्द्धाली की]

अंकम = अंग या शरीर में ३१३।७
अंकवन = आलिंगन ७२।४; २३५।५
अंगनाई = आंगन ५७।८
अँघाई = तृप्ति २६६।३
अँघावा = छक गया, तृप्त हो गया २२६।८
अंचर = आँचल, पल्ला, छोर ८७।६
अंजरी = अंजुली ११५।
अंजोरा = उजाला ३५।१
अंतरजामी = अंतर्यामी, मन की बात जानने वाला ७०।५
अंतरपट = परदा, ओट २१६।४; २१७।३
अंतह = अंतकाल, समाप्ति काल ३०७।५
अंतह = हृदय स्थित, अंतस्तलका २१५।२
अंतहि = दूसरी जगह, अन्य स्थान ३१।९
अंब = आम ३७।२
अंबरत, या अंब्रत = अमृत ६।
अंबुज = कमल २३१।७
अंब्रित = अमृत ३४।४
अंशु = आँसू ३९।६
अंस = आँसू ११२।५
अखंड = जो खंडित न हो, अविच्छिन्न, अबाध २१८।९
अखारें = अखाड़े में, यहाँ रति अखाड़े से तात्पर्य है २३७।४
अगम = बुद्धि के परे, दुर्गम ६६।२
अगर = अगर पेड़ की लकड़ी जो सुगंधित होती है ५६।३
अगवहं = जो पहले हो चुके उनके १२६।४
अगिन = अगणित ४।९
अगोचर = जो दिखाई न दे १६९।६
अगोट, अगोटें = आश्रय, आड़ २६७।६; २८१।३; ३२०।१
अगोर = रोकना, छेंकना १०४।
अगोसैं (?) = परदा, ओट १६५।३; १७०।३,
अघाइ = तृप्त होकर २५।७
अचेत = चेतना रहित, वेसुध, मूर्छित २४५।९
अचैन = अशाँत, व्याकुल अस्थिर ११६।
अच्छर (अछर) = छल न करने वाला २०५।१
अछत = रहते ८७।६, १२१।३, १२९।४
अछवाई = अच्छापन, स्वच्छता सुंदरता ८२।६, ८४।३
आछै = अच्छा, सुंदर ५४।७
अजगुत = असंगत वात, आश्चर्य की बात ३०२।४
अजान = अज्ञान, विवेक रहित २२२।१
अजानतो = अजानपन २४९।९
अजाम = जमने से रहित, जन्म हीन, अजन्मा ४३।९
अजोरा (अँजोर) = उजाला, प्रकाश २१४।३
अटक = रोक ४१।६, ८१।३
अटारी = कोठा ४५।६
अठसठ तीरथ = तीर्थों की संख्या अड़सठ मानी गई है ४०।७
अतन = निर्गुण परमात्मा १३८।
अतिवानी = अधिक मात्रा में, अधिक घना होकर ४१।७, १००।४
अथक = थकान रहित १७८।१
अथवत = प्रस्त होते हुए, डूबते हुए २५५।

अमी = अमृत ३४।३,४३।१
अर = अड़ना ९२।७
अरगज = एक सुगंधित पदार्थ जो केसर, कपूर और चँदन को मिलाने से बनता है २२४।७
अरघानी = सुगंध १७१।३
अरथ = द्रव्य, सिक्के २२५।८
अरथाई = अर्थ लगाने की प्रक्रिया ९६।३
अरन = अरुण, लाल, रक्त २९०।५
अरपि = अर्पण, अर्पित २१५।६
अरबरई = उतावले होते हैं ३२७।४
अरबरा = हड़बड़ी आकुलता ३२७।९
अरबराइ = उतावला होकर ३५।२
अरसारी = अलसाई हुई, मुरझाई हुई २२४।२
अरसावैं = अलसा जाते थे, व्याकुल हो जाते थे। ७५४।८
अराधै = आराधना करता हुआ ९३।८
अरी = अड़ना, गढ़ना ५८।७,८१।३
रुन = अरुण, सूर्य का सारथी ३३०।
अरूप = रूप हीन ३२०।
अरें = गढ़ने या चुभने से २५४।८
अलख = जो दिखाई न दे ९१,९३।८
अलच्छ = अलक्ष्य ३३५।
अलद = बिना लदा २८३।६
अलप = अल्प ८४।७
अलि = भौंरा २६१।५,८३।२
अली — प्रियतमा, स्त्री, सखी २३३।७
अवघट = दुर्गम, कठिन, विकट २६७।२
अवघट घाट = दुर्गम या कठिन घाट १०३।
अवछरा = अप्सरा १००।६
अवतरी = उत्पन्न हुई ३४।४
अवधूत = योगी १११।५
अवस्था = दशा ३०।५
अवाई = आगमन, आगमन की आवाज, पुकार-पुकार कर आगमन की सूचना देना। १९८।१,२००।१
अवाऊ = आने को ५३।८३
अविगता (अविगत) = अज्ञात, अनिर्वचनीय, नित्य १९।६,४९।१
अष्टाँग = आठ अंगों वाला ४०।५
अस = ऐसा ६०।९
असरन सरन = परमात्मा की शरण २०४।६
असवैया = भूत प्रेत की बाधा रहने वाला ५०।७
असौज = आश्विन मास, कुवार ३४।६
अस्ति अस्ति = वाह वाह करना, साधुवाद देना ११२।३
अस्तुत = स्तुति, प्रार्थना ११।८
अस्थानू = स्थान ३५।६
अस्थिर = स्थिर, एक स्थान पर ५४।५,६१।८
अस्थिरता = स्थिरता ४१।४
अहा = था २८।२,७४।९
अहारू = भोजन, आहार ५८।६
अहि = सर्प, साँप, अजगर २७३
अहुट = दूर २९९।२
अहेरे = शिकार, आखेट ९०।५
आँकुस = अंकुश, हाथी को हाँकने का दो मुँहा भाला, गजबाग, प्रतिबंध, शासन, दबाव ५३।९,८२।९
आँटा = अँटना, भरजाना, रुक जाना, अटक जाना १४५।२,२३०।५
आँस = आँसू १०९।
आइस (आदेश) = आज्ञा, हुक्म १७२।२
आउ = आयु ५२।७,२०७।५
आक = अर्क का पेड़ ७२।९,१३४।७
आछे = अच्छे, सुंदर १७५।९,२१२।३
आड़ = आड़ा २२०।८
आदेस = प्रणाम, नमस्कार १११,७७।
आनंद कंद = प्रसन्नता देने वाला ६०।७
आन = मर्यादा ५३।९
आनसि = लाया २७४।२
आपद = संकट दुःख ३६१।९

आपा = अपने आप को, अपनत्व ८०।१, १२३।५, १३१।५, १५१।७, २१५।६, ३२८।८
आपु = अपने आप स्वयं ५५।५
आब = पानी, चमक, कांति, शोभा ४७।
आभरण = आभूषण ४६।५
आयसु = आदेश, आज्ञा ५६।८ ११७।५, २६६।४
आरकस = आलस्य ३३४।३
आरस = आलस्य २२१।३, १४१।८
आरोग = आरोग्य, निरोग, रोग रहित १४८।३
आली = सखी २१५।२
आवा (आवाँ) = गड्ढा जिसमे कुम्हार मिट्टी के बरतन पकाते है। ४२।
इंगुर (हिंगुल, इगुल) = चटकीले लाल रंग का एक खनिज पदार्थ ६४।८
ईठी (सं० इष्टि > प्रा० इट्ठि) = मित्रता, दोस्ती, प्रीति १५६।८
इन्हन = ईधन, जलाने की लकड़ी २५।४
ईस = महादेव ३०८।१
ऊंघाहि = ऊँघने लगना २६।
उग्रा = उगा १०८।४
उकस = भेद लेने के लिये उभाड़ने की क्रिया ३२०।१
उकसै = ऊपर उठना या निकलना १५८।६
उकासा = ऊपर उठाना या निकालना १५८।६
उघटत = उघड़ते है, दबी बात को प्रकट करते है, किसी नई बात का प्रचार शीघ्रता से करते है। २८५।
उघरी = खुली २७०।८
उछरहि = उछलते है २३१।६
उछारै = उछालै, ऊपर आकाश मे फेकना ५३।६
उजार = निर्जन स्थान, वन, उजड़ा हुआ स्थान २८८।
उज्ज्वल = सफेद, साफ, शुद्ध ४५।३
उड़न खटोलै = आकाश में उड़ने वाला खटोला। ५४।६
उतारा = टिके, विश्राम किया २३०।७
उतावल = उतावला होकर, व्यग्र होकर उतावली, शीघ्रता, जल्दी १८१।१, २२६।१
उद्भास = प्रकाश, प्रतीति, हृदय मे किसी बात का उदय होना। २०८
उदर = पेट २७४।३
उधांइ = ? १२८।
उनमाना = अनुमान २।५, ३३।५
उनमानू = अनुमान, समान १८१।३
उनस = झुके हुए २७२।३
उनहार = समानता, एक रूपता, तादृश्य ३५२।
उनाई = झुके हों, झुकी हुई ५३।४, ५५।१
उपज = सूझ, उत्पत्ति १८०।२
उपटै = ऊपर उठना १२१।६
उपदेशी = उपदेश देने वाले ३७।१
उपना = उत्पन्न हुआ २८।७
उपराई = बढ़कर ११।८
उपराज = उत्पन्न करते है ५।६
उपराजा = उत्पन्न किया ५।१, ६६।६
उपराजै = उत्पन्न होते है ४।५
उपराही = ऊपर, श्रेष्ठ, उत्तम, बढ़कर १६७।३
उपाधि = और वस्तु को और बतलाने का छल ६७।५
उपारहि = उखाड़ते है ५३।५
उफकारा (उफ + कारा) = ओह करना, क्षोभ का भाव, खलबली १४६।५
उफनत = उबल कर उठना, उबलना १०६।
उबटावा = उबटन किया २२४।७
उभारा = उठान, ऊपर की ओर उठने की क्रिया २७२।२
उमड़ि = ऊपर उठकर फैलना ५१।७
उमड़ै = भरकर वहना २३४।७

उमहा = उमंगित हुआ, उमड़ा ३६३।२
उर = वक्षस्थल, छाती, हृदय, ५८।६,८३।२
उलिचहिं (उलीचना) = हाथ या बरतन से पानी उछालकर फेंकना १५८।३
उवत = उगता, उदय होता २५५।
उवा = उगा ७५।८,२०१।,२०५।,२३१।६
उवै = उगे १६७।३१।२।६
उसास = श्वास २६।२
ऊटना = हौसला करना, उमंग में आना, उत्साहित होना २५३।७
ऊठ = उठान २८०।३,२६३।४,३५२।
ऊने (उनवना, उनए) = झुके हुए ३६।१०
ऊबट = ऊबड़ खाबड़, ऊँचा नीचा १६७।६
ऊभै = ऊपर को, ऊँची, गहरी ३०१।१
ऊवा = उगा ३४।६
ऊहट (उहट) = हटाकर ६४।५
एकठारे = एक ठौर या एक स्थान पर २४४।६
ऐंठ = ऐंठन, मरोड़, ठसक २२०।६
एक ठांहीं = इकट्ठे, साथ ५६।४
एक ठारी = एकत्र २७।५
ओकै = आश्रय, ठिकाना, घर, नक्षत्र या ग्रह समूह २०१।६
ओछी = नीच, क्षुद्र ३६०।२
ओझा = भूत प्रेत झाड़ने वाला, सयाना १४८।५
ओट = आड़, व्यवधान, रोक जिसमें सामने की वस्तु दिखाई न दे २१६।४
ओनए = झुके हुए, घिरे हुए २३४।७
ओप = चमक, कांति, आभा ६४।२
ओर = सीमा, ओरछोर, सीमा तक अंत तक ६२।२,१२७।१,१४६।
ओरी (ओलती) = ढलुवाँ छप्पर का वह किनारा जहाँ से वर्षा का पानी नीचे गिरता है ३०८।७
ओहारा (सं० अवधारा) = ओहार, परदा २३७।८
औंग = गाड़ी के पहिए की धुरी में तेल लगाने की क्रिया २५७।८
औंटि = दूध आदि को आँच पर चढ़ा कर खौलाना, औंटा कर २६१।
औ = और ३५।७,२३५।२,२६८।५
औखल (अओवख) = (हमारे) देखते १८६।५
औगुन = अवगुण, बुरेगुण ६६।६
औघट > अवघट = विकट कठिन २।१,६६।६,१८६।६
औट = औटने या खौलने की क्रिया १६६।२
औघ = अवध, अयोध्या ३०३।
औध या औधि } अवधि, अंतिम समय या काल ५२।,२७५।३
औल = मन में दबी हुई चिंताएँ, गुब्बार, किसी विषय में मनमें दबी हुई अनेक धारणाएँ १६५।८
औसर = अवसर, समय ११५।३ १६४।७,३६०।४